पंजीकरण नं. : यू.पी.एच.आई.एन. 35346/24.01.2006-टी.सी.
ISSN 0974-0002

देश देशान्तर मित्रों का शोधपरक अनुष्ठान

कृतिका

वर्ष : 2 अंक : 4 जुलाई-दिसम्बर 2009

साहित्य, कला, संस्कृति, आयुर्वेद, मानविकी एवं समाज विज्ञान की
अर्द्धवार्षिक अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका

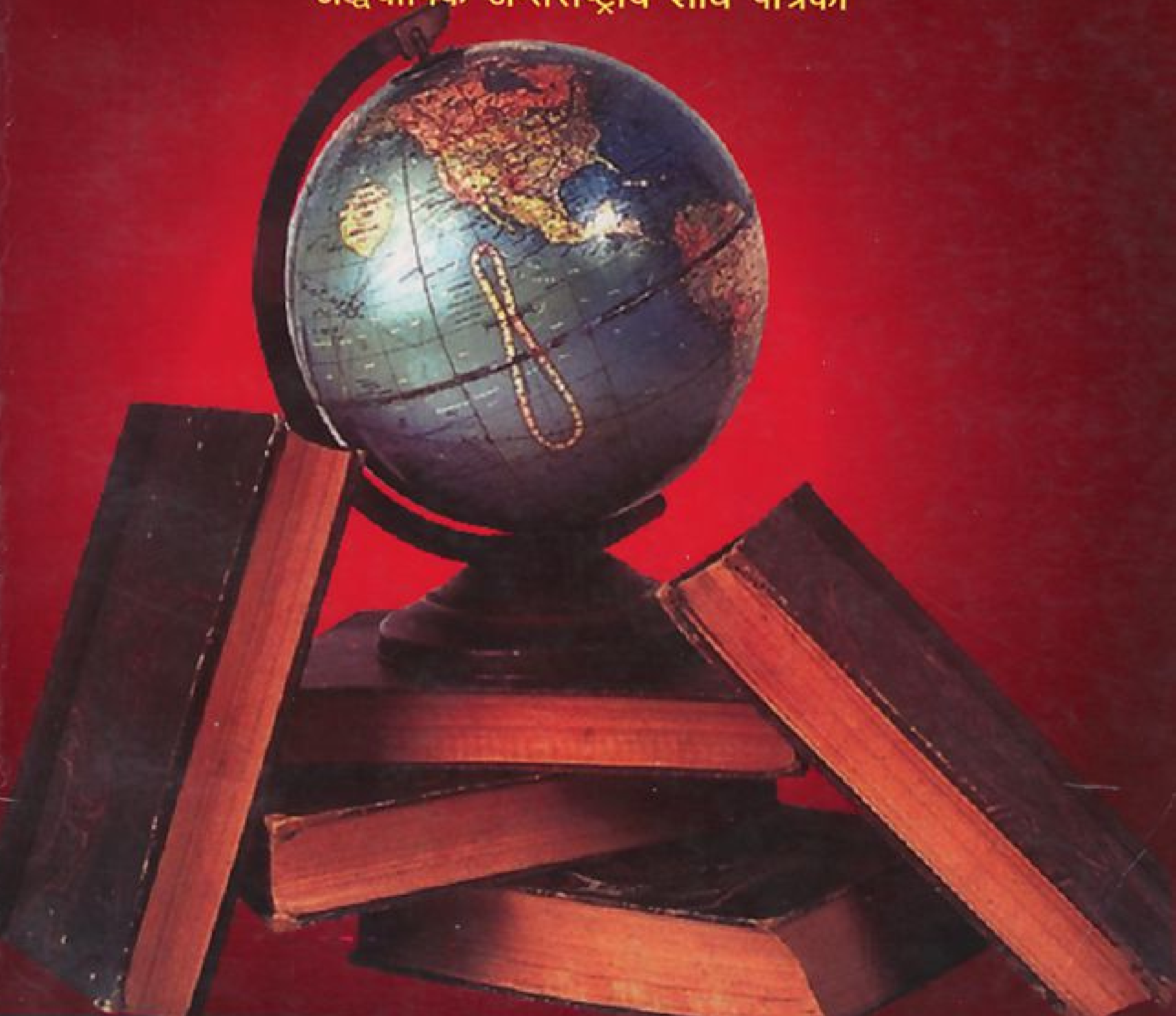

इंटीग्रेटेड सेन्टर फॉर वर्ल्ड स्टडीज, उरई जालौन (उ०प्र०) भारत के सहयोग से प्रकाशित

पंजीकरण नं. : यू.पी.एच.आई.एन. 35346/24.01.2006-टी.सी. ISSN 0974-0002

देश-देशान्तर मित्रों का शोधपरक अनुष्ठान

कृतिका

(साहित्य, कला, संस्कृति, आयुर्वेद, मानविकी एवं समाज विज्ञान की
अर्द्धवार्षिक अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका)

वर्ष : 2 अंक : 4 जुलाई-दिसम्बर 2009

प्रधान सम्पादक

डॉ. चन्द्रमा सिंह

मुख्य सम्पादक

डॉ. किशन यादव
डॉ. कश्मीरी देवी
डॉ. सुरेश एफ कानडे
डॉ. रोशन लाल जिन्टा

कला सम्पादक

डॉ. नीना शर्मा 'हरेश'

प्रबन्ध सम्पादक

डॉ. शंकरलाल

सम्पादक

डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव

इंटीग्रेटेड सेन्टर फॉर वर्ल्ड स्टडीज, उरई जिला-जालौन (उ. प्र.) भारत के सहयोग से प्रकाशित

पंजीकरण नं. : यू.पी.एच.आई.एन. 35346/24.01.2006-टी.सी. ISSN 0974-0002

देश-देशान्तर मित्रों का शोधपरक अनुष्ठान

कृतिका

(साहित्य, कला, संस्कृति, आयुर्वेद, मानविकी एवं समाज विज्ञान की अर्द्धवार्षिक अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका)

वर्ष : 2 अंक : 4 जुलाई-दिसम्बर 2009

सहयोग राशि : 60 रुपये

यू. एस. 25 $ यूरो 20 $

व्यक्तिगत सदस्यों के लिये

वार्षिक सदस्यता	:	200 रुपये	(डाक व्यय सहित)
पाँच वर्ष के लिये	:	1000 रुपये	(डाक व्यय सहित)
आजीवन	:	3500 रुपये	(डाक व्यय सहित)

संस्थाओं के लिये

प्रति अंक	:	200 रुपये	(डाक व्यय सहित)
वार्षिक सदस्यता	:	400 रुपये	(डाक व्यय सहित)
पाँच वर्ष के लिये	:	2000 रुपये	(डाक व्यय सहित)
आजीवन	:	4000 रुपये	(डाक व्यय सहित)

विशेष : सभी भुगतान नकद/मनीआर्डर/बैंक ड्राफ्ट/चेक **'सम्पादक कृतिका'** के नाम Payable at Orai भेजें। कृपया चेक के साथ बैंक कमीशन के रूप में निश्चित अतिरिक्त राशि जोड़ दें।

- विधिक वादों के लिये क्षेत्र उरई न्यायालय के अधीन होंगे।
- कृतिका में प्रकाशित रचनाओं के विचारों से सम्पादक मण्डल (कृतिका परिवार) की सहमति अनिवार्य नहीं है।
- शोध पत्रिका में प्रकाशित सामग्री के पुनर्प्रकाशन के लिये सम्पादक मण्डल की लिखित अनुमति अनिवार्य है। कृतिका के सम्पादन, प्रकाशन व संचालन से जुड़े समस्त पद अवैतनिक हैं।

प्रकाशक, मुद्रक एवं स्वत्वाधिकारी डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव द्वारा महक कम्प्यूटर्स एण्ड प्रिण्टर्स, 15, आजाद नगर, उरई (जालौन) से मुद्रित करवाकर 1760, नया रामनगर, उरई (जालौन) 285001 से प्रकाशित। सम्पादक-डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव

पंजीकरण नं. : यू.पी.एच.आई.एन. 35346/24.01.2006–टी.सी. ISSN 0974-0002

देश-देशान्तर मित्रों का शोधपरक अनुष्ठान

कृतिका

(साहित्य, कला, संस्कृति, आयुर्वेद, मानविकी एवं समाज विज्ञान की अर्द्धवार्षिक अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका)

वर्ष : 2 अंक : 4 जुलाई–दिसम्बर 2009

क्षेत्रीय प्रधान सम्पादकीय कार्यालय

डॉ. चन्द्रमा सिंह
नयकागाँव, जी. टी. रोड, सासाराम (बिहार) 821115
सम्पर्क – 06184-223271, 09430895451
Email : dr.chandramasinghkritika@rediffmail.com
dr.chandramasingh2009@rediffmail.com

डॉ. सुरेश एफ कानडे
'8' साईं धाम अपार्टमेंट, दादा जी कोंडदेव नगर
गंगापुर रोड, नासिक 422013 (महाराष्ट्र)
सम्पर्क – 09422768141
Email : sureshkande2009@rediffmail.com

डॉ. नीना शर्मा 'हरेश'
व्याख्याता, हिन्दी विभाग
आनन्द आर्ट्स कालेज, गुजरात 250260
सम्पर्क – 09925019160
Email : dr.neenasharma2009@rediffmail.com

डॉ. कश्मीरी देवी
म. नं. 1651/21 हैफेड चौक
रोहतक (हरियाणा) 124001
सम्पर्क – 0912384888
Email : kashmiridevi2009@rediffmail.com

डॉ. रोशन लाल जिन्टा
वरिष्ठ प्रवक्ता, मनोविज्ञान विभाग
हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, शिमला (हि. प्र.)
सम्पर्क – 09816108257
Email : dr.roshanlal2009@rediffmail.com

डॉ. शंकरलाल
गोरखपुर हाउस के सामने
कैलाशपुरी, रीवा (म. प्र.) 486002
सम्पर्क – 09893538433, 09935512770
Email : dr.shankarlal2009@rediffmail.com

प्रधान सम्पादकीय कार्यालय

डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव
1760, नया रामनगर, उरई (जालौन) उ. प्र. 285001 भारत
सम्पर्क – 05162-252888, 09415924888, 09670732121, 09919123763
Email : kritika_orai@rediffmail.com ✦ Email : virendra_kritika@rediffmail.com
Email : dr.virendrayadav@gmail.com
http://kritika-shodh.blogspot.com

कृतिका : एक परिचय

शोध एवं अनुसंधान गतिविधियों के एकीकृत अध्ययन के लिये युवा शोधार्थियों, अध्येताओं को शोध के नवीन अवसरों को उपलब्ध कराने हेतु कृतिका शोध पत्रिका की परिकल्पना की गई। कृतिका, इंटीग्रेटेड सेन्टर फॉर वर्ल्ड स्टडीज, उरई जिला-जालौन (उ.प्र.) भारत के सहयोग से प्रकाशित अन्तर्राष्ट्रीय अर्द्धवार्षिक रिसर्च जर्नल है। कृतिका का सम्पादक मण्डल देश एवं विदेश के विभिन्न राज्यों के विषय विशेषज्ञों की सहभागिता के आधार पर कार्य कर रहा है। मानविकी एवं समाज विज्ञान में शोध के नवीन अवसरों की भागीरथी प्रवाहित करने के उद्देश्य से सहकारिता के आधार पर इस रिसर्च जर्नल का प्रचार सम्पूर्ण भारत के साथ-साथ सात समुन्दर पार यू.एस.ए., लंदन, आस्ट्रेलिया, जापान, जर्मनी, मॉरीशस आदि के शोध निदेशक एवं शोधार्थियों का कृतिका में रचनात्मक सहयोग प्राप्त है।

कृतिका शोध पत्रिका का एक दूसरा उद्देश्य मानविकी एवं समाज विज्ञान के अलावा विषयों की सीमाओं से हटकर स्वतंत्र रूप से गहन एवं मौलिक शोध की प्रवृत्ति को बढ़ावा देना है ताकि शोध पत्र न केवल गम्भीर अध्येताओं के लिये उपयोगी हो बल्कि यह जनसामान्य में नवीन जानकारी, शोध के प्रति उत्सुकता एवं जागरूकता का परिचायक भी सिद्ध हो। साथ ही यह व्यावहारिक धरातल पर अनुपयोगी भी हो। कृतिका में इन्हीं विचारों को दृष्टिगत रखते हुये साहित्य, कला, संस्कृति, आयुर्वेद, मानविकी एवं समाज विज्ञान के विषयों के अलावा हम विज्ञान एवं अन्य विषयों के शोध पत्र भी आमंत्रित करते हैं। उत्तर आधुनिकता एवं भूमण्डलीकरण के इस दौर में वर्तमान की ज्वलंत समस्याओं से सम्बन्धित विषयों पर समय-समय पर कृतिका परिवार विषय-विशेष पर विशेषांक केन्द्रित अंक भी निकालेगा जिसकी सूचना कृतिका शोध पत्रिका एवं अलग से पत्रों के माध्यम से शोध अध्येताओं एवं जिज्ञासु युवा रचनाकर्मियों को समय-समय पर दी जायेगी।

सामान्य निर्देश

रचनाकारों/शोध अध्येताओं से विनम्र अनुरोध :

- कृतिका साहित्य, कला, संस्कृति, आयुर्वेद, मानविकी एवं समाज विज्ञान का एक अर्द्धवार्षिक शोधपरक अनुष्ठान है जो युवा अध्येताओं, शोधार्थियों एवं खोजकर्ताओं का अपना मंच है। अपने मौलिक एवं नवीन अन्वेषणात्मक रचनाओं के सहयोग से इसे सम्बल प्रदान करें।
- मानविकी एवं समाज विज्ञान से सम्बन्धित सभी विषयों की मौलिक रचनायें विषय विशेषज्ञों की सहमति से ही इसमें प्रकाशित की जायेंगी।
- कृतिका में प्रकाशित शोध पत्र देश एवं विदेश के विषय विशेषज्ञों के पास चयन के लिए प्रेषित किये जाते हैं। इसलिये शोध पत्र/आलेख लिखते समय संदर्भों का स्पष्ट उल्लेख करें पुस्तक का संदर्भ, पत्र-पत्रिका का संदर्भ, प्रकाशन, वर्ष एवं संस्करण का उल्लेख आवश्यक है। शोध पत्र/आलेख की शब्द सीमा **दो हजार शब्दों** से अधिक नहीं होनी चाहिये। यदि शब्द सीमा अधिक है तो सम्पादक मण्डल को उसमें संशोधन, संक्षिप्तीकरण का अधिकार सुरक्षित रहेगा।
- कृपया अपनी शोध रचनाएं एवं आलेख प्रेषित करते समय अपना संक्षिप्त आत्मवृत्त, छायाचित्र प्रेषित करें। रचना के शोध संक्षेप सार का उद्देश्य, वर्तमान परिप्रेक्ष्य में प्रासंगिकता एवम् उपयोगिता को अवश्य दर्शायें।
- कृतिका में पुस्तक समीक्षा के लिये चर्चित एवं महत्वपूर्ण पुस्तकों/पत्रिकाओं पर समीक्षात्मक आलेख आमंत्रित हैं। समीक्षात्मक आलेख के साथ पुस्तक/पत्रिका की दो प्रतियां रजिस्टर्ड डाक से प्रेषित करें।
- स्तरीय पुस्तक की समीक्षा के लिये समीक्ष्य पुस्तक की दो प्रतियां एवं लेखक अपना संक्षिप्त आत्मवृत्त एवं छायाचित्र तथा पुस्तक का संक्षेपण पंजीयन डाक से सम्पादक के पते से प्रेषित करें। समीक्षा की स्थिति में शोध पत्रिका का अंक सम्बन्धित लेखक के पते पर भेजा जायेगा।
- किसी भी दशा में शोध पत्र/आलेख की प्रति वापस (स्वीकृति/अस्वीकृति की स्थिति में) नहीं प्रेषित की जा सकती है। इसलिये कृपया एक प्रति अपने पास सुरक्षित अवश्य रखें।
- कृतिका एक अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका है। कृपया रचना प्रेषित करते समय यह भलीभाँति तय कर लें कि यह शोध पत्र/आलेख/रचना आपकी अपनी मौलिक कृति है और कृतिका के मापदण्डों के अनुकूल है कि नहीं। कृतिका परिवार आपके नये अकादमिक सुझावों एवं प्रतिक्रियाओं का सदैव स्वागत करेगा।
- रचनायें कम्प्यूटर से मुद्रित कराकर कृति देव 10 में 14 फान्ट साइज में MS-Word Software में टाइप करके साथ में सीडी एवं रचना का प्रिन्ट अवश्य भेजें।
- कृतिका की गोपनीय समिति द्वारा चयनित शोध पत्रों/आलेखों में से श्रेष्ठ रचना को पारतोषिक देकर सम्मानित किया जायेगा।

- कृतिका परिवार

देश-देशान्तर मित्रों का शोधपरक अनुष्ठान

कृतिका

(साहित्य, कला, संस्कृति, आयुर्वेद, मानविकी एवं समाज विज्ञान की अर्द्धवार्षिक अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका)

अनुक्रमणिका

	शीर्षक	लेखक	पृ. सं.
	सम्पादकीय		i-ii
✦	**ज्वलंत प्रश्न**		
1.	साम्प्रदायिकता एक गम्भीर चुनौती	डॉ. भारतेन्दु श्रीवास्तव डॉ. ज्योति सिन्हा	10-12
✦	**चिंतन-चिंता**		
1.	आधुनिक कथा साहित्य में अभिलषित यौन विद्रूपता	डॉ. संजय कुमार सिंह	13-17
2.	एचआईवी/एड्स ! जानकारी ही बचाव है।	अरूण कुमार सिंह	18-21
✦	**हमें आप पर गर्व है**		
1.	सर्वोदय के संवाहक, भू-दान के प्रणेता आचार्य विनोबा भावे	डॉ. बिनोद कुमार सिंह	22-24
2.	अमर शहीद जगदेव प्रसाद वातायन से	डॉ. चन्द्रमा सिंह	25-28
3.	संत जगजीवन साहब और सतनामी सम्प्रदाय	डॉ. सियाराम	29-35
✦	**स्मृति के झरोखों से/धरोहर**		
1.	विरासत का सौदा	डॉ. शम्भू नाथ यादव	36-38
2.	साहित्य में सत्तावनी क्रांति के राष्ट्रबोध का स्वरूप	डॉ. लखनलाल खरे	39-43
✦	**शैक्षिक परिदृश्य**		
1.	21वीं सदी में उच्च शिक्षा का परिदृश्य	डॉ. इन्द्रमणि	44-47

2.	स्ववित्तपोषित महाविद्यालय एवं शैक्षिक मूल्य	सुमित कुमार श्रीवास्तव	48-53
3.	उच्च शिक्षा का निजीकरण	डॉ. कुसुमलता 'मधू'	54-57
✦	**प्राचीरों में कैद बचपन**		
1.	बाल-श्रम : समस्या एवं समाधान	रूचि पाण्डेय	58-61
✦	**जद्दोजहद**		
1.	रैगिंग : एक मासूम शरारत या मानसिक उन्माद ?	देवेन्द्र कुमार सिंह	62-65
2.	भारत का पूर्ण विकास कैसे हो ?	डॉ. अजीत सिंह राही डॉ. अलका द्विवेदी	66-70
✦	**स्याह हाशिए**		
1.	दरकती-चटकती परम्पराओं का अक्स और दलित आत्मकथाओं का सच	डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव	71-80
✦	**अध्यात्म एवं दर्शन**		
1.	ऋग्वैदिक अनुक्रमणियों में नाम	डॉ. मीरा रानी रावत	81-84
✦	**निरुत्तर**		
1.	राजनीतिक व्यवस्था के पतन की पराकाष्ठा	डॉ. कमलेश कुमार सिंह	85-88
✦	**खुली खिड़की**		
1.	समाजवादी अवधारणा : एक वैचारिक आयाम	डॉ. अजय सिंह	89-91
✦	**आधी दुनिया का स्याह यथार्थ**		
1.	महिला सशक्तिकरण में स्त्री की भूमिका	डॉ. शोभा पवार निंबालकर	92-98
✦	**वाद-विवाद एवं संवाद**		
1.	आतंकवाद और साम्प्रदायिक सौहार्द	डॉ. अमित शुक्ल	99-100
✦	**लोक कला/लोक संस्कृति**		
1.	'अवधी लोकगीतों में नारी संवेदना'	डॉ. शशि बाला गुप्ता	101-104
2.	गाजीपुर, बनारस की लोक संस्कृति : गोड़ऊ तथा धोबियऊ नाँच	डॉ. महेश सिंह यादव	105-111
✦	**सुलगते सवाल**		
1.	आतंकवाद की समस्या और समाधान	अशोक कुमार प्रसाद	112-113
✦	**परिवेश-विस्तार**		
1.	समसामयिक सन्दर्भ में शिक्षा, मनुष्य और समाज	कुमार यशवन्त	114-117
2.	साहित्य की प्रगतिशीलता	डॉ. रमेश प्रसाद	118-121

3.	अठारहवीं सदी में भारतीय समाज का स्वरूप	डॉ. प्रतिभा पटेल	122-123
✦	**सृजन के विधाता**		
1.	पत्रकारिता के विविध स्वरूप	डॉ प्रणव	124-128
✦	**हलचल**		
1.	'समाज की वर्तमान दशा से रू-ब-रू करवाती उदय प्रकाश की कविताएँ'	डॉ. राधा वर्मा	129-133
✦	**ऐतिहासिक सरोकार**		
1.	संस्कृत साहित्य (काव्य) में ऐतिहासिक स्रोत	डॉ. (श्रीमती) पुष्पा यादव	134-142
✦	**पर्यावरण सन्देश**		
1.	पर्यावरण और किसान	सुशील कुमार सिंह	143-145
2.	समकालीन हिन्दी कविता में पर्यावरण चेतना	डॉ. प्रतिमा यादव	146-150
✦	**बाल जगत**		
1.	बाल साहित्य : दशा एवं दिशा	अमृताधीर	151-153
✦	**बीच बहस में**		
1.	भारत में न्यायिक पुनर्विलोकन : एक समीक्षात्मक विवेचन	ममता सुमन डॉ. अजय सिंह	154-157
✦	**पोथी की परख/समीक्षायन**		
1.	प्रमुख राजनीतिक चिंतकों की विचारधाराओं का संगम	डॉ. आदित्य कुमार	158
2.	महानायक आजाद चन्द्रशेखर	डॉ. अलका द्विवेदी	159
3.	स्त्री चिंतन एवं परम्परा का यथार्थ दस्तावेज	डॉ. तिलकराज चोपड़ा	160
4.	भाषिक शिष्टता का चरम आख्यान	डॉ. रत्ना सिंह	161
5.	अवधी विरहा गीतों का महाकाव्य	डॉ. ज्योति पाठक	162
6.	ऋग्वैदिक असुर और आर्य जाति का वैज्ञानिक विवेचन	डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव	163
7.	प्रौढ़ चिंतन, व्यापक दृष्टिकोण और मानवतावादी दृष्टिकोण का अमर दस्तावेज	डॉ. उषा किरन अग्निहोत्री	164
8.	हास्य-व्यंग्य के बीच से उभरता यथार्थ का रंग	डॉ. चन्द्रमा सिंह	165

सम्पादकीय

प्रकृति ने ज्ञान दिया, ज्ञान ने विज्ञान दिया। विज्ञान ने आधुनिकता को जन्म दिया और आधुनिकता की अंधी आंधी में प्रकृति प्रदत्त संस्कृति नष्ट-भ्रष्ट हो गयी क्योंकि आधुनिकता ने आज के इस भौतिकवादी युग में मनुष्य को एक मशीन में तब्दील कर दिया है महत्वाकांक्षा में पल-बढ़ रहे व्यक्ति को पैसा कमाने की धुन ने सीधे उसे मल्टीनेशनल के कत्लगाह में फेंक दिया गया है जहाँ वह अपनी सभी संवेदनाओं, मूल्यों और समग्र मेधा शक्ति को बेचकर वह पैसा, सिर्फ और सिर्फ पैसा कमाता है। वर्तमान परिवेश में यह उसकी विवशता है। इस जद्दोजहद ने उसे अपने समाज, सम्बन्ध, परिवेश और प्रकृति से काटकर एक ऐसे रपटीले मुकाम पर पहुँचा दिया है जहाँ उसकी रूचि 'पलाश' में नहीं पैकेज में बदल गयी है। आजीविका की व्यस्ततापूर्ण विवशता और आधुनिक जीवन शैली ने हमें प्रकृति से कितना दूर कर दिया है यह आज का सबसे गम्भीर चिंतन का विषय है। प्राकृतिक संसाधनों का अंधाधुध दोहन और आधुनिक उपभोगवादी सभ्यता के नाम पर मानव को ऐसे चौराहे पर लाकर खड़ा कर दिया है जहाँ पर संसार को जीत लेने के बाद भी मानव अपने जीवन को हार रहा है अथाह धन दौलत, वैभव, यश और शौहरत, सुख सुविधाओं और संसाधनों की उपलब्धता के बाद भी आज आदमी परेशान है, उदास है मानसिक तनाव से ग्रस्त है। वर्तमान समय में आज व्यक्ति की सबसे बड़ी समस्या उसका अकेलापन है। बढ़ती जनसंख्या एवं भीड़ के बीच व्यक्ति अकेला होता चला जा रहा है। आज के व्यक्ति की यह हकीकत है। इसके अलावा अन्य भी कारण हो सकते हैं पर वास्तविकता यह है कि हम प्रकृति से निरन्तर और निरन्तर दूर होते जा रहे हैं और ऐसा करते हुए हम विकृति को गले लगा रहे हैं। बात सिर्फ यहीं समाप्त नहीं होती है, प्रगति के नाम पर इस देश में जो कुछ भी हो रहा है, वह और भी गम्भीर चिन्ता का विषय है। सड़क, बिजली और अन्य सरकारी योजनाओं/परियोजनाओं के नाम पर आज लाखों लाख हेक्टेयर वृक्ष वनस्पतियाँ और जंगल उजाड़े जा रहे हैं। वन क्षेत्र सिमट रहे हैं, वन्य प्राणी और वृक्षों की प्रजातियां विलुप्त हो चुकी हैं अथवा विलुप्ता के कगार पर हैं। धरती का तापमान बढ़ रहा है इसके प्रति शायद ही चिंता किसी को हो, यदि है भी तो उनके पास शक्ति रूपी सामर्थ्य भी नहीं है। आज धरती में बढ़ रहे इस विनाशरूपी तूफान को हमें आगे बढ़कर रोकना होगा। पूरी शक्ति एवं सामर्थ्य के साथ हमें प्रकृति के संरक्षण में जुटना होगा तभी हम सम्पूर्ण मानव जाति का कल्याण एक साहित्य सृजन शिल्पी होने के नाते कर पायेंगे।

जहाँ एक ओर सम्पूर्ण विश्व को पर्यावरण प्रदूषण अपनी गिरफ्त में लेता जा रहा है। वहीं दूसरी ओर आतंकवादी आतंक नक्सलियों के प्रहार को झेलता हुआ राष्ट्र, सत्ता के नित नये बदलते समीकरण, धार्मिक विद्वेष, अनियंत्रित कट्टरता, भ्रष्टाचार का बोलवाला, राष्ट्रीयता पर क्षेत्रीयता का दबदबा, तेजी से घटता लिंग अनुपात, सीमाओं पर चौकन्नापन और चौकसी की कमी अर्थात आन्तरिक एवं बाह्य स्तर पर सुरक्षा पर मंडराता खतरा, हिंसा के प्रति प्रतिबद्धता, आणविक सर्वनाश, घनी मारकाट, मानवीय एवं भौतिक संसाधनों का भारी अपव्यय, विषमतावादी अर्थव्यवस्था, मानवाधिकारों का उल्लंघन, हिंसक प्रतिरोध, हिंसा प्रधान विज्ञान और प्रौद्योगिकी, विप्लव युद्ध, बेरोजगारी, आर्थिक मंदी और मँहगाई की त्रासदी अर्थात कृषि उद्योग धन्धे और व्यापार में नये कीर्तिमानों के बावजूद आदमी भूखा मर रहा है। समस्या दिन-प्रतिदिन विकट रूप धारण करती जा रही है। इन सभी के समाधान निकालने के प्रयास असफल हो रहे हैं

इससे इतना तो निश्चित ही है कि हमारे आधुनिक डिग्रीधारी वैज्ञानिक, प्रबन्धक और अर्थशास्त्री इनका हल खोज पाने में सक्षम नहीं दिखाई दे रहे हैं। शिक्षा सदा से संस्कारित, सुव्यवस्थित और सुरक्षित जीवन का मार्ग प्रशस्त करती रही है, पर आज की शिक्षा व्यवस्था ने जीवन को जटिल बना दिया है उसने आदमी को आदमी से अलग कर दिया है। वरना क्या कारण है कि विलक्षण, प्रतिभाशाली और कुशाग्र समझे जाने वाले वैज्ञानिक, पर्यावरणविदों, इंजीनियर और डाक्टरों द्वारा किये जाने वाले शोधकार्य आम आदमी को लाभ पहुँचाने के स्थान पर हानि ही अधिक पहुँचा रहा है। आज इन्हीं शिक्षित लोगों के शोध कार्यों के कारण आम आदमी और वह स्वयं भी संकट में क्यों है ? आदमी, आदमी से बचकर चलना चाहता है। आज भी अपनी सारी ऊर्जा और अर्जित ज्ञान आदमी पर कैसे शासन किया जाए और अधिक से अधिक कैसे और कहाँ से पैसा कमाया जाये, इस बात पर लगा रहा है। भारतीय लोकतंत्र में आज इस समय इन गम्भीर चुनौतियों और बढ़ती समस्याओं का भरत नाट्यम जारी है।

वैश्वीकरण जहाँ एक क्षण हमें भौतिक प्रगति के नित-नूतन सोपान चढ़ने के अनुभव की प्रतीत कराता रहा है, वहीं दूसरी ओर मनुष्यता की अवगति की दारूण-अनुभूतियों से भी परिचित करा रहा है। मनुष्यता के पतन की भीषणतम-त्रासदी मानवीय संवेदना का अनवरत क्षरण, आनन्द कभी उपभोक्तावाद, सम्मोहक-बाजारवाद, आक्रामक-भौतिकवाद, संक्रामक फैशन, सौन्दर्य प्रतियोगिताएं और नारी-देह का अनियंत्रित-अश्लील प्रदर्शन, स्त्री विमर्श के नाम पर पारिवारिक विघटन एवं एकल परिवार की अवधारणा, दलित विमर्श के नाम पर सामाजिक विद्रूपता के दंश हमारी संवेदनाओं को संज्ञा शून्य किये दे रहे हैं। यह विघटनकारी एवं विनाशक स्थिति, प्रगतिशीलता और नवाचार की आड़ में ओढी गई उत्तर आधुनिकता के कारण है। पैसों के केन्द्र पर स्थिति विचारधाराएं मनुष्य को अर्थ पिशाच में परिवर्तित किए दे रही हैं और यही परिवर्तन मनुष्य को संवेदनहीन, स्वकेन्द्रित स्वार्थी बनाये दे रहा है। मानव सभ्यता का इतिहास इस बात का साक्षी रहा है कि ऐसी विषम, संक्रमण एवं जड़ अवस्था के विरूद्ध अलख जगाने और क्रांति का उद्घोष करने का कार्य सदैव साहित्य चिंतकों ने किया है।

एक अच्छे शोधकर्ता को सबसे पहले अपने आस-पास एवं वातावरण में हो रहे परिवर्तन को देखना चाहिए, फिर विचार करना चाहिए कि प्रस्तुत समस्या जनसामान्य के लिये कितनी उपयोगी और हानिकारक हो सकती है व्यापकता एवं उपयोग की दृष्टि से। तभी उसे कलम उठानी चाहिए क्योंकि समस्या पैदा करना एक शोधकर्ता/सृजनशील व्यक्ति का काम नहीं बल्कि समस्या से रूबरू कराना और उसका कैसे समाधान किया जाये जो सम्पूर्ण मानवता के लिये उपयोगी हो। यह सब विषय उसके लेखन में/शोध में उजागर होने चाहिये तभी उस लेखन की उपादेयता एवं उस लेखक को समाज का पथ प्रदर्शक कहा जायेगा।

कृतिका के नियमों के अनुरूप वर्तमान की ज्वलंत समस्याओं से सम्बन्धित विषयों पर विषय-विशेष पर विशेषांक केन्द्रित अंक निकालना सुनिश्चित है। विषय-विशेष पर केन्द्रित **भारतीय मुसलमान : दशा एवं दिशा** की सफलता को ध्यान में रखते हुये हम कृतिका का **अगला 2010 अंक पर्यावरण विशेषांक** के रूप में केन्द्रित करने जा रहे हैं।

इस विषय पर विस्तृत सूचना पत्रिका के अन्दर के पृष्ठों एवं अन्त के कवर पृष्ठ पर अंकित है। कृपया प्रमुख बिन्दुओं को ध्यान में रखते हुये अपने गम्भीर अध्ययन से सम्बन्धित शोधपरक एवं मौलिक रचना सामग्री भेजकर सहयोग प्रदान करने की कृपा करें।

- सम्पादक मण्डल

ज्वलंत प्रश्न

साम्प्रदायिकता एक गम्भीर चुनौती

✍ डॉ. भारतेन्दु श्रीवास्तव* ✍ डॉ. ज्योति सिन्हा**

भारत में विभिन्न जातियों, वर्गों एवं सम्प्रदायों के लोग रहते हैं। यह अपने-2 रीति-रिवाज उपासना एवं विचारों को मानते हुए आपस में मेल मिलाप से रहते हैं एक दूसरे के प्रति सम्मान प्रकट करते हैं। भारतीयों की इसी विशेषता की वजह से यहाँ अनेकता में एकता के दर्शन होते हैं। वर्तमान में विश्व के अनेक देशों में धर्म पर आधारित सरकारें स्थापित हैं परन्तु धर्म एवं सम्प्रदाय के आधार पर इन सरकारों में राजनीतिक एकता एवं राष्ट्रीय एकता की स्थापना नहीं हो सकी है। एक धर्म का दूसरे धर्म के प्रति असहिष्णु होना ही साम्प्रदायिकता है। सम्प्रदाय एक धार्मिक वर्ग है, जिसका समाज में व्याप्त होना गलत नहीं है, परन्तु धार्मिक वर्ग में कट्टरता से साम्प्रदायिकता का जन्म होता है। जो किसी भी समाज एवं राष्ट्र के लिये खतरनाक साबित होती है और राष्ट्रीय एकता क्षरित होती है। स्वामी विवेकानन्द के शब्दों में - ''साम्प्रदायिकता से संसार की कोई उन्नति नहीं होगी पर सम्प्रदायों के न रहने से संसार का काम नहीं चल सकता एक ही दल के लोग सब काम नहीं कर सकते हैं।''[1]

यदि हम विचार करें तो यह समझ सकते हैं कि किसी भी समाज एवं राष्ट्र में समुदाय या सम्प्रदाय का होना सामाजिक रूप से आवश्यक है क्योंकि एक समुदाय के लोग सब कार्य सम्पन्न नहीं कर सकते हैं। परन्तु इस सामुदायिकता को साम्प्रदायिकता के रूप में स्थापित करने वाले गोरी चमड़े के लोग अंग्रेज थे। जिन्होंने अपने शासन को चिरस्थायी बनाने हेतु भारतीयों को सम्प्रदायों में बांटकर अलग-अलग रूप से विशेष व्यवस्था की और एक-दूसरे के बीच शत्रुता पैदा कर झगड़े करवाये। बिट्रिश काल से लेकर वर्तमान तक विभिन्न सम्प्रदायों के अनेक टकराव एवं झगड़े होते रहते हैं। आज भारत के समक्ष साम्प्रदायिकता सबसे गम्भीर समस्या है जो राष्ट्रीय एकता एवं सामाजिक सम्बन्धों को छिन्न-भिन्न कर रही है। 27 फरवरी 2002 को गोधरा (गुजरात) काण्ड ने न केवल गुजरात को झुलसाया वरन् इस आग की लौ का अहसास पूरे देश को हुआ।

साम्प्रदायिकता हमारी दूषित अलगाववादी प्रवृत्ति की, आन्तरिक कलुषकी, (साधारणत: साम्प्रदायिकता का तात्पर्य दो धार्मिक सम्प्रदायों के बीच प्रतिद्वन्दता तथा परस्पर संघर्ष से माना जाता है। दूसरे शब्दों में - साम्प्रदायिकता से आशय, समाज के एक समूह अथवा एक सम्प्रदाय के परस्पर वैमनस्य द्वेष, ईर्ष्या, विरोध एवं संघर्ष की भावना रखने से है।) समाज के विघटन की सूचक है। वास्तव में साम्प्रदायिकता भारतीय समाज के लिए एक भयंकर अभिशाप है। साम्प्रदायिकता से जहाँ एक ओर सामाजिक शान्ति एवं व्यवस्था भंग होती है, वहीं दूसरी ओर यह विकास की प्रक्रिया को भी प्रभावित करती है। सामान्यत: यह माना जाता है कि धार्मिकता के कारण साम्प्रदायिकता का जन्म होता है परन्तु साम्प्रदायिकता फैलाने में प्रमुख भूमिका धार्मिक तत्वों की नहीं वरन् गैर धार्मिक तत्वों की होती है। इसके साथ-साथ एक अवधारणा यह भी है कि केवल हिन्दू-मुस्लिमों के बीच ही साम्प्रदायिक झगड़े होते हैं। अर्थात् केवल मुसलमान

✍ 64 लांगसवर्ड ड्राइव, स्कारबोरो, ओनटारियो, कनाडा, एम. आई. वी.-3A3*
✍ प्रवक्ता-संगीत-भारती महिला पी. जी. कालेज, जौनपुर (उ. प्र.)**

लोग ही साम्प्रदायिकता को बढ़ावा देते हैं परन्तु यह निराधार है। यदि मुस्लिम धर्मान्धिता भारत में साम्प्रदायिकता को बढ़ावा देने के लिए उत्तरदायी है तो हिन्दुओं के संगठन इसके लिए कम उत्तरदायी नहीं हैं। राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ, हिन्दू महासभा और शिवसेना, बजरंग दल आदि संगठन हिन्दू राष्ट्रवाद में विश्वास करते हैं और हिन्दुओं को अपने धर्म के प्रति अधिक कट्टर बनाकर मुसलमानों के प्रति घृणा पैदा करते हैं जिसके फलस्वरूप हिन्दू-मुसलमानों में आपसी द्वेष पैदा होता है जो राष्ट्रीय एकता के संरक्षण में एक बड़ी बाधा हैं। भारत की कुछ सरकारों द्वारा अपनायी जाने वाली तुष्टिकरण की नीति के कारण साम्प्रदायिक अलगाव की भावना निरन्तर बलवती हो रही है। देश के अधिकांश लोग आपसी सद्भाव, भाईचारा, शान्ति और एकता का जीवन व्यतीत करना चाहते हैं परन्तु क्षुद्र राजनीतिक स्वार्थो की पूर्ति करने वाले लोग पाश्विक प्रवृत्तियों को उकसाते रहते हैं। राजनीतिज्ञों का एक बड़ा वर्ग अपने हितों की पूर्ति हेतु धार्मिक तनावों को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। आज के राजनेता सेकुलर होने का दावा तो करते हैं परन्तु कहीं न कहीं धार्मिक भावना से ग्रसित रहते है। आज आरक्षण के नाम पर वोट बैंक बनाने व लोगों को आपस में बाँटने की एक कूटनीतिक चाल है। शिक्षा, बेरोजगारी, भूखमरी और गरीबी दूर करने का एकमात्र उपाय आरक्षण नहीं है परन्तु यह राजनेता आरक्षण के नाम पर अपना उल्लू सीधा करने में कोई कसर नहीं रख रहे हैं।

देश की एकता एवं अखण्डता के रक्षक ये राजनेता संसद के सदनों में देश की एकता एवं अखण्डता को अक्षुण्ण रखने की कसम खाते हैं। लेकिन इसके ठीक विपरीत सत्ता के लालची यह राजनेता अपने स्वार्थों के लिये हम भारतीयों (हिन्दू-मुसलमानों) को जाति, धर्म, भाषा, क्षेत्रवाद के नाम पर आपस में फूट डालकर साम्प्रदायिक दंगे कराते हैं। भारतीय जनजीवन से वोटों की राजनीति पर आधारित साम्प्रदायिकता का उन्मूलन परमावश्यक है।

साम्प्रदायिकता की अभिवृद्धि में अन्य तत्वों की भी महत्वपूर्ण भूमिका है जैसे यह माना जाता है कि नौकरशाहों की स्वेच्छाचारिता साम्प्रदायिकता को बढ़ावा देती है। लन्दन के एक साप्ताहिक इकनोमिस्ट के अनुसार भारत के तीव्र विकास में नौकरशाही सबसे बड़ा रोड़ा है।"[2] क्योंकि यह अधिकारीगण अपने वातानुकूलित कक्षों में बैठकर आराम फरमाते हैं। नौकरशाही का राजनीतिकरण हो गया है। राजनेता अपने अनुसार अधिकारी बैठाते हैं और मन मुताबिक काम कराते हैं। आमजन मुसीबतों का सामना कर रहा है। इससे भी सौम्य प्रवृत्ति के लोग उग्र रूप धारण कर हड़ताल आदि आयोजित कर साम्प्रदायिकता को बढ़ाते हैं और अपनी माँगे पूरी करवाते हैं। इसके साथ ही साथ एक कारण यह भी है कि तुष्टिकरण की राजनीति से भी देश की साझी संस्कृति का सर्वाधिक नुकसान हुआ है। भारत के श्रेष्ठ मानवीय गुणों प्रेम, दया, सौहार्द एवं वसुधैव कुटुम्बकम की भावना का सर्वथा लोप होता जा रहा है जो सर्वाधिक चिन्ताजनक है।

ऐसी चिन्ताजनक एवं निराशाजनक स्थिति को अधिक समय तक सहन नहीं किया जा सकता है हमें समझना होगा कि साम्प्रदायिक एवं जातीय एवं क्षेत्रीय राजनीति का उद्देश्य हममें विभाजन की प्रवृत्ति उत्पन्न करना है। पं. नेहरू ने भी साम्प्रदायिकता के संदर्भ में कहा था कि - अब निश्चित रूप से वह समय आ गया है जब प्रत्येक भारतीय को अपने अन्तर में देखना चाहिये और अपने आपसे पूँछना चाहिए कि वह राष्ट्र के साथ है या किसी विशिष्ट समूह के। यह हमारे समय

की चुनौती है जिसका प्रत्येक नर-नारी और बच्चों को सामना करना है।

वर्तमान परिदृश्य में साम्प्रदायिकता अपने बहुआयामी रूप में पल्लवित एवं विकसित हो रही है। साम्प्रदायिकता को अब हिन्दू और मुसलमान तक सीमित नहीं किया जा सकता है। अब यह हिन्दू-मुसलमान के साथ-साथ हिन्दू-हरिजन, हिन्दू-बौद्ध, ब्राह्मण, जैन आदि रूपों में भारतीय समाज में व्याप्त है। जिसके विषैले प्रभाव से सम्पूर्ण भारतीय जनमानस विषाक्त हो चुका है।

अतएव आज साम्प्रदायिक और धार्मिक तनाव, संघर्ष रोकने के लिये कड़े व खुले कानूनों की आवश्यकता है। इन कानूनों के निर्माण एवं अनुपालन के साथ हम शिक्षित भारतीयों का सर्वप्रथम यह कर्त्तव्य भी होना चाहिए कि देश को विभाजित करने वाली साम्प्रदायिक राजनीति से हम अपने को दूर रखें जिससे भारत में लोकतांत्रिक एवं मानवीय मूल्यों का सम्बर्द्धन हो और भारत से साम्प्रदायिकता रूपी विष वृक्ष का विनाश किया जा सके।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. हिन्दू धर्म पुस्तिका, विवेकानन्द, पृ.-82
2. प्रतियोगिता दर्पण सितम्बर 2008, पृ. 358
3. साम्प्रदायिकता और राष्ट्रीय एकता, डॉ. विनीता गुप्ता, शोध पत्रिका, पृ. 38

पृथ्वी के अन्दर मानव द्वारा जब खनन का कार्य प्रारम्भ किया गया तब उसे नहीं मालूम था कि वह ऐसा कार्य कर रहा है जो उसके अपने लिए भी घातक सिद्ध हो सकता है अर्थात् यह मानव का पर्यावरण प्रदूषण के प्रति छेड़छाड़ का प्रथम प्रयास था, जिससे कि पर्यावरण को प्रदूषित करने की प्रक्रिया आरम्भ हुयी थी। तत्पश्चात मानव ने जानवरों से रक्षा एवं अपने भोजन को प्राप्त करने के लिए पत्थरों को तोड़कर हथियार बनाये तो यह भी प्रकृति से छेड़छाड़ का दूसरा प्रयास हुआ। इसके साथ ही मानव ने जैसे ही आग जलाने की कला सीखी तो वायु प्रदूषण प्रारम्भ हो गया। खाद्य आवश्यकताओं व आवास की तलाश में जब उसने वनस्पतियों का दोहन शुरू किया तो, प्राकृतिक संतुलन गड़बड़ाने लगा। खाने की वस्तुओं की तलाश में मानव ने लकड़ी का जैसे ही जलाना शुरू किया तो वायुमंडल असुरक्षित हो गया और वनों के लगातार कटने से सब कुछ अव्यवस्थित सा हो गया। भौतिकता की दौड़ एवं तकनीकी तथा प्रौद्योगिकी के विकास ने विभिन्न तरह के प्रदूषणों को जन्म दिया। बड़े उद्योगों के बढ़ने से उनसे निकलने वाले धुएं से वायुमंडल प्रदूषित तो हुआ ही इसके साथ ही उससे निकलने वाले कचरे से मिट्टी तथा उत्सर्जित जल से जल संसाधनों पर खतरा मंडराने लगा। इतना ही नहीं नित नूतन औद्योगिक इकाइयों के शुरू होने से उससे निकलने वाले इलैक्ट्रॉनिक कचरे से नाभिकीय प्रदूषण, समुद्री प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण व वायु प्रदूषण (जहरीली गैसें, धुएं व उड़ी राख) तेजी से अपनी विनाश लीला फैला रहे हैं और अब ऐसा लगने लगा है कि अचानक बाढ़, सूखा, मृदा अपरदन, अम्ल वर्षा जैसी प्राकृतिक आपदाएं बढ़ने के साथ ही वर्तमान में मानवता भी सुरक्षित नहीं प्रतीत हो रही है। आज पर्यावरण की समस्या व इसके संरक्षण, प्रबन्धन की दिशा में चिंतन व सार्वभौमिक सोच का होना लाजिमी हो गया है। कृपया उपरोक्त विषयों पर अपने सामाजिक ज्ञान, अनुभव की सीमाओं को ध्यान में रखते हुये शोधपूर्ण, तथ्यपरक एवं वैज्ञानिक तर्कों से युक्त शोध आलेख/लेख प्रेषित कर रचनात्मक सहयोग देने की कृपा करें।

चिंतन-चिंता

आधुनिक कथा साहित्य में अभिलषित यौन विद्रूपता

✍ डॉ. संजय कुमार सिंह

मुंशी प्रेमचंद हिन्दी साहित्य इतिहास के ऐसे साहित्यकार हैं जिन्होंने समाज की वह प्रत्येक नब्ज टटोली थी, जहां पर बीमारी अपनी जड़ जमा रही थी। एक कुशल सामाजिक डॉक्टर की तरह बीमारी को समझने के साथ उसे दूर करने के नुस्खे भी समाज को दिये। 'हिन्दी उपन्यास साहित्य के संदर्भ में आलोच्य युग को 'प्रेमचंद युग' की संज्ञा लगभग निर्विवाद रूप में मिल चुकी है क्योंकि सेवासदन (1918) का प्रकाशन न केवल प्रेमचंद (1880-1936) के साहित्यिक जीवन की वरन हिन्दी उपन्यास की भी एक महत्वपूर्ण घटना थी। आधुनिक हिंदी साहित्य के निर्माता प्रेमचंद अपने समकालीनों से इस मामले में बिल्कुल अलग दिखते हैं कि उन्होंने समाज के पिछले 500 सालों के अलिखित दस्तावेज को जो सिर्फ इतिहास रह गया था, अपने साहित्य के माध्यम से जनता के सम्मुख निर्भीकता एवं बिना किसी लाग लपेट, पूर्वाग्रह के रखा। समाज की विभिन्न प्रकार की समस्याओं जैसे निर्धनता, बेरोजगारी साम्प्रदायिक हिंसा, पिछड़ी जातियों की समस्या, महिलाओं के विरूद्व हिंसा, निरक्षरता, कृषक की गरीबी एवं ऋणग्रस्तता, सामंतों, राजे, महाराजे एवं जमींदारों की निरंकुशता, मद्यपान और वेश्यावृत्ति पर गंभीर विचार कारण एवं निवारण सहित अपने सहित्य में स्थान दिया।

सम्प्रति हम यहां पर मुंशी प्रेमचंद के साहित्य और तत्कालीन समाज की भयंकर कुप्रवृत्ति, वेश्यावृत्ति पर विचार करने के लिये प्रस्तुत हुए हैं। वेश्यावृत्ति एक गंभीर सामाजिक समस्या थी, है और संभवत: रहेगी भी। ''सामाजिक समस्या को आदर्श का विचलन माना गया है जो सामूहिक प्रयत्न से ही ठीक हो सकता है।''[2] सामाजिक समस्यायें ही नहीं बल्कि प्रत्येक प्रकार की समस्या सापेक्ष होती है अर्थात जो कुछ दशकों पहले सामाजिक समस्या नहीं मानी जाती थी वह कुछ ही दशकों पश्चात एक नाजुक सामाजिक समस्या बन सकती है। जैसे भारत में 1820 या 30 के आस-पास जनसंख्या विस्फोट एक सामाजिक समस्या के रूप में नहीं देखी जाती थी परन्तु 1850 के आसपास एक गंभीर समस्या बन गई। ''सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तनों के कारण समाज में समस्यायें उत्पन्न होती हैं। सामाजिक परिवर्तन का अर्थ है, प्रतिमानित भूमिकाओं में परिवर्तन या सामाजिक संबंधों के जाल में परिवर्तन या समाज की संरचनाओं और संगठन में परिवर्तन।''[3]

वेश्यावृत्ति नामक सामाजिक समस्या का प्रारम्भ बहुत ही उलझा हुआ और रहस्यात्मक है, परन्तु इतना तो निश्चित है कि यह एक अति पुरातन सामाजिक बुराई है। ''आदमी जबसे समूहों में रहने लगा, तभी से इस बुराई ने अपने पैर पसारे।''[4] अर्थात वेश्यावृत्ति का उद्गम काल उतना ही पुराना है जितना कि मानवों के सामूहिक जीवनयापन का इतिहास। इलियट और मैरिट के अनुसार "Prostitution is an illicit sex union a promiscuous and mercenary basis with accompanying emotional indifference"[5] अर्थात वेश्यावृत्ति एक भेदरहित और धान के लिए स्थापित किया गया अवैध यौन सम्बंध है जिसमें उद्वेगात्मक

✍ रीडर, हिन्दी विभाग, फिरोज गाँधी कालेज, रायबरेली

उदासीनता होती है। इसका सीधा सा अर्थ यह है कि वेश्यावृत्ति का मूल कारण प्रथमतः आजीविका ही है। जो लोग इस वृत्ति को अपनाते हैं, वे इससे आनन्द, सुख या यौन इच्छा की पूर्ति नहीं चाहते, बल्कि अपनी जीविका चलाना चाहते हैं।

'सेवासदन' नामक उपन्यास में मुंशी प्रेमचंद ने वेश्यावृत्ति पर अपने तर्क पूर्ण विचार रखे हैं। उन्होंने इसके कारण एवं निवारण पर एक वैज्ञानिक साहित्यकार की तरह अपनी प्रबल पक्ष धारणा पेश की है। वेश्यावृत्ति के प्रमुख कारणों में निर्धनता सर्वोपरि है। ''निर्धनता के कारण जब आधारभूत आर्थिक आवश्यकताओं तक की पूर्ति नहीं हो पाती है तो अनेक स्त्रियां वेश्यावृत्ति को अपनाने के लिए विवश हो जाती हैं वास्तव में धन के बदले मे अपने शरीर को दूसरे के हाथ बेच देना ही वेश्यावृत्ति है।''[6] मुंशी जी ने इसको बखूबी समझा था तभी तो वे लिखते हैं कि ''इस तरह की बुराइयों का मुख्य कारण आर्थिक कष्ट ही है। बेकारी दिन-दिन बढ़ती जाती है। मजदूरों को मजूरी नहीं मिलती किसान तबाह हुये जा रहे हैं। पढ़े लिखे आदमी भूखों मर रहे हैं। व्यापारियों का दीवाला निकला जा रहा है। फिर ऐसी बारदातें क्यों न हों और क्यों न चकले आबाद हो। घर वालों का दुर्व्यवहार भी बहुधा स्त्रियों के पतन का कारण हुआ करता है।''[7] इसका दूसरा कारण है जीवन स्तर को ऊंचा उठाने का लोभ, अर्थात कुछ लोगों में अच्छा खाने, पीने, पहनने का लोभ इतना ज्यादा उत्कृष्ट होता है कि वे उसके लिए कुछ भी करने को तैयार रहते हैं। बहुत सी लड़कियां इसलिये भी यौन सम्बंध बना लेती हैं क्यों उनके पास सिनेमा का टिकट खरीदने या अच्छी साड़ी खरीदने के लिए पैसे नहीं है''[8] प्रेमचंद जी 'सेवासदन' में सुमन नामक पात्र के माध्यम से अपनी बात कहते हैं ''सुमन ने सोचा मैं कैसी हतभागिनी हूँ, एक वह स्त्रियां हैं जो आराम से तकिये लगाये सो रही हैं। लौंडिया पैर दबाती हैं। एक मैं हूँ कि यहां बैठी हुई अपने नसीब को रो रही हूं। रूखी सूखी रोटियां खाती हूं, नित्य घुड़किया सुनती हूँ, क्यों ? मर्यादा पालन के लिए ही न ? लेकिन संसार मेरे इस मर्यादा पालन को क्या समझता है ? उसकी दृष्टि मे इसका क्या मूल्य है ? क्या यह मुझसे छिपा हुआ है ? दशहरे के मेले में मुहर्रम के मेले में, फूलबाग में, मंदिरों में सभी जगह तो देख रही हूं। आज तक मैं समझती थी कि कुचरित्र लोग ही इन रमणियों पर जान देते हैं, किंतु आज मालूम हुआ कि उनकी पहुंच सुचरित्र और सदाचारशील पुरूषों में भी कम नहीं है।''[9]

कभी-कभी परिवार स्वयं भी वेश्यावृत्ति का कारक बन जाता है। अध्ययनों से पता चलता है कि ''अनेक वेश्याएं टूटे परिवार तथा अनैतिक परिवार से आई हैं। ऐसे परिवार जहां माता-पिता या पति का देहान्त हो गया है, जहां परिवार का संरक्षक या प्रमुख कमाने वाला बहुत बीमार रहता है, जहां मां घर से बाहर काम करने जाती है। जहां विवाह विच्छेद द्वारा माता पिता या पति पत्नी में विवाह सम्बंध टूट गया है जहां परिवार के सभी सदस्यों को एक ही कमरे में रहना और सोना पड़ता है, जिससे यौन सम्बंधी व्यवहार कोई गुप्त विषय नहीं रह जाता है जहां परिवार गंदी बस्तियों में निवास करता है... ऐसे परिवार वेश्याओं को जन्म देने के अनुकूल स्थान है।''[10] 'सेवासदन' में सुमन का विवाह गजाधार के साथ करवाया जाता है। गजाधार के घर का वातावरण सुमन के नैंहर वाले घर से बिल्कुल विपरीत होता है। कहां यह खुला-खुला और चहल-पहल, किलकारियों से गूंजता भरा पूरा परिवार स्वस्थ पास पड़ोस और कहां गजाधार बाबू का वह नीरस कमरा जिसमें बेचैनी, घुटन, तड़पन एवं कुण्ठा के सिवा और कुछ

नहीं था जो सुमन को सांत्वना देता। इस विद्रूप माहौल ने सुमन के ह्रदय में विद्रोह के अतिरिक्त क्षोभ और टीस के अतिरिक्त कुछ भी पैदा करने में समर्थ नहीं था। परिणाम, सुमन कालांतर में वेश्या बन जाती है। सेवा सदन की वेश्या भोली बाई सुमन से कह उठती है- "तुम लाख छिपाओ मैं ताड़ गई सुमन, बुरा न मानों तो कह दूं, मैं जानती थी कि कभी न कभी तुमसे खटकेगी जरूर। एक गाड़ी में कहीं अरबी घोड़ी और लद्दू टट्टू जुत सकते हैं। तुम्हें तो किसी के घर की रानी बनना चाहिये था। मगर पाले पड़ी एक खूसट के जो तुम्हारा पैर धोने के लायक भी नहीं।"[11] विवाह सम्बंधों में पति-पत्नी की उम्र भी इसका एक कारण है। दोनों की उम्र में अधिक अंतर होना इस समस्या को जन्म देता है सुमन के साथ यही होता है कि उसका विवाह एक ऐसे अधेड़ व्यक्ति से कर दिया जाता है जो उसके पिता की उम्र का है। "मेरे मां-बाप ने मुझे एक बूढ़े मियां के गले बांध दिया था। उसके यहां दौलत थी सब तरह का आराम था, लेकिन उसकी सूरत से मुझे नफरत थी। मैंने किसी तरह तो छह महीने काटे आखिर निकल खड़ी हुई"[12]

बुरा पड़ोस भी वेश्यावृत्ति का एक कारण है। सुमन के साथ यही होता है कि उसके घर के सामने भोली बाई नामक वेश्या का शानदार महल है जो उसे विभिन्न परिस्थितियों के चलते वशीभूत कर लेता है। "गंदी बस्तियों में जहां कि मकान बहुत पास-पास बने रहते हैं जहाँ भीड़-भाड़ अधिक होने के कारण बुरे लोगों को छुपने का स्थान मिल जाता है वहां वेश्यावृत्ति अधिक फैलती है।"[13] 'सेवासदन' में कुछ ऐसा ही बुरा पड़ोस है प्रेमचंद के शब्दों मे देखिए "सुमन के घर के सामने भोली नाम की एक वेश्या का मकान था। भोली नित नये शृंगार करके अपने कोठे के छज्जे पर बैठती। पहर रात तक उसके कमरे से मधुर गान की ध्वनि आया करती। कभी-कभी वह फिटन पर हवा खाने जाया करती।"[14]

दहेज प्रथा ने भी परोक्ष रूप से वेश्यावृत्ति को बढ़ावा दिया है। "प्रत्येक के माता-पिता के लिए कन्या के विवाह में देने के लिए आवश्यक दहेज उचित समय पर जुटाना सम्भव नहीं होता है, इससे अनेक लड़कियां अधिक आयु तक अविवाहित रहती हैं और अनुचित यौन सम्बंध स्थापित कर लेती हैं। इतना ही नहीं दहेज की मांग को पूरा न कर सकने पर योग्य वर नहीं मिल पाता है।"[15] प्रेमचंद लड़कियों के इस दर्द को बहुत ही शिद्दत के साथ अहसास करते हैं- "... हम कोई भेड़ बकरी तो हैं नहीं कि मां-बाप जिसके गले मढ़ दे बस उसी के हो रहें... यह बेहूदा रिवाज यहीं के लोगों में है कि औरत को इतना जलील समझते हैं, नहीं तो और सब मुलकों में औरतें आजाद हैं। अपनी पसंद से शादी करती हैं और जब उससे रास नहीं आती तो तलाक दे देती हैं।"[16]

वेश्यावृत्ति पर अंकुश लगाने हेतु उनके निवारण पर भी मुंशी जी ने अपनी लेखनी चलाई। वेश्यावृत्ति पर नियंत्रण के प्रमुख उपायों पर विचार करें तो पहला यह कि "अबलाओं के लिये सुदृढ़ आर्थिक स्थिति की व्यवस्था करनी होगी"[17] नवयुवक एवं नव युवतियों को वेश्यावृत्ति के दुष्परिणामों के बारे में बताना चाहिये, समुचित यौन शिक्षा देनी चाहिए"[18] जो वेश्यायें अपने पेशे से ऊबकर उसे छोड़ना चाहती हैं... ऐसी वेश्याओं को समाज द्वारा पूर्ण स्वतंत्रता मिलनी चाहिए ताकि वे मन के अनुसार पेशे को चुन सकें,[19] उचित आयु में यथा सम्भव शीघ्र विवाह कर देना बहुत आवश्यक है जिससे कि वेश्या गमन पर नियन्त्रण पाया जा सकता है।[20]

उपर्युक्त उल्लिखित उपायों के साथ ही साथ मुंशी जी ने कुछ और दृष्टियां प्रदान की। उन्होंने इसे पापोत्तेजना करार दिया तथा इस पर नियंत्रण को प्रमुख सूत्र माना। "शराब की दुकानों को हम बस्ती से दूर रखने का प्रयत्न करते हैं, जुए खाने से भी हम घृणा करते हैं लेकिन वेश्याओं की दुकानों को हम सुसज्जित कोठों पर चौक बाजारों में ठाठ से सजाते हैं। यह पापोत्तेजना नहीं तो और क्या है?... इसलिए यह आवश्यक है कि इन विषभरी नागिनों को आबादी से दूर किसी पृथक स्थान में रखा जाय।"[21]

मुंशी प्रेमचंद जी धार्मिक एवं साम्प्रदायिक संकीर्णताओं को दूर कर इस समस्या के निवारण पर विचार करते हैं। सेवासदन के पात्र शरीफ हसन के माध्यम से कुछ इस तरह कहते हैं- "इस्लाम भी उन्हें राहे-रास्ते पर लाने की कोई कोशिश नहीं करता... जो औरत किसी वजह से गुमराह हो गई उसकी तरु से इस्लाम हमेशा के लिए अपनी आंखे बंद कर लेता है।"[22] सामाजिक भ्रष्टाचार, अनैतिकता, प्रशासनिक भ्रष्टाचार, शैक्षणिक अवनति भी इसके प्रमुख कारणों में से एक है बिना इसे दूर किए हम इस गंभीर कुप्रवृत्ति पर अंकुश नहीं लगा सकते। मुंशी जी ने सेवासदन उपन्यास में कुंवर अनिरूद्ध सिंह से इस बात को प्रमाणित करते हैं "हमें वेश्याओं को पतित समझने का कोई अधिकार नहीं है, यह हमारी परम धृष्टता है... हमारे ही शिक्षित भाइयों की बदौलत दाल मण्डी आबाद है, चौक में चहल पहल हैं, चकलों में रौनक है। यह मीना बाजार हम लोगों ने ही सजाया है, ये चिड़िया हम लोगों ने ही फांसी हैं। जिस समाज में अत्याचारी जमींदार, रिश्वती राज्य कर्मचारी, अन्यायी महाजन, स्वार्थी बंधु आदर और सम्मान के पात्र हों। वहां दालमण्डी क्यों न आबाद हो। जिस दिन नजराना, रिश्वत, और सूद-दर-सूद का अंत होगा उसी दिन दालमण्डी उजड़ जायेगी।"[23]

मुंशी प्रेमचंद इसे बंद कराने के लिए कानून का सहारा लेना उचित मानते हैं। वे चाहते थे कि ऐसा कोई सख्त कानून बनाया जाय जिससे इस समस्या पर रोक लगाई जा सके। अपने उपन्यास गबन में एक पात्र रमेश से कहलवाते हैं "मेरा वश चले तो, मैं कानून से यह दुराचार बंद कर दूँ।"[24] वेश्याओं के नाच गानें, एवं उनके ऊपर अथाह पैसा लुटाने वालों की भी मुंशी जी जमकर खबर लेते हैं। "हां अज्ञान की मूर्तियों। हां विषय भोग के सेवकों, तुम्हें नाच का नाम लेते लज्जा नहीं आती। अपना कल्याण चाहते हो तो इस रीति को मिटाओ। इस कुवासना को तजो, वेश्या प्रेम का त्याग करो।"[25]

संदर्भ पुस्तकें

1. हिंदी साहित्य का इतिहास, सम्पादक-डॉ0 नगेन्द्र, मयूर पेपर बैक्स 1999-पृष्ठ - 573
2. सामाजिक समस्यायें, राम आहूजा, रावत पब्लिकेशंस नई दिल्ली 1999 पृष्ठ - 01
3. सामाजिक समस्यायें, राम आहूजा, रावत पब्लिकेशंस नई दिल्ली 1999 पृष्ठ - 23
4. सामाजिक समस्यायें, सरला दुबे, विवेक प्रकाशन, दिल्ली 1999 पृष्ठ-91
5. Social disorganization, M.A. Elliot and F.E.Merrill Harper and Brass New York- 1990- Page 155
6. सामाजिक समस्यायें, सरला दुबे, पृष्ठ-93 विवेक प्रकाशन, दिल्ली 1999
7. विचार भाग-2, मुंशी प्रेमचंद, सरस्वती प्रेस नई दिल्ली 1993 पृष्ठ-281
8. सामाजिक समस्यायें, सरला दुबे - पृष्ठ 94 विवेक प्रकाशन, दिल्ली 1999
9. सेवासदन, मुंशी प्रेमचंद, लाइब्रेरी बुक सेंटर नई दिल्ली 1990, पृष्ठ-35

10. सामाजिक समस्यायें, सरला दुबे- पृष्ठ 94-95 विवेक प्रकाशन, दिल्ली 1999
11. सेवासदन, मुंशी प्रेमचंद, लाइब्रेरी बुक सेंटर नई दिल्ली 1990, पृष्ठ-43
12. सेवासदन, मुंशी प्रेमचंद, लाइब्रेरी बुक सेंटर नई दिल्ली 1990, पृष्ठ-43-44
13. सामाजिक समस्यायें, सरला दुबे- पृष्ठ 95 विवेक प्रकाशन, दिल्ली 1999
14. सेवासदन, मुंशी प्रेमचंद, लाइब्रेरी बुक सेंटर नई दिल्ली 1990, पृष्ठ-20
15. सामाजिक समस्यायें, सरला दुबे- पृष्ठ 95 विवेक प्रकाशन, दिल्ली 1999
16. सेवासदन, मुंशी प्रेमचंद, लाइब्रेरी बुक सेंटर नई दिल्ली 1990, पृष्ठ-43
17. सामाजिक समस्यायें, सरला दुबे- पृष्ठ 97 विवेक प्रकाशन, दिल्ली 1999
18. सामाजिक समस्यायें, सरला दुबे- पृष्ठ 97 विवेक प्रकाशन, दिल्ली 1999
19. सामाजिक समस्यायें, सरला दुबे- पृष्ठ 98 विवेक प्रकाशन, दिल्ली 1999
20. सामाजिक समस्यायें, सरला दुबे- पृष्ठ 98 विवेक प्रकाशन, दिल्ली 1999
21. सेवासदन, मुंशी प्रेमचंद, लाइब्रेरी बुक सेंटर नई दिल्ली 1990, पृष्ठ-62
22. सेवासदन, मुंशी प्रेमचंद, लाइब्रेरी बुक सेंटर नई दिल्ली 1990, पृष्ठ-127
23. सेवासदन, मुंशी प्रेमचंद, लाइब्रेरी बुक सेंटर नई दिल्ली 1990, पृष्ठ-197-198
24. गबन, प्रेमचंद, साहित्यागार जयपुर, 1990, पृष्ठ 43-44
25. सेवासदन, मुंशी प्रेमचंद, लाइब्रेरी बुक सेंटर नई दिल्ली 1990, पृष्ठ-138

मानव सभ्यता का प्रादुर्भाव ही जल से हुआ है। अपनी सभ्यता की विकास यात्रा में मानव ने वहीं निवास करना पसंद किया जहाँ उसे जल की पर्याप्त मात्रा बड़ी सुगमता से उपलब्ध हो जाये। अर्थात् गांव बसें, नदियों, नालों, स्रोतों, नहरों एवं झीलों किनारे और शहरों को बड़ी नदियों के किनारे बसाने का कार्य किया गया। जल की इस उपलब्धता और जीवनदायी शक्ति के कारण साहित्य में कहा भी गया है कि 'रहिमन पानी राखिये, बिन पानी सब सून, पानी गये न उबरे मोती माखन चून' और वास्तविकता भी है कि 'जल, प्राणियों, वनस्पतियों के जीवन तथा अन्य प्रक्रियाओं का आधार स्तम्भ स्रोत माना जाता है। जल की अनुपस्थिति होने पर पृथ्वी पर जीवन की कल्पना सम्भव नही है। प्रकृति ने हमें यदि खारा जल दिया है तो उसके साथ हमें मीठा जल भी प्रदान किया है। इसे विडम्बना कहा जाये या विशेषता वह यह कि पृथ्वी का तीन चौथाई भाग पानी से अच्छादित होने के बाद भी हमें पीने लायक पानी मात्र 3 प्रतिशत ही उपलब्ध होता है। परन्तु विडम्बना की बात यह है कि 3 प्रतिशत जल भी उपयोगिता एवं गुणवत्ता खोता जा रहा है। क्योंकि उद्योगों के हानिकारक उत्सर्जित व्यर्थ पदार्थ, घरेलू मल व कचरा, रासायनिक उर्वरक व कीटनाशक व अनेक पदार्थ कैल्शियम, मैग्नीशियम के यौगिक प्राकृतिक स्रोतों से जल में घुल जाते हैं। इसके साथ ही प्रोटोजोआ, जीवाणु तथा अन्य रोगाणु जल को प्रदूषित कर रहे हैं। आज पर्यावरण की समस्या व इसके संरक्षण, प्रबन्धन की दिशा में चिंतन व सार्वभौमिक सोच का होना लाजिमी हो गया है। कृपया उपरोक्त विषयों पर अपने सामाजिक ज्ञान, अनुभव की सीमाओं को ध्यान में रखते हुये शोधपूर्ण, तथ्यपरक एवं वैज्ञानिक तर्कों से युक्त शोध आलेख/लेख प्रेषित कर रचनात्मक सहयोग देने की कृपा करें।

चिंतन-चिंता

एचआईवी/एड्स ! जानकारी ही बचाव है।

✍ अरूण कुमार सिंह

इस शोध अध्ययन में ललितपुर जिले के शहरी किशोरों में एड्स की जागरूकता, एचआईवी के संक्रमण, एड्स फैलने के स्रोतों की जानकारी प्राप्त करने की कोशिश की गयी है। इसके लिये जिला मुख्यालय के माध्यमिक विद्यालयों से कक्षा 11 एवं 12 के 300 छात्रों को प्रतिदर्श के रूप में चुना गया। अब तक प्राप्त आंकड़ों पर नजर डालें तो हम देख सकते हैं कि विगत कुछ वर्षों में किशोर वय वर्ग में एचआईवी का संक्रमण तेजी से बढ़ा है। किशोर वय वर्ग में जोखिम पूर्ण व्यवहार, जीवन कौशल का अभाव तथा किशोरावस्था में होने वाले परिवर्तनों (शारीरिक, मानसिक, सामाजिक एवं संवेगात्मक) के सम्बन्ध में जानकारी का अभाव है। इसलिये इस अध्ययन में किशोरावस्था के छात्रों को प्रतिदर्श के रूप में चुना गया। इन किशोरों पर किये गये परीक्षण के आधार पर पाया गया कि इनमें से अधिकांश किशोर एचआईवी/एड्स के सम्बन्ध में गलत धारणाओं के शिकार हैं, इतना ही नहीं इनके यौन सम्बन्धित जानकारी का स्रोत भी विश्वसनीय नहीं है। अत: यह आवश्यक है कि इन्हें यौन रोगों एवं यौन सम्बन्धित जानकारी देने के विश्वसनीय स्रोतों को बढ़ाया जाये जिससे यह इन रोगों से बच सकें तथा अपने व्यवहार में उचित जीवन कौशल को विकसित कर सकें।

आजकल 25 से 44 वर्ष की आयु में होने वाली मृत्युओं का एक प्रमुख कारण एचआईवी/एड्स है। नाको 2005 के आंकड़ों के अनुसार सिर्फ भारत में ही एड्स प्रभावितों की संख्या 5.134 मिलियन तक पहुँच चुकी है। औसतन लगभग 68 नये व्यक्ति प्रति घण्टे की दर से इस संक्रमण का शिकार हो रहे हैं। इन सम्भावित व्यक्तियों का 35% भाग 15 से 29 वर्ष के युवा हैं (नाको-2005)। यह बीमारी अभी तक लाखों लोगों की जान ले चुकी है जिससे अपार आर्थिक तथा सामाजिक हानि हुई है। केवल भारत में ही वर्ष 2004-05 में 1114 व्यक्तियों की मृत्यु एचआईवी/एड्स से हुई। सबसे चौकाने वाला तथ्य यह है कि अब इस बीमारी ने जोखिम भरा व्यवहार करने वाले समूहों से निकलकर सामान्य जनमानस में भी अपने पाँव फैलाने शुरू कर दिये हैं।

सबसे ज्यादा युवाओं में एचआईवी/एड्स का खतरा मंडरा रहा है। युवा वर्ग डरा हुआ है। वह इस बीमारी के बारे में अनभिज्ञ है, या सामाजिक रूप से उपेक्षित महसूस कर रहा है। यदि वह या परिवार का कोई सदस्य एचआईवी संक्रमित हो चुका है तो या फिर वह अज्ञानतावश इस बीमारी से बचने के उपायों को न जानने के कारण, मृत्यु की गोद में समाता जा रहा है (नाको-यूनिसेफ द्वारा 2002 में किये गये संयुक्त अध्ययन)। यदि यही स्थिति रही तो भविष्य में कार्य करने योग्य युवा बीमारी की चपेट में आकर घर पर बैठ जायेंगे तथा बच्चों को ही रोजी-रोटी की तलाश में बाहर निकलना होगा। स्त्री-पुरूषों को समान न समझने के कारण लड़कियाँ घर पर ही बीमारों की देखभाल करेंगी या घरेलू कामों को निपटायेंगी।

भारत विश्व में एड्स प्रभावितों वाला दूसरा सबसे बड़ा देश बन चुका है, दक्षिण अफ्रीका पहले नम्बर पर है। भारत के छ: राज्यों में महाराष्ट्र,

✍ प्रवक्ता, मनोविज्ञान, श्री वर्णी जैन इण्टर कालेज, ललितपुर (उ. प्र.)

तमिलनाडु, आन्ध्र प्रदेश, कर्नाटक, मणिपुर एवं नागालैण्ड में 1% से अधिक प्रसार दर है पर मुम्बई, चेन्नई और मणिपुर एड्स के केन्द्र के रूप में उभर रहे हैं। यद्यपि देश के अन्य भागों में भी यह तेजी से बढ़ रहा है। लम्हों के खता की सजा सदियाँ कैसे पाती हैं, व्यक्ति के खता की सजा पीढ़ियाँ कैसे भुगतती हैं, इसका दर्दनाक उदाहरण दक्षिणी अफ्रीका के देशों में अनाथ बच्चों की बढ़ती संख्या के रूप में देखा जा सकता है, जहाँ एड्स ने स्वास्थ्य ही नहीं सामाजिक समस्या का रूप भी ले लिया है।

एड्स का कोई टीका न होने के कारण "शिक्षा का टीका" ही एक ऐसी सामाजिक दवा है जिसके द्वारा नये संक्रमणों या प्रभावित व्यक्तियों की संख्या को रोका जा सकता है तथा इससे होने वाले अपूर्तनीय आर्थिक-सामाजिक क्षतियों को रोका जा सकता है।

विधि

इस शोध के अध्ययन में उत्तर-प्रदेश के ललितपुर जिले के 300 छात्रों को प्रतिदर्श के रूप में चुना गया। ये सभी छात्र जिला मुख्यालय के माध्यमिक विद्यालय में कक्षा-11 एवं 12 में अध्ययनरत थे। इनकी उम्र 15 से 18 वर्ष के बीच में थी। इन सभी छात्रों पर विद्यालय एड्स शिक्षा कार्यक्रम (सैप) के आधार पर स्वयं द्वारा तैयार प्रश्नावली को प्रशासित किया गया। प्रश्नावली के सभी प्रश्नों के उत्तर छात्रों द्वारा प्राप्त हो जाने के बाद प्रश्नावली को वापस ले लिया गया तथा इस प्रकार प्राप्त आंकड़ों का संग्रह एवं विश्लेषण किया गया।

परिणाम एवं विवेचना

प्रश्नावली द्वारा प्राप्त आंकड़ों के विश्लेषण के फलस्वरूप यह पाया गया कि 65% छात्र एड्स का पूरा नाम नहीं जानते, 38% छात्रों को विश्वास था कि मरीज के सीधे सम्पर्क में आने से एड्स फैलता है। 91% छात्रों का मानना था कि ब्लड डोनेशन से एड्स फैलता है जबकि 89% छात्र इस बात से सहमत थे कि एड्स संक्रमिक माँ से उसके बच्चे को हो सकता है। 17% छात्र इस बात में विश्वास व्यक्त किये कि एड्स संक्रमिक मरीज के खाँसने और छींकने से उसके आस-पास के लोगों को एड्स हो सकता है। 73% छात्रों ने यह स्वीकार किया कि असुरक्षित यौन सम्बन्ध एड्स फैलाने का कारण है। इन छात्रों में कुछ छात्र ऐसे भी थे जिनके अनुसार एड्स संक्रमिक मरीज से हाथ मिलाने, उसके द्वारा उपयोग में लाई गई तौलिया या साबुन के उपयोग करने तथा उसके साथ खाना खाने से भी एड्स हो सकता है। इसी प्रकार का परिणाम तेजप्रीत कौर कांग (2006) समाज शास्त्र एवं मानव विकास विभाग, पंजाब कृषि विश्वविद्यालय, लुधियाना ने प्राप्त किया, ब्रुक (1993) का हाईस्कूल के छात्रों पर किये गये अध्ययन के परिणाम भी इस अध्ययन की प्रमाणिकता की पुष्टि करते हैं।

उपर्युक्त परिणामों को देखने से पता चलता है कि युवाओं का एक बहुत बड़ा वर्ग गलत धारणाओं का शिकार है। राष्ट्रीय व्यवहारिकता सर्वेलांस 2001 से प्राप्त आंकड़ों के आधार पर पता चलता है कि अधिकांश युवाओं को एचआईवी/एड्स के बारे में सही जानकारी नहीं है। कई राज्यों में किये गये सर्वेक्षण के अनुसार करीब-करीब 84% युवा एचआईवी/एड्स के प्रसार के किन्हीं दो कारणों के बारे में जानते हैं। 73% युवाओं को एचआईवी के फैलने के बारे में गलत धारणाएं हैं, सिर्फ 55% युवा ही बचाव के किन्हीं दो उपायों के बारे में जानते हैं तथा 50% से भी कम युवा

एचआईवी/एड्स के साथ जी रहे व्यक्तियों के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण रखते हैं। आन्ध्र प्रदेश, छत्तीसगढ़, अरूणाचल प्रदेश और मिजोरम के 19 वर्ष से अधिक के युवाओं का सर्वेक्षण किया गया उनमें से 40% ने असुरक्षित यौन सम्बन्ध बनाने के बारे में हामी भरी है। पिछले कुछ वर्षों में किये गये अध्ययनों के आधार पर 7% युवाओं ने यह माना है कि वह कभी न कभी असुरक्षित यौन सम्बन्ध बना चुके हैं। यह दर ग्रामीण पुरूषों में सबसे अधिक 11.6% तथा ग्रामीण महिलाओं में सबसे कम 2% पाई गई हैं। बिहार, झारखण्ड, गुजरात, छत्तीसगढ़ तथा उ. प्र. में 15-24 वर्ष की महिलाओं का सर्वेक्षण किया गया उनमें से 33% महिलाओं ने ही एचआईवी/एड्स के सम्बन्ध में पहले से सुन रखा था। ये सभी आँकड़े विद्यालय एड्स शिक्षा कार्यक्रम के अन्तर्गत अध्यापकों को उपलब्ध कराई गई पुस्तिका के आधार पर है।

एचआईवी/एड्स के सम्बन्ध में जानकारी के विश्वसनीय स्रोतों में वृद्धि न की गई तथा इस सम्बन्ध में उत्पन्न भ्रान्तियों को दूर नहीं किया गया तो वह दिन दूर नहीं जब भारत विश्व में एड्स की राजधानी के रूप में प्रसिद्ध हो जायेगा। यद्यपि एचआईवी/एड्स एक लाइलाज बीमारी है फिर भी कुछ औषधियों का प्रयोग करके इनसे संक्रमिक व्यक्ति अपनी उम्र को बढ़ा सकते हैं, लेकिन इन दवाओं का सेवन उन्हें आजीवन करना पड़ेगा और ये दवाएं इतनी खर्चीली हैं कि इनका बोझ उठाना सबके बस की बात नहीं है। एड्स हममें से किसी को हो सकता है लेकिन हम सभी मिलकर इसको रोक सकते हैं। एचआईवी/एड्स निम्न कारणों से फैलता है :

1. संक्रमिक व्यक्ति के साथ असुरक्षित यौन सम्बन्धों द्वारा।
2. संक्रमिक खून चढ़ाने के कारण।
3. संक्रमिक गर्भवती द्वारा उसके बच्चे में।
4. संक्रमिक व्यक्ति के द्वारा उपयोग में लायी गई सुई/इंजेक्शन द्वारा।

शिक्षा ही एचआईवी/एड्स से बचाव का प्रभावशाली उपाय है। सही निर्णय गलत परिणामों से बचाते हैं, इस बात को ध्यान में रखकर युवाओं में सही निर्णय लेने की क्षमता तथा उचित जीवन कौशल का विकास करना चाहिए। यूनिसेफ नामीबिया ने इसके लिए एक पॉवर मॉडल विकसित किया है :

पी = प्राब्लम = समस्या को समझना

ओ = आप्शन = विकल्पों के बारे में समझना

डब्ल्यू = व्हेट = सभी विकल्पों के अच्छे बुरे के बारे में सोचना।

ई = इलेक्ट = किसी एक विकल्प को चुनना।

आर = रिफ्लेक्ट = निर्णय लेने के द्वारा पड़ने वाले प्रभावों के बारे में सोचना।

विद्यालय एड्स शिक्षा कार्यक्रम के अन्तर्गत नाको द्वारा एचआईवी/एड्स से साधारण बचाव के तीन उपाय बताये गये हैं, जिसे A B C (ए बी सी) माडल के नाम से जानते हैं।

ए = एब्स्टीनेन्स = संयम बरतें (संभोग से बचें)

बी = बी फैथफुल = साथी के प्रति वफादार रहें

सी = कण्डोम = निरोध का सही व समझदारी भरा इस्तेमाल करें

आर्थिक संसाधनों के अभाव में शिक्षा एक सशक्त माध्यम है जिसके द्वारा इस बीमारी से बचा जा सकता है। इसलिये वर्तमान में जागरूकता अभियान के द्वारा इस बीमारी के प्रसार को कम किया जा सकता है (श्रीवास्तव 2005)। इस कार्य

के लिये सम्बन्धित विषय की जानकारी ही पर्याप्त नहीं है बल्कि संवाद, कुशलता, सकारात्मक सोच, मूल्यों पर आधारित तार्किक क्षमता, मानवीय सम्बन्धों का स्वस्थ विकास का भी उतना ही महत्व है (खान 1997)। वह युवा जो अभी-अभी बड़े हुए हैं तथा सेक्स सम्बन्धी अच्छी या गलत जानकारी को प्राप्त करने लगे हैं प्रायोगिक तौर पर इसका अनुभव करना चाहते हैं, उनको सही जानकारी के द्वारा एचआईवी/एड्स फैलाने के बारे में प्रचलित मिथकों, कलंक, भेदभाव, शर्मनाक स्थितियों से बचाया जा सकता है तथा जिम्मेदारी भरे निर्णय लेने के लिये प्रेरित किया जा सकता है।

आज के युवा ही कल के कर्ताधर्ता हैं अतः उनको एक ऐसे साधन के रूप में प्रयोग किया जाना चाहिये जिससे कि महामारी को फैलाने से रोका जा सके। वह युवा जिसको सही जानकारी है, सकारात्मक रूप से एचआईवी तथा यौन रोगों के प्रसार को रोकने में सहायक सिद्ध हो सकता है। वह अपने पारिवारिक सदस्यों तथा मित्रों को सही जानकारी उपलब्ध करा सकता है। स्कूल पारम्परिक रूप से समाज का निर्माण करते हैं तथा एक मॉडल के रूप में कार्य करते हैं। अतः स्कूलों में वाद-विवाद या चर्चा के द्वारा युवाओं को ऐसी जानकारी या क्षमता प्रदान की जा सकती है जिसके द्वारा एचआईवी/एड्स जैसी बीमारी को फैलने से रोका जा सकता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. Anand M (2005) HIV/AIDS : The gender perspective. Social welfare, 3-8
2. Brook U (1993). AIDS related knowledge and attitude of high school student in Holon, Isorael, Journal of Tropical Pediatrics, 39 (6) 382-384
3. http://www.preventing HIV/AIDS in India, htm-2007
4. Khan M.A. (1997). Psycho-Social study of awareness of AIDS among youth. Indian Journal of psychiocology, 99-106
5. NACO-UNICEF sangli study (2002) : the impact of HIV/AIDS related deaths on households and their coping strategies.
6. Neeraja sharma (1999) : Understanding Adolescent. National book trust, New Delhi.
7. Srivastava (2005). AIDS : Awareness is the only weapon. Social welfare, 15(16) 27-28
8. Tejpreet K.K. (2006). Awareness of AIDS and sexual health. Indian journal of Psychometry & Education. Vol. 37(2), 179-182

हमें आप पर गर्व है

सर्वोदय के संवाहक, भू-दान के प्रणेता आचार्य विनोबा भावे

✍ डॉ. बिनोद कुमार सिंह

देवभूमि भारत में समय-समय पर अनेक ऋषि-मुनियों, महापुरूषों का आविर्भाव हुआ, जिसमें सर्वोदय के संवाहक ऋषि परम्परा के ज्योति पुंज आचार्य विनोबा भावे अग्रणी हैं। नैतिक मूल्यों का अनुसरण करने वाले विनोबा जी ने राष्ट्रहित व समाज कल्याण के लिये अपना सर्वस्व अर्पित कर दिया। आचार्य विनोबा भावे एक आध्यात्मिक महाविभूति थे। वे भू-दान और सर्वोदय आन्दोलन के प्रणेता, स्वतन्त्रता सेनानी, उत्कृष्ट समाजसेवी व महान सत्याग्रही थे। उन्होंने देशवासियों में आत्म त्याग और आत्म सम्मान की चेतना जागृत की और समाज को अभिनव दिशा प्रदान की। वे संत और महात्मा के मिले-जुले रूप थे। उनका चिन्तन बहुविध था। सर्वोदय उनके चिन्ता का मूलाधार है। सर्वोदय समाज की स्थापना कर उन्होंने सृजनात्मक कार्यक्रमों को एक सकारात्मक दिशा दी।

आचार्य विनोबा का जन्म 11 सितम्बर 1895 में गांगोदा (महाराष्ट्र) में हुआ था। विनोबा गांधीवाद के सच्चे प्रतिनिधि, गांधीवाद के सच्चे भाष्यकार तथा गांधी के नैतिक एवं आध्यात्मिक उत्तराधिकारी के रूप में प्रतिष्ठित हैं।[1] जिस प्रकार गांधी ने परतंत्र भारत में भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन को अपने चमत्कारिक व्यक्तित्व एवं कृतित्व से अनुपाणित किया उसी प्रकार स्वतंत्र भारत में गांधीवाद ने अपने मूल्यों, आदर्शों एवं रचनात्मक क्रिया-कलापों के द्वारा भारतीय समाज, राजनीति एवं जनमानस को उद्वेलित एवं प्रभावित किया है। गांधी के बाद भारत में जिन विचारकों ने गांधीवादी चिंतनधारा को प्रस्फुटित एवं पल्लवित करने का प्रयास किया है, उनमें आचार्य विनोबा का स्थान सर्वप्रमुख हैं।

गांधी जी के निधन के बाद विनोबा ही एक मात्र ऐसे गांधीवादी कार्यकर्ता रहे जो देश में एक आर्थिक, सामाजिक क्रांति के लिए संलग्न रहे और ग्राम राज्य अर्थात् वास्तविक स्वराज्य कायम कर वर्तमान राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं के समाधान में लगे रहे। भू-दान आन्दोलन को विनोबा ने समाज में आर्थिक, सामाजिक क्रांति लाने की प्रक्रिया माना है। विनोबा का कहना था कि स्वतंत्र भारत में सबको राजनैतिक अधिकार मिल गये, परन्तु सामाजिक और आर्थिक असमानता के कारण आजादी का फल आम जनता को नहीं मिल पाया। आज की सबसे बड़ी असमानता भूमि-वितरण की है। विनोबा का भू-दान आन्दोलन वास्तव में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद इस देश से गरीबी और अमीरी के निराकरण के लिए अहिंसा और सत्याग्रह की नीति पर अधिष्ठित एक अत्यन्त मौलिक एवं प्रभावी योजना थी। यह आन्दोलन सिर्फ जमीन बटोरने का आन्दोलन नहीं था, बल्कि आज जो हमारे देश के सामने नक्सलवाद की समस्या खड़ी है, उनको सुलझाने का एक व्यावहारिक तरीका था।

आचार्य विनोबा भावे के अनुसार सामाजिक संरचना की दृष्टि से सर्वोदयी चिन्तन का आधार विवेकपूर्ण समानता के सिद्धान्त पर आधारित है। जिसमें व्यक्ति, समाज, स्त्रियों का स्थान वर्ण-व्यवस्था, शिक्षा संबंधित धारणायें निहित हैं। विनोबा चाहते थे कि हवा, पानी और जमीन जैसी चीजें जो जीवन के लिए आवश्यक है, सबको

✍ प्रवक्ता, दर्शन शास्त्र विभाग, शिबली नेशनल (पी. जी.) महाविद्यालय, आजमगढ़ (उ. प्र.)

समान रूप में उपलब्ध होनी चाहिये। क्योंकि ये चीजें सबको पर्याप्त मात्रा में मिल जाएगी तो बाकी बची हुई को कोई ज्यादा ले लेगा, तो भी दूसरे को ईर्ष्या नहीं होगी। विनोबा विवेकपूर्ण समानता चाहते थे तथा उसी के आधार पर आध्यात्मिक समानता का लक्ष्य रखते हैं।

विनोबा का सर्वोदयी समाज दण्ड निरपेक्ष होगा। सामाजिक व्यवस्था का आधार दण्ड न होकर लोक सम्मति होगा। विनोबा कुटीर उद्योग के पक्षधर थे। उन्होंने स्पष्ट किया है कि औद्योगीकरण से धन एवं राजसत्ता दोनों का केन्द्रीकरण होता है, शोषण की प्रवृत्ति तथा बेरोजगारी बढ़ती है और बड़े-बड़े मशीनों से सृजनात्मक एवं कलात्मक रूचियाँ समाप्त होती हैं। विनोबा राजनीति के स्थान पर समाज में लोकनीति की स्थापना करते हैं और सत्ता को विकेन्द्रित कर स्वराज्य की स्थापना पर बल देते हैं। विनोबा आधुनिक-दलीय व्यवस्था के स्थान पर निर्दलीय व्यवस्था के पक्षपाती थे। वे सच्चे लोकतंत्र की स्थापना हेतु पंचायती राज्य-व्यवस्था की स्थापना चाहते थे, तथा बहुमत के स्थान पर सर्वमत के सिद्धान्त पर बल देते हैं। विनोबा के अनुसार सामाजिक क्रान्ति का तात्पर्य समाज में आमूल परिवर्तन है। समाज में प्रचलित रूढ़िवादी मान्यतायें जो युग सन्दर्भ के अनुकूल नहीं रह जातीं, उनके स्थान पर नवीन मान्यताओं को स्थापित करने की प्रक्रिया को सामाजिक क्रांति के नाम से जाना जाता है। क्रांति प्रायः दो तरह से की जाती है - अहिंसक और हिंसक। अहिंसक क्रांति के संस्थापक गाँधी थे। इसी आधार स्तम्भ को आगे बढ़ाने का कार्य विनोबा ने किया। उनकी मान्यता है कि हिंसा से न तो स्थायी शांति की स्थापना संभव है और न ही समाजवाद की स्थापना। विनोबा के क्रान्ति का वास्तविक स्वरूप साध्य और साधन की एकरूपता पर अवलम्बित है। इसलिए विनोबा सामाजिक परिवर्तन से अधिक पहले मानसिक परिवर्तन पर बल देते हुए इसे 'क्रांति' की संज्ञा देते हैं और कहते हैं कि मनुष्य का मन बदले, सत्व गुण सामने आये, सारे सात्विक लोग कुल दुनिया की चिन्ता करें, इस तरह सत्व गुण बढ़ेगा, तभी क्रांति होगी।[11]

इस प्रकार हम देखते हैं कि विनोबा जी अनन्त पथ के यात्री थे। वे मानवता, शांति, एकता व अहिंसा के अनन्य साधक थे। आचार्य विनोबा लोगों के चतुर्दिक उन्नयन में आस्था रखते थे और समग्र समाज में व्याप्त विकृतियों व व्याधियों का उन्मूलन करना चाहते थे। इनके नेतृत्व में सर्वोदय आन्दोलन न गांधी जी के आदर्श के अनुरूप सामाजिक एवं राजनीतिक पुनर्निर्माण का उत्तरदायित्व ग्रहण किया। सर्वोदय गांधीवादी जीवन प्रणाली को साकार करने वाला आन्दोलन है। सर्वोदयी-समाज की संरचना हेतु विनोबा जी ने मूल्यों पर सर्वाधिक बल दिया है। इस निमित्त उन्होंने समाज परिवर्तन हेतु मानव के हृदय परिवर्तन आचार-विचार व स्थिति परिवर्तन तथा सत्याग्रह के भावनात्मक पक्ष को ही सर्वोदयी-समाज का आधार बनाया। विनोबा के भू-दान आन्दोलन से प्रभावित होकर जयप्रकाश नारायण सर्वोदयी हुए। विनोबा का निश्चय था कि जब तक देश के एक-एक भूमिहीन किसान के पास अपने निर्वाह योग्य भूमि नहीं हो जाती, मैं इसी तरह यात्रा करता रहूँगा। हम कह सकते हैं कि गांधीवाद एवं सर्वोदय एक दूसरे से अनन्य रूप में जुड़े हुए हैं। सर्वोदय प्रायः गांधीवादी वैचारिक प्रणाली का सार तत्व ही है।

आचार्य विनोबा जैसे महान संत पर गांधी जी के अतिरिक्त महाराष्ट्र के संत नामदेव, ज्ञानदेव, तुकाराम, समर्थ गुरू रामदास तथा रानाडे, तिलक एवं गोखले के विचारों का भी प्रभाव था। शंकराचार्य के विचारों ने इनके तार्किक चिन्तन का सर्वाधिक समाधान किया है। इस तरह हम कह

सकते हैं कि विनोबा के व्यक्तित्व में शंकराचार्य की तार्किक क्षमता, महात्मा बुद्ध की करूणा, ज्ञानदेव की भाव-प्रवणता तथा गांधी के कार्य कौशल का अद्भुत समन्वय था। इसीलिए विनोबा की उत्कृष्टता एवं आध्यात्मिकता पर गांधी जी को गर्व था। ऋषि परम्परा के ज्योति पुंज आचार्य विनोबा 15 नवम्बर 1982 को इस दुनिया को छोड़ सदा के लिए देश की दिव्य अध्यात्मधारा में लीन हो गये। इस महान संत को सन् 1955 में जनसेवा के लिए विश्व प्रसिद्ध मेग्सेसे पुरस्कार तथा मरणोपरान्त देश का सर्वोच्च सम्मान 'भारत रत्न' से सम्मानित किया गया था। वर्तमान समय में हमारे देश में भूमि विवाद एवं जमींदारी प्रथा से उत्पन्न नक्सलवाद की समस्याओं हेतु विनोबा के विचारों को अनुसरण किया जाए, तो न केवल राजनीति का परिष्कार एवं संवर्द्धन होगा, वरन् देश एवं प्रदेश की अनेक समस्याओं का भी निराकरण हो सकेगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. The Social and Political Philosophy of Sarvodaya after Gandhi, Serv-Seva Sangh-1965, P.-5
2. विनोबा, भूदान गंगा, भाग-4, पृ. 28-29
3. धीरेन्द्र मजूमदार-क्रांति : प्रयोग और चिन्तन, सर्वसेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी, 1971, पृ.-66

जैव-प्रौद्योगिकी विश्व सहित भारत जैसे विकासशील देश के लिए विशेष संभावनाओं वाला तकनीकी क्षेत्र है। जैव-प्रौद्योगिकी जीवों एवं जीवित पादप एवं पशु-कोशिकाओं का औद्योगिक प्रयोग है। जैव-प्रौद्योगिकी विश्व की खाद्य सुरक्षा, रोगों की रोकथाम एवं नियंत्रण करने तथा स्वच्छ पर्यावरण की गारंटी देता है। इसे इस प्रकार भी कहा जा सकता है कि यह एक स्वस्थ विश्व की परिकल्पना को सजीव रूप देता है। सर्वप्रथम 1920 ई. में जैव-प्रौद्योगिकी शब्द की व्याख्या हुयी। हालांकि छह हजार ईसा पूर्व इसकी उत्पत्ति के प्रमाण मिलने तब प्रारम्भ हो गये थे जब मदिरा एवं पावरोटी बनने लगी थी। विज्ञान के नए क्षितिज विकसित होने से इस परम्परा का राज खुला साथ ही जैव-प्रौद्योगिकी का प्रयोग मानव कल्याण से जुड़े विभिन्न क्षेत्रों में सुनिश्चित हुआ। आज 21 वीं शताब्दी की दिशा तय करने में जितना योगदान सूचना प्रौद्योगिकी का होगा उससे कहीं अधिक जैव-प्रौद्योगिकी का है। वास्तविकता यह है कि जैव-प्रौद्योगिकी का विकास सन् 1970 के दशक में हुआ क्योंकि इसी समय आणविक एवं कोशकीय जीव विज्ञान की नवीनतम् खोजों ने नये औद्योगिक प्रतिष्ठानों ने मानवता के कल्याण हेतु उपयोग करने के लिए नया मार्ग दिखाया था। जैव-प्रौद्योगिकी एक बहुआयामी विज्ञान है जिसका विकास जीवविज्ञान, रसायनविज्ञान, अभियांत्रिकी, आनुवंशिकी आदि के समन्वित उपयोग से हुआ है। जैव-प्रौद्योगिकी जीवित आर्गेनिज्म को उत्पादन के माध्यम, कोशिका या ऊतक-कल्चर, क्लोनिंग व फर्मेन्टेशन, कोशिका-संलग्न तथा डी.एन.ए. प्रौद्योगिकी हेतु संलग्न करता है। जैव-प्रौद्योगिकी को दो भागों में बांटने पर प्रथम में गैर जीन-जैव-प्रौद्योगिकी जिसमें सम्पूर्ण कोशिकाओं, ऊतक अथवा यहां तक कि एकरूप आर्गेनिज्म के साथ सम्पादन होता है। द्वितीय भाग में जीन-जैव-प्रौद्योगिकी जिसमें जीनों का स्थानान्तरण एक आर्गेनिज्म से दूसरे आर्गेनिज्म में कर दिया जाता है। वर्तमान में गैर-जीन-जैव प्रौद्योगिकी अधिक व्यवहार में लाए जा रहे हैं तथा इसमें निहित विधि प्रणाली व्यवहार में है यथा पादप ऊतक-कल्चर, संकर बीज उत्पादन, सूक्ष्म जैविक फर्मेण्टेशन संकरित एण्टीबायोटिक्स का निर्माण जिसका भारत में बड़े स्तर पर प्रयोग हो रहा है। कृपया उपरोक्त विषयों पर अपने सामाजिक ज्ञान, अनुभव की सीमाओं को ध्यान में रखते हुये शोधपूर्ण, तथ्यपरक एवं वैज्ञानिक तर्कों से युक्त शोध आलेख/लेख प्रेषित कर रचनात्मक सहयोग देने की कृपा करें।

अमर शहीद जगदेव प्रसाद वातायन से

✍ डॉ. चन्द्रमा सिंह

शोषितों का राज, शोषितों द्वारा शोषितों के लिए स्थापित करना ही हमारा लक्ष्य है। यह सही जनतंत्र है। इस सपने को हम ब्राम्हणवाद एवं पूँजीवाद को समाप्त करके ही साकार कर सकते हैं। ऊँची जाति के लोग जात-पात को बनाए रखकर साम्यवाद एवं समाजवाद का ढोल पीटते हैं, वे शूद्रों और अछूतों की आँखों में धूल झोंक कर अपना उल्लू सीधा करना चाहते हैं अब समय आने वाला है जबकि हिन्दुस्तान की राजनीति का निर्णय यहाँ के बहुसंख्यक दबे-कुचले पिछड़े वर्ग के लोग करेंगे। दस प्रतिशत शोषक बनाम नब्बे प्रतिशत शोषित की रोटी और इज्जत की लड़ाई वैज्ञानिक समाजवाद या कम्युनिज्म की असली लड़ाई है। हिन्दुस्तान का असली वर्ग संघर्ष आर्थिक असमानता के ही आधार पर नहीं सामाजिक भेदभाव का आधार पर भी है। यही भारत की मार्क्सवाद-लेनिनवादी वर्ग संघर्ष है। हम तमाम नब्बे प्रतिशत दबे-कुचले लोगों को एक मंच पर इकट्ठा करके उनके हक हिस्से की लड़ाई लड़ते रहेंगे और तब तक लड़ते रहेंगे जब तक इस लड़ाई को मंजिल पर न पहुँचा दें। भले ही इसके लिए हमें अपनी जान क्यों न गवानी पड़े।''

ये उद्‌गार हैं महामानव शहीद जगदेव प्रसाद की अन्तरतल से उपजी वाणी से। वीर सपूत अमर-शहीद जगदेव प्रसाद जी की याद हम इसलिए करते हैं कि ये हजारों वर्षों से दबे-कुचले शूद्रों पिछड़ों एवं शोषितों की जुबान थे। दलित क्रान्ति के अग्रदूत थे। ब्राह्मणवाद पूंजीवाद एवं जातिवाद के कट्टर शत्रु थे। वे महानतम् व्यक्तित्व के स्वामी एवं विद्रोही नेता ही नहीं बल्कि एक महान दार्शनिक भी थे। उनका लक्ष्य वर्ण विहीन, वर्ग विहीन, शोषण से मुक्त समाज की स्थापना करना था।

शोषण के कई रूप हैं - आर्थिक शोषण, राजनीतिक शोषण, धार्मिक शोषण, सामाजिक शोषण, श्रम का शोषण, शिक्षा का शोषण अनेक तरह का शोषण। इन सभी शोषणों की जड़ है पूँजीवाद और ब्राह्मणवाद। भारत के पंडित-पुरोहित हजारों वर्षों से हमें गुलामी की शिक्षा देते आ रहे हैं ये पंडित-पुरोहित ही अंग्रेजों और मुसलमानों की गुलामी का कारण बने।

हिन्दुस्तान में हजारों वर्षों से करोड़ों शूद्र एवं पिछड़ी जातियाँ रहती आयी हैं, जिनका शोषण की हद तक शोषण किया गया। ब्राह्मणों एवं ऊँची जाति के लोगों के प्रति भी शूद्रों, दलितों एवं पिछड़ों ने कोई बगावत नहीं की, कोई क्रांति नहीं की आखिर क्यों ? क्योंकि ब्राम्हणों ने उनके साथ मक्कारी की। उन्होंने शूद्रों को शिक्षा से वंचित रखकर विद्रोह के बीज को ही नष्ट कर डाला। शूद्र कहीं कोई विद्रोह न करें इसलिए उसे अशिक्षित एवं मूर्ख बनाया।

कुछ हद तक शोषण का जिम्मेदार खुद शोषित, दलित, पिछड़ा एवं शूद्र स्वयं है क्योंकि वे अपने को ऊँची जाति के गुलाम समझने लगे। अपना शोषण करवाते रहे अगर हम यह तय कर लें कि हम मर-मिट जायेंगे लेकिन गुलाम न बनेंगे अपना शोषण नहीं होने देंगे तो विश्व की कोई

✍ हिन्दी विभाग, श्री शंकर कालेज, सासाराम (बिहार)

शक्ति हमें गुलाम नहीं बना सकती।

देश की सारी राजनीतिक पार्टियों पर ऊँची जात व पूँजीपतियों का कब्जा है। दबे-कुचले जमात में पले लोगों की स्थिति इन पार्टियों में 'ऊँट के मुँह में जीरा' के समान है। जगदेव बाबू ने इस स्थिति को बदलने का मंसूबा बाँधा और बताया कि जब तक शोषित-दलितों की जनसंख्या के अनुपात में जिंदगी के हर दौर में हिस्सा नहीं प्राप्त होता तब तक सामाजिक न्याय नहीं प्राप्त हो सकता है। सामाजिक क्षेत्र में पुर्नजन्म और भाग्यवाद पर आधारित वर्ण-व्यवस्था की असमानता वाली संस्कृति का समूल खात्मा, ताकि देश की आम जनता वैज्ञानिक उपलब्धियों पर चलकर मानव समता की स्थापना कर सकें।

माननीय प्रो. जयराम बाबू ने जगदेव बाबू की जीवनी लिखने की कोशिश की परन्तु हस्तक्षेप करते हुए जगदेव बाबू ने कहा - "जयराम बाबू मैं कोई बड़ा आदमी नहीं बन पाया हूँ कि मेरी जीवनी लिखी जाए आप अभी प्रतीक्षा कीजिए।" आज जीवनी लिखवाने की होड़ मच गई है।

उन्होंने उद्घोष किया कि दस का शासन नब्बे पर नहीं चलेगा, नहीं चलेगा, सौ में नब्बे शोषित हैं नब्बे भाग हमारा है।" यह उद्घोष इस संकल्प का प्रतीक है कि हिस्सा हारे हुए नब्बे प्रतिशत लोग मंच पर इकट्ठे होकर सत्ता पर दाखिला दें। घर-धरती, राज-पाट पर अपना हिस्सा लेकर रहें। वे चेतावनी स्वरूप कहा करते थे "चूहे को देखकर जब बिल्ली के थन में दूध आ जाए तो चूहे को सावधान हो जाना चाहिए क्योंकि बिल्ली का स्वभाव चूहे को चट कर जाने को था एकाएक उसमें चूहे के प्रति स्नेह कैसे उमड़ गया।"

जगदेव बाबू पर डॉ. लोहिया, बाबा साहब डॉ. अम्बेडकर, रामा स्वामी नायकर और ज्योतिबा राव फूले का काफी प्रभाव पड़ा। इसीलिए उन्होंने भारत में सामाजिक बराबरी के खिलाफ शंखनाद किया। आज के तथा-कथित नेता धर्म निरपेक्षता का नाटक रचते हैं। अयोध्या में मंदिर निर्माण के खिलाफ गिरफ्तारी की नौटंकी करके कुर्सी की राजनीति करते हैं परन्तु जगदेव बाबू ने कुर्सी की राजनीति की जगह दर्शन की राजनीति की। आज देश के लोगों में साम्प्रदायिकता को समाप्त करने की तनिक भी इच्छा है तो मुट्ठी बाँधकर यह कहना होगा कि मंदिर-मस्जिद चंद चालाक लोगों के शोषण का हथियार हैं।

विषमता मूलक ब्राम्हणवाद को समूल समाप्त करने के लिए पुर्नजन्म, भाग्यवाद, अंधविश्वास, चमत्कार एवं जाति प्रथा से छुटकारा पाना होगा और इसे कथनी के अनुरूप करनी में उतरना होगा। आज लोग ब्राम्हणवाद की खात्मे की बात कहकर लोगों की आँखों में धूल झोंकते हैं भारत के प्रधानमंत्री बनने का स्वप्न देखते हैं बेटे का मंडन सिधेश्वर में कराते हैं माता की मृत्यु पर मुंडन कराकर ब्राम्हणों को विशिष्ट अतिथि के रूप में मानकर दान-भोज देते हैं और सोनपुर मंदिर में सपरिवार पत्थर की मूर्ति के सामने हाथ जोड़कर गिड़गिड़ाते हैं। यह सामाजिक न्याय नहीं सामाजिक भटकाव का रास्ता है। ब्राह्मणवाद के खिलाफ बोलने से नहीं कार्य करने की आवश्यकता है। जगदेव बाबू जो बोलते थे वही करते थे। वे डंके की चोट पर कहा करते थे कुत्ता कभी मांस की रखवाली नहीं करता शोषक कभी शोषित का हित नहीं देख सकता।"

जगदेव बाबू तमाम शूद्रों की भलाई के लिए प्राथमिक शिक्षा अनिवार्य, एक समान मानववादी शिक्षा तमाम भूमिहीनों की इंसानी बस्ती में बसाकर रोजगार की गारंटी दिलाने, 20 हॉर्स से ऊपर के सभी उद्योगों को सामाजिकरण करने,

बाबासाहब अम्बेडकर की सभी साहित्यों को सभी पुस्तकालयों में लागू करने, सात वर्षों के अन्दर देश की सभी असिंचित धरती को सींचने, देश के सभी मतदाताओं को तस्वीर वाला परिचय पत्र जारी करने, जनसंख्या के अनुपात में आरक्षण लागू करने, किसानों को अपनी ऊपज का उचित मूल्य दिलाने के लिए 5 सितम्बर 74 से 11 सितम्बर 74 तक राष्ट्रीय स्तर पर सत्याग्रह छेड़ा और उसी संघर्ष के दौरान 5 सितम्बर 74 को अपनी जान की कुर्बानी कांग्रेसी सरकार की गोली खाकर दे दी।

सारा देश हिल उठा। बी. बी. सी. लंदन, पाकिस्तान रेडियो, चीन रेडियो सभी ने प्रमुखता से यह समाचार प्रकाशित किया सर्वहारा के नेता जगदेव प्र. की हत्या गोली मारकर कर दी गई सभी ने श्रद्धांजलि अर्पित की। जगदेव बाबू महान शहीदों की पंक्ति में जुड़ गए।

अमर शहीद जगदेव प्रसाद को हमारी सच्ची श्रद्धांजलि यही होगी कि हम शोषण से मुक्त वर्ण विहीन, वर्ग विहीन भारत के निर्माण के लिए जी जान से काम करें।

यहाँ चिंतन एवं विमर्श का मुख्य बिन्दु यह है कि क्या हम इनके अधूरे कार्यों को पूरा कर पायेंगे ? कभी नहीं, क्योंकि हम लोलुप्त, पथ भ्रष्ट हो गये हैं। जहाँ लोलुप्ता होगी वहाँ मंजिल नहीं मिलेगी। हमारे कर्मों पर जगदेव प्रसाद की आत्मा कराह रही है। आज हम इनके नाम का, सिद्धान्तों का, उसूलों को ब्लैकमेल कर रहे हैं।

हमारी पहचान है लोलुप्ता, एहशान फरोशी, धैर्यहीनता, साहसहीनता, पिछलग्गूपन ये तमाम चीजें हमें कमजोर बनाती हैं। हम रोटी के पीछे होते हैं और सवर्ण सत्ता के पीछे होता है। इसलिए भारतीय राजनीति के क्षितिज पर हमारी कोई पहचान स्थापित नही हो पा रही है।

शहीद जगदेव बाबू ने कड़ी मेहनत, कठिन पढ़ाई, उत्तम स्वास्थ्य की पुरजोर वकालत की। स्वास्थ्य के लिए गाय, भैंस पालना, अखाड़ा खोदना जिसमें व्यक्ति अर्थवान भी होगा और स्वास्थ्य भी बना रहेगा।

"अबकी सावन-भादों में गोरी कलाई कायों में" कहकर कड़ी मेहनत का एलान किया। दोनों पक्ष (पति-पत्नी) को कमाऊ बनने का संदेश दिया इस सूक्ति से उच्च जातियों को धक्का लगा होगा, क्योंकि चिंतन का ढंग अलग-अलग है। सच कड़वा होता है। ऊँची जाति कठिन श्रम से जी चुराते हैं। जिसका परिणाम है जमींदार से किसान, किसान से मजदूर, मजदूर से कंगाल बनना पड़ रहा है। अब नकली मूँछ की बात रह गई।

शिक्षा के क्षेत्र में भारत के पहले नागरिक जगदेव प्रसाद ही हैं जिन्होंने नि:शुल्क (मुफ्त) शिक्षा की वकालत की। आज की शिक्षा आम लोगों के लिए दुर्लभ हो गयी है ये शिक्षा पूँजीपतियों के गिरफ्त में आ गई है। जैसी पूँजी वैसी शिक्षा, कम पूँजी साक्षर शिक्षा लागू की गई है। मेधा एवं योग्यता का हनन किया जा रहा है। 50 प्रतिशत पद रू. पर बिक रहे हैं।

अर्थाभाव एवं साहसहीनता के कारण हम मंजिल तक नहीं पहुँच पा रहे हैं।

अभिभावक कर्त्तव्यच्युत होते जा रहे हैं। कहने का तात्पर्य कि केवल स्कूल, कॉलेज, भेजना ही अपना कर्त्तव्य समझते हैं, बच्चे-बच्चियों को एक-एक गतिविधियों की परख अभिभावकों को होनी चाहिए अगर संरक्षक 24 घंटे में तीन घंटा बच्चों के साथ बैठना सीख जाए तो निश्चय ही बच्चों का भविष्य सुनहला होगा।

छात्रों की शिक्षा जैसे ही समाप्त होती है अभिभावक उसे घर बुलाकर अपने दैनिक कार्यों में

लगा देते हैं। छात्रों को योग्यता का प्रदर्शन करने का मौका नहीं मिलता। बुद्धि कुंठित होती चली जाती है। परिणामस्वरूप भविष्य अंधकार के गिरफ्त में चला जाता है।

व्यक्ति को कभी निराशावादी नहीं होना चाहिए मन के हारे हार है मन के जीते जीत'' हमें हमेशा सूर्य की प्रथम रश्मि की ओर देखना है।

आज समाज में वैचारिक प्रदूषण व्याप्त है। जल, हवा, ध्वनि के साथ-साथ वैचारिक प्रदूषण भी व्याप्त है। वैचारिक प्रदूषण से तात्पर्य विचारों में मेल नहीं खाना। बिना सोचे समझें किसी को बदनाम करना, गलत बातों से लुफ्त उठाना, बदनाम करने की तलाश में रहना, कुछ स्वार्थी लोगों का कर्त्तव्य बन गया है। शूद्र मानसिकता के सहारे व्यक्ति-व्यक्ति को प्रदूषित कर रहा है जिससे समाज में उन्माद, तनाव फैलता है।

कोई व्यक्ति या समाज किसी का शोषण नहीं करता बल्कि व्यक्ति अपना शोषण करवाता है। सहनशीलता, कृतज्ञता के कारण यथोचित उत्तर नही दे पाता जिसके कारण अत्याचार (जुल्म) बढ़ता चला जाता है। निरीहता व्यक्ति को शोषण की ओर ले जाती है। यदि व्यक्ति संकल्प कर ले कि मैं न शोषण करूँगा न होने दूँगा तो उसी दिन समाज शोषण मुक्त हो जाएगा।

आईए हम सब मिलकर अलख जगायें अमर शहीद जगदेव प्रसाद के सपनों को साकार करें।

''सींचा तूने जन-जन को आँसू और पसीनागार।
फूले-फले अन्त में अब यह पाकर उस शरीर का सार।
भरे हृदय से दी श्रद्धांजलि उन चरणों में हो स्वीकार।।

भारत में पानी की वर्तमान दशा को देखते हुए विश्व बैंक द्वारा बड़ी परियोजनाओं के लिए निवेश एवं पानी के निजीकरण को लेकर चर्चाओं का बाजार काफी गर्म है। क्या विश्व बैंक की पानी संकट को लेकर आई रिपोर्ट वास्तव में हमें भविष्य में आने वाले संकट के लिए चौकन्ना कर रही है ? या जिस तरह से इस परम्परागत पानी के प्रयोग की शक्तियों को परे रखकर दोहन कर रहे हैं उसको देखते हुए यह लगता है कि आने वाले कुछ वर्षों में हम वास्तव में पानी की किल्लत को लेकर तीसरे विश्व युद्ध की ओर बढ़ रहे हैं ! क्या विश्व बैंक की भारत पर पानी की कमी पर आई रिपोर्ट वास्तव में निरपेक्ष है या सिर्फ भारत को कमजोर करने की साजिश मात्र है ?और भी कई अनुत्तरित यक्ष प्रश्न हैं इस बारह पृष्ठ की रिपोर्ट में ! आखिर क्या कहती है विश्व बैंक की पानी पर भारत के बारे में रपट ? विश्व बैंक की रिपोर्ट कहती है कि भारत आगामी बरसों में पानी को लेकर जबरदस्त संकट से जूझने वाला है। यदि जल प्रबंधन के तौर तरीके नहीं बदले गये तो हमें आगामी दो दशकों के दौरान पानी की जबरदस्त किल्लत से दो-चार होना पड़ेगा। इस संकट से निपटने के लिए हमारे पास नये बुनियादी ढांचे पर खर्च करने भर का पैसा भी नहीं होगा। इतना ही नहीं, जिस तरह जनसंख्या वृद्धि के साथ पानी की जरूरतें बढ़ती जा रही हैं, उससे निपटना निहायत मुश्किल होगा। आधुनिक युग में व्यक्ति के सोचने की दशा एवं दिशा में परिवर्तन हुआ है और वह मानता है कि अब जमाना नया है इसलिए कार्य करने के तरीके भी नये होने चाहिए, परन्तु ऐसा सोचने वाले लोगों को यह बात ध्यान में रखना चाहिए कि जो बातें अच्छी एवं सत्य होती हैं वह कभी नहीं बदलती। इसलिए हम समय के कैलेण्डर से उनको फैशन की तरह न बदलें तो उचित ही होगा। आज पर्यावरण की समस्या व इसके संरक्षण, प्रबन्धन की दिशा में चिंतन व सार्वभौमिक सोच का होना लाजिमी हो गया है। कृपया उपरोक्त विषयों पर अपने सामाजिक ज्ञान, अनुभव की सीमाओं को ध्यान में रखते हुये शोधपूर्ण, तथ्यपरक एवं वैज्ञानिक तर्कों से युक्त शोध आलेख/लेख प्रेषित कर रचनात्मक सहयोग देने की कृपा करें।

हमें आप पर गर्व है

संत जगजीवन साहब और सतनामी सम्प्रदाय

✍ डॉ. सियाराम

हिन्दी साहित्य के मध्य युग में निर्गुणोपासना सम्बन्धी अनेक बहुश्रुत मतों, पथों एवं सम्प्रदायों का प्रादुर्भाव हुआ। इन विभिन्न सम्प्रदायों के प्रवर्तक सन्त बहुधा साधन विहीन वातावरण में उत्पन्न हुए और उन्होंने व्याकरण तथा साहित्य शास्त्र के अनुशीलन से मुक्त- 'मसि कागद' का स्पर्श किये बिना, 'कवि मनीषी परिभू:' का जीवन दर्शन चरितार्थ किया। इसी कारण इनके साहित्य में परिमार्जन अथवा परिष्कृत भाषा के स्थान पर आंचलिक भाषा का सौष्ठव विद्यमान रहा। इन संत सम्प्रदायों का एकमात्र उद्देश्य 'सर्वजन सुखाय' एवं 'सर्वजन हिताय' था। पर्यालोच्य सन्त परम्परा के एक अन्यतम् कवि बाबा जगजीवन साहब लोक विश्रुत सन्त हुए हैं, जिन्होंने 'सतनामी' सम्प्रदाय का प्रवर्तन किया था।

'सतनामी' सम्प्रदाय को सामाजिक विसंगतियों एवं रूढ़ियों के मार्जन और जन भावनाओं के जागरण में आशातीत सफलता मिली। समाज में पारलौकिक, पारमार्थिक व दार्शिनिक ज्योति की अलख जगाने में सतनामी साहित्य का विशेष योगदान रहा है किन्तु यह आश्चर्य है कि इसे हिन्दी साहित्य के इतिहास में अपने प्रदेय के अनुरूप समुचित स्थान नहीं मिल सका है।

'सतनामी' शब्द में 'सत्' अथवा 'सत्त' शब्द 'सत्य' के विकृत रूप हैं, 'सत्य' ब्रह्म का पर्याय और संज्ञा है। 'नामी' शब्द का अर्थ 'नामधारी' है। सत्यनामी या सतनामी से अभिप्राय है-सत्यनामी सर्वात्म ब्रह्म जो संसार का हेतु एवं आधार है। सतनामी सम्प्रदाय में कार्य को प्रारम्भ करने से पूर्व 'सत्तनाम' लिया जाता है।[1] इसका अभिप्राय है ब्रह्म के नाम के आधार पर कार्य को सुखान्त बनाने का प्रयत्न। **'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म'** अर्थात् सत्यनाम से जिसका यश संसार में फैला है, वही 'सतनामी' है, 'सत्' का भाव ही 'सत्य' में निहित है। गीता में उल्लेख है -

''नासतो विद्यते भावः नाभावो विद्यते सतः'[2]

अर्थात् असत् में कोई भाव विद्यमान नहीं होता और बिना भाव असत् का कोई अस्तित्व नहीं होता। भाव में ही सत् की सत्ता है और असत् में सत्ता का अभाव है। इस प्रकार सत् की सत्ता वाला है - सतनामी सम्प्रदाय। सत् जड़ है और जड़ अविचल अविकृत होने के कारण प्रकृत है। प्रकृत में रूप और स्वरूप भिन्न नहीं होता, यहाँ आकृति और प्रकृति में अन्तर नहीं होता किन्तु जहाँ आकृति में प्रकृति विकृत हो गयी, वहीं विचलन हो गया। यह विचलन मानव के अन्दर होता है। इसीलिए ऊर्ध्वमुखी विचलन से देव जन्म लेते हैं और अधोमुखी विचलन से दानव तथा केन्द्रमुखी स्थित प्रज्ञता नर शरीर में मानव को जन्म देती है। अत: सुलभ मानव शरीर से साधना द्वारा सतनामी संतों ने सत्य स्वरूप को प्राप्त किया। कुछ वर्षों पूर्व तक सतनामी सम्प्रदाय के सम्बन्ध में विद्वानों में अनेक भ्रम थे किन्तु अब यह निर्विवाद रूप से सिद्ध हो गया है कि इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक साहब जगजीवन दास हैं और यह हिन्दी साहित्य की एक स्वतन्त्र आध्यात्मिक शाखा है।

बाबा जगजीवन साहब का अवतरण आज

✍ वरिष्ठ प्रवक्ता, हिन्दी विभाग, तिलक महाविद्यालय, औरैया (उ. प्र.)

से लगभग 336 वर्ष पूर्व माघ सुदी सप्तमी संवत् 1727 विक्रमी को उत्तर प्रदेश राज्य के बाराबंकी जनपद की वर्तमान तहसील सिरौली गौसपुर के अन्तर्गत 'सरदहा' नामक ग्राम में हुआ था। यह गाँव सम्प्रति घाघरा नदी के तट पर स्थित है। अपने दोहावली ग्रन्थ में इन्होंने अपना परिचय इस तरह दिया है –

गंगाराम के बेटवा, जगजीवन उन्ह नाम।
अवरन की महिमा भई, बास सरदहा ग्राम।।[3]

जिसके अनुसार इनके पिता का नाम गंगाराम तथा निवास स्थान सरदहा ग्राम था। 'भक्त विनोद' ग्रन्थ के अनुसार इनकी माता का नाम कमला देवी था। ये गृहस्थ थे, इनका विवाह गाजीपुर (बाराबंकी) के सर्वजीत सिंह के परिवार में हुआ था और इनकी पत्नी का नाम श्रीमती मोतिन देवी था, जिनसे इनकी छः सन्तानें, पाँच पुत्र-सभादास या सोभादास, बलादास, पत्तादास, अनन्तदास, जलालीदास तथा एक पुत्री थी।[4]

बाबा जगजीवनदास के जीवन में आरम्भ से ही अनेक चामत्कारिक घटनाओं का समावेश हुआ है। इनके अनुयायियों में ही नहीं वरन् वहाँ के समाज में आज भी ऐसी घटनाएँ जनश्रुतियों के रूप में विद्यमान हैं। बालक जगजीवन की शिक्षा-दीक्षा घर पर ही सम्पन्न हुई। अल्पवय में ही जगजीवन में साधना आरम्भ कर दी और उच्च साध्य को प्राप्त किया। 'निगुरा' रहना अनुचित जानकर इन्होंने अपने पिता के गुरू विश्वेश्वर पुरी से मंत्र ग्रहण किया –

बिसेसर पुरी गुर गुरसड़ी, तहँ समाधि अस्थान।
मते मंत्र मोहि दीन्ह उन्ह, लागेउ अन्तर ध्यान।।[5]

अलौकिक प्रतिभा सम्पन्न बालक जगजीवन 20 वर्ष की अवस्था में सरदहा से कोटवा चले गये और जीवन पर्यन्त यहीं रहकर 'सतनाम' का प्रचार-प्रसार करते रहे। उन्होंने ध्यान, समाधि तथा योग द्वारा अपना सम्बन्ध उस परमतत्व से जोड़ लिया। अपने अनुयायियों को गृहस्थ धर्म का सम्यक् निर्वाह करते हुए ही संसार से मुक्ति दिखाया न कि सामाजिक दायित्वों से पलायन का, इसका आदर्श उन्होंने स्वयं प्रस्तुत किया। समाज कल्याण की भावना से प्रेरित होकर इन्होंने सतनामी सम्प्रदाय को विस्तार दिया और सर्वप्रथम अपने चार शिष्यों गोसाईंदास, दूलनदास, देवीदास तथा खयामदास को बजीर नियुक्त कर, उन्हें अन्यत्र गद्दी स्थापित करने को कहा, जो कालान्तर में चार पावा के नाम से ख्यात हुए –

1. साहेब गोसाईंदास (स्थान-कमोली, बाराबंकी)
2. साहेब दूलनदास (स्थान-धर्मेधाम, रायबरेली)
3. साहेब देवीदास (स्थान-देवीदास का पुरवा, हैदराबाद, बाराबंकी)
4. साहेब खयामदास (स्थान-मधनापुर, बाराबंकी)

इसके अतिरिक्त उनके अन्य चौदह शिष्य भी थे, जो गद्दीधर या चौदह गद्दी कहलाये। साथ ही कुल 69 शिष्य और भी बनाये। इस प्रकार अपने जीवनकाल में ही जगजीवन साहब के 87 शिष्य थे जिनके माध्यम से सतनामी सम्प्रदाय का विस्तार बाराबंकी, गोण्डा, सुल्तानपुर, रायबरेली, लखनऊ, सीतापुर आदि जनपदों में हो गया। इन शिष्यों में अनेक प्रसिद्ध संत-महात्मा और उत्कृष्ट कवि हुए और उन्होंने उत्कृष्ट ग्रन्थों का प्रणयन भी किया।

संत जगजीवनदास ने स्वयं विपुल साहित्य की सर्जना की। उनके लिखे अघ्रविनास (प्रबन्धकाव्य), 'मनपूरणा', 'परमग्रन्थ', 'दोहावली', 'शब्दसागर', 'संन्यास-जोग', 'ज्ञानप्रकाश', 'चरन-सरन-बन्दगी', 'दृढ़ ग्यान', 'बुद्धि-वृद्धि', 'ककहरानामा', 'विवेक अघोर मंत्र', 'बारहमासा',

'एकाक्षरी', 'षडदशलीला', 'महावीर-स्तुति', 'महाप्रलैनामा', 'विवेक ग्यान' आदि 18 ग्रन्थ सम्प्रति उपलब्ध हैं। इनमें से महाप्रलैनामा, मनपूरणा, ग्यानप्रकाश, दोहावली और हनुमान-स्तुति को सर्वप्रथम 'भक्त शिरोमणि' पत्रिका के विभिन्न अंकों में प्रकाशित किया गया।[6] वर्तमान में अघनिवास, शब्दसागर, मनपूरणा तथा दोहावली स्वतंत्र रूप में प्रकाशित है। इन ग्रन्थों में लोकप्रिय छन्दों दोहा, चौपाई, सोरठा तथा पदों आदि का प्रयोग हुआ है। जगजीवन दास जी के ग्रन्थों का वर्ण्य जहाँ सदगुरू कृपा, निर्गुण ब्रह्म की साधना, नाम महिमा, अजपा-जप, सुरति, ध्यान, समाधि आदि पर अवलम्बित है, वहीं उन्होंने सामाजिक पाखंड, मूर्ति-पूजा, जातिवाद, छुआ-छूत आदि पर कठोर प्रहार और अंहिसा पर विशेष बल दिया।

जगजीवन दास जी यावज्जीवन सतनामी सिद्धान्तों का प्रचार करते हुए लोगों के सामाजिक एवं आध्यात्मिक उन्नति के मार्ग को प्रशस्त करते रहे। उन्होंने 90 वर्ष की अवस्था में वैसाख कृष्ण सप्तमी संवत् 1817 विक्रमी दिन मंगलवार को समाधि द्वारा इहलीला का संवरण कर लिया। इस घटना का वर्णन महन्त बोधेदास ने इस प्रकार किया है -

संवत अठारह सै सतरह करि आसन भे मौन।
कृष्ण पक्ष औ सप्तमी, बैसाख भौम करि गौन।।[7]

इनकी पुण्यस्मृति में राय निहाल चन्द्र ने कोटवा धाम में एक समाधि बनवाई। इस समाधि पर प्रत्येक मास की पूर्णिमा का मेला लगता है, जिसमें कार्तिक एवं वैसाख पूर्णिमा का मेला विशेष समारोह पूर्वक सम्पन्न होता है। जगजीवन दास की समाधि के समीप अभिराम (अभरन) तालाब है, जिसके जल में रोग नाशक शक्ति है ऐसी लोक मान्यता है।

बाबा जगजीवन साहब ने अपने नाम या जाति से परे तत्त्व चिन्तन (सतनाम) के आधार पर सम्प्रदाय का नामकरण किया। इनके अनुसार जो प्रत्येक घटवासी राम है, उसी का दूसरा नाम सतनाम है, वही राधा पति है, वही सीता पति है। भिन्न-भिन्न नाम व रूप होते हुए भी वह तत्त्वत: सतनाम में समाहित है -

राधेपति सोई सीतापति, सोई सब घट राम।
जगजीवन दास दुई अच्छर, सोई है सतनाम।।[8]

दीक्षा प्रदान करते समय सतनाम सम्प्रदाय के प्रतीक चिन्ह के रूप में महन्त गुरू द्वारा शिष्य को एक धागा-जो लाल, सफेद और काले रंग के सूतों से निर्मित होता है और जिसमें लाल धागे से गाँठ बँधी रहती है, प्रदान किया जाता है। यह धागा त्रिगुणों (सत्, रज, तम्) का तथा गाँठ जीव के कर्मबन्धन का प्रतीक मानी जाती है। दीक्षा देने का अधिकार केवल जगजीवन दास के वंशजों तथा चार पावा व चौदह गद्दी के महन्तों को है।

सतनामी सम्प्रदाय के महन्तों को सेल्ही, सुमिरनी, आँदू, तिलक और दोनों हाथों की कलाइयों पर धागा बाँधने का विधान है। ये प्रतीक चिन्ह इन्हें धर्म तथा अध्यात्म के पथ पर सतत् गतिमान रहने के लिए प्रेरित करते हैं किन्तु चारों पावा के महन्तों को इन प्रतीकों को धारण करने की अनिवार्यता नहीं है। वे स्वेच्छा से इन्हें धारण कर सकते हैं अथवा मात्र दाईं कलाई पर धागा बाँध सकते हैं। इन प्रतीकों का वर्णन जगजीवन दास ने स्वयं किया है -

सेल्ही दीन सुमिरनी आँदू चीन्ह हमार।
जगजिवन दास प्रभुदाया कीन्हीं सतगुरू पार।।[9]

सतनामी पंथ में 'माँसाहार' के साथ-साथ बैंगन, कुंदरू, शहद एवं चूना खाने की वर्जना है। बैंगन की वर्जना के पीछे एक रोचक घटना है-

जगजीवन साहब की पौत्री के विवाह में बारातियों द्वारा माँसाहार का हठ कियें जाने पर बाबा जी स्वयं रसोई में गये और पूछा किस चीज की सब्जी सर्वाधिक है तो रसोइये ने कहा- भाँटा (बैंगन) की। बाबा जी ने उसे कपड़े से ढककर परोसने को कहा। जब उसे बारातियों ने खाया तो उन्हें माँस जैसा स्वाद मिला। इसी घटना के अनन्तर सतनामियों के लिए उन्होंने बैंगन खाना निषिद्ध कर दिया। शहद निकालते समय उसमें मक्खियाँ तथा उनके अण्डों के सन जाने के कारण निषिद्ध था। पहले चूना सुत्ती में पाले गये कीड़े से बनता था। इसके बनाने की प्रक्रिया में सूती पीसते समय वह कीड़ा भी मर जाता था, अतः इसकी वर्जना थी -

मधुमाँखी भाँटा औ, कुन्दुरू सूती चून।
जगजीवन जे नर खाइहैं जैहैं नर्क सूतन॥(10)

इसी तरह जगजीवन दास ने मारन, उच्चाटन, बसीकरन आदि मंत्रों के प्रयोग का भी निषेध किया है -

मारन उच्चाटन बसिकरन मोहन मंत्र उपाइ।
जगजीवन दास जिन्ह यह सिखा नर्क परैं ते जाइ॥(11)

यद्यपि इस सम्प्रदाय में निर्गुण ब्रह्म की उपासना का विधान है तथापि प्रथम दृष्ट्या ऐसा प्रतीत होता है कि इस पंथ में बहुदेवोपासना प्रचलित है, यथा स्थान-स्थान पर अनेक देव-देवियों का उल्लेख, रावण को मारने, लंका-दहन, कंस-वध, हिरणाकश्यप-वध आदि का वर्णन। इस सम्प्रदाय में प्रत्येक मंगलवार को विधि पूर्वक हनुमान की उपासना करने की प्रथा है किन्तु यह उपासना सगुण साकार हनुमान की मूर्ति पूजा न होकर उनके निर्गुण रूप की आराधना पर बल देती है -

सुचि होई सु भू पै अरुन कुछ बिछावै।
करै सुच्च परसाद आगे चढ़ावै।
अरुन दै तिलक नारियर दुई मँगावै।
आगछतु तुष्टि त कहि के बुलावै।
जपै मंत्र कै धूप पूजा चढ़ावै।
आनै रूप हिरदै औ मस्तक नवावै॥(12)

स्पष्ट है कि उक्त पूजा में स्वच्छ भूमि पर लाल वस्त्र को बिछाकर उस पर नारियल रख मंत्रों द्वारा हनुमान को आहूत कर हृदय में धारण करने का विधान है, न कि मूर्ति पूजा का, फिर भी इसमें बाह्याडम्बर अवश्य है।

प्रायः प्रत्येक साधना पद्धति में 'गुरु महिमा' का वर्णन प्राप्त होता है क्योंकि गुरु विहीन साधक को सफलता नहीं मिलती। आध्यात्म के धरातल पर सदगुरु की अनिवार्यता है। संत जगजीवन जी ने भी गुरु के महात्म्य को स्वीकार किया है। उनका मानना है कि जब सृष्टि के सर्जक ब्रह्म, पालक विष्णु तथा संहारक शंकर जी गुरु के अधीन हैं तो संसारिक प्रणियों को गुरु बिना मुक्ति लाभ असम्भव है -

सतगुरु बिन ब्रम्हा नहीं, नहि सिव संकर जोग।
सतगुरु बिन नारद नहीं, सब कर मत संजोग॥(13)

सतगुरु की कृपा, स्नेह और कटाक्ष मात्र से शिष्य को अभिलाषित वस्तु प्राप्त हो जाती है, वह शिष्य के लिए कल्पतरु सदृश है -

कल्प वृक्ष सतगुरु अहै, साखा मत बिस्तार।
पत्र नाम लै प्रीत पीउ, ज्वाला मिटै बिकार॥

'नाम स्मरण' द्वारा ब्रह्म का साक्षात्कार किया जा सकता है। इसीलिए जगजीवन जी ने 'नाम जप' को आवश्यक मानते हुए कहा है कि संसार में केवल नाम ही सार है। विश्वास पूर्वक जो

इसे अंगीकार कर लेता है, उसका कल्याण निश्चित है -

दुइ अच्छर जिन्ह मन जपा, मिले आइ तेहि राम।
जगजिवन दास कहि जात नहि, अस उत्तिम है नाम॥[14]

जीव इस उत्तम नाम का जाप कैसे करें? इस सम्बन्ध में जगजीवन दास जी ने अजपा-जप अर्थात् अहर्निशि, श्वास-प्रतिश्वास, 'बिनु कर चलै' ना जिभ्या डोलै का निर्देश किया है-

जगजीवन दास अजपा जपै, होइ अधीन हेबान।
मै त्वै मारै छिमा होइ, काह कथै बहु ग्यान॥[15]

'मन की चंचलता' साधक को साधना मार्ग से विचलित कर देती है। इसीलिए सतनामी सम्प्रदाय में मन को वशीभूत करके योग में प्रवृत्त होने को कहा गया है -

मनहिं चढ़ावै मनहि उतारै, मन थिर होइ ठहराना रे।
मन संग प्रान पवन सुख पावै, तबहि जोग दिढ़ाना रे॥[16]

मन को वश करना तो ठीक है किन्तु काया को कष्ट देकर योग साधना करना इस सम्प्रदाय में मान्य नहीं है। इसीलिए कहा गया है -

काया नस्ट करै जो केतौ, सूझि बूझि नहि आवै रे।
पवन बन्द करि गगन चढ़ावै, ऐसी भक्ति न भावै रे॥[17]

बिन काया को कष्ट दिये मन को वश में करने के लिए जगजीवन साहब ने निश्छलता ग्रहण करने तथा मिथ्याडम्बरों का त्याग करना आवश्यक माना है।

'हिंसा' व्यक्ति के सदाचार एवं धर्म का नाश कर अनैतिकता उत्पन्न करती है, जो लोग परमात्म स्वरूप जीवों की हत्या कर स्वर्ग की कामना करते हैं, उन्हें इस संसार से निस्तार नहीं मिलता। इसीलिए सतनामी सम्प्रदाय में प्रत्येक प्रकार की 'हिंसा' का प्रबलतम् विरोध मिलता है -

थापि भवानी पूजा करहीं, होइ बेदर्द सोइ चित्त धरहीं।
अजया भेंड़ा सूकर मारहिं, सीस ताहि कै पानि उछारहिं।
कर खुर धोवाहिं भाव करि अच्छत माथ लगाइ।
काटत दरद न आइ लेउ भवानी खाई॥[18]

सम्प्रति का धर्म का अभिप्राय तात्विक चिन्तन और सदगुणों के आचरण से कम, सम्प्रदाय विशेष के बाह्याचारों को अपनाने से अधिक लिया जाता है किन्तु यह पाखण्ड मात्र है, आडम्बर है, फरेब और छलावा है। कारण यह है कि यदि मन चंगा नहीं है तो कहीं भी गंगा (कल्याण) नहीं है। तीर्थाटन, व्रत-उपवास, मूर्तिपूजा आदि की व्यवस्था मनुष्य के ठगने-ठगाने के निमित्त है। इसीलिए सतनामी सम्प्रदाय में इनसे दूर रहने के लिए प्रेरित किया गया -

तीर्थाटन- गरहन लागि अकास महँ, सब दुनिया तिरथ नहाय।
जगजीवन यक नाम बिन, मन का मैल न जाय॥[19]

मूर्ति पूजा- कोइ-कोइ पूजहिं पानि कहँ, कोइ-कोइ पूजै पषान।
जगजीवन दास कोई बिरला, राखै अन्तर ध्यान॥[20]

वेशभूषा- सुमिरन भजन हिये नहीं, भूलि गयो वह ग्यान।
माला टोपी पहिरि कै, मन मा भा अभिमान॥[21]

बाह्याडम्बरों की अपेक्षा 'ब्रह्म के प्रति अकिंचन भाव' प्रदर्शित करते हुए 'शरणागति' और

'आत्म-समर्पण' करना चाहिए-

साई मैं तो बड़ा अनारी।
कुमति प्रसंग बास नर्कहि माँ आवत नाहि बिचारी।
पर्‍यौ अपरबल महामोह मँह सुधि वह नाहि संभारी।
गुन नाही औगुन सब बहु बिधि बिसरी सुरति हमारी।
केतौ करि उपाय मै थाक्यौ, मै मन मान्यो हारी।
अब दाया करि चरन लाइ कै निकट ते कबहूँ न टारी॥[23]

किन्तु आज के तथाकथित धार्मिक पोंगापथी लोग दिखावा अधिक करते हैं। उनकी कथनी-करनी में बहुत अन्तर है। इसी की तरफ संकेत करते हुए जगजीवन साहब ने कहा है-

सत्यनाम सुनि सूल भा, पंडित बड़े प्रवीन।
नेम अचार खटकर्म करि, भच्छहिं माँसु औ मीन॥[24]

जहाँ कहीं भी समाज में ढ़ोंग, दिखावा, कपट, धोखा, फरेब, आडम्बर, स्वाँग, प्रपंच, छल, छद्म दिखाई पड़ा, वहीं निर्भय होकर स्वामी जगजीवन साहब ने तीक्ष्ण प्रहार किये।

आज जाति एवं धर्म के नाम पर अनेक ऐसे संगठन बनाये जा रहे हैं जिनका उद्‌देश्य समाज हित एवं मानव जाति का उत्थान कम राष्ट्रदोह ही अधिक लक्षित होता है। जाति, धर्म अथवा सम्प्रदाय के नाम पर हिंसात्मक आचरण विकृत मानसिकता का परिचायक है। सतनामी सम्प्रदाय में हिन्दू-मुसलमान, ब्राह्मण-शूद्र, ऊँच-नीच, सुजाति-कुजाति, पवित्र-अपवित्र, धनी-निर्धन आदि के आधार पर भेद-भाव को निन्दनीय माना गया है। इनके द्वारा सदियों से मानव जाति एवं राष्ट्र का अमंगल होता रहा है। इसीलिए स्वामी जगजीवन साहब ने 'जातिवाद' पर कटु प्रहार करते हुए कहा है -

जाति पाँति के हेत का, मरत अहै सब कोई।
यह सुधि नाहीं काहु का, दहु मरत बार कस होई॥[25]

हाड़ चाम को पींजरा, ता में कियो अचार।
येकै बरन मा सब अहै, ठाकुर तुरुक चमार॥[26]

जगजीवन दास बिनती करै, कहत अहै कर जोरि।
येकै तन यक ब्रम्ह है, कोई बम्हन कोइ कोरि॥[27]

मानव के जातीय अहंकार पर व्यंग्य करते हुए जगजीवन दास जी ने स्वजातियों (क्षत्रियों) को कड़ी फटकार लगाई है। स्वयं की आलोचना जिस अदम्य साहस की माँग करती है, वह जगजीवन साहब जैसे व्यक्तित्व में ही संभव है -

कलजुग केरे ठाकुर, सूखे हाँड़ चबाहिं।
पैलागत सुख मानहीं, राम कहत मरि जाहिं॥[28]

इस प्रकार स्पष्ट है कि सतनामी सम्प्रदाय ने आरम्भ से ही सम्पूर्ण मानव जाति के लिए एक आचार संहिता प्रदान की। इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक जगजीवन साहब ने समाज में व्याप्त कुरीतियों, कुव्यवस्थाओं की निन्दा करने के साथ, धार्मिक पाखण्ड एवं बाह्याचार पर कठोर प्रहार किये हैं। उन्होंने मानवता की रक्षा के लिए गुप्त भजन की सरल रीति बताई और गृहस्थाश्रम का पालन करते हुए सत्य मार्ग के अनुसरण द्वारा स्वयं मोक्ष की प्राप्ति की और समाज को इसी मार्ग का अनुपालन करने के लिए प्रेरित किया। प्राणि मात्र की सेवा, अजपा-जप, ध्यान द्वारा अन्तस्साधना की प्रेरणा देना ही उनका लक्ष्य था। इसीलिए अवध प्रान्त के हिन्दुओं में ही नहीं वरन् मुसलमानों के मध्य भी

सतनामी पंथ को सर्वाधिक लोकप्रियता प्राप्त हुई।

मानवीय जीवन मूल्यों के परिष्कार के लिए सन्तों ने जो योगदान किया, वह उनकी वाणी में विद्रोही स्वर बन गया। विद्रूपताओं के विनष्ट करने का संकल्प ही उनका सद् संकल्प है। विद्रूपताएँ समाज में सतत् विद्यमान रही हैं और रहेंगी। इसीलिए संतों का साहित्य सदैव सम सामयिक है। निश्चित ही बाबा जगजीवन दास विरचित साहित्य के अध्ययन, मनन और उनके सिद्धान्तों के अनुपालन द्वारा वर्तमान में भी राष्ट्र, समाज एवं व्यक्ति का कल्याण होगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. हिन्दी साहित्य कोश (ज्ञान मण्डल लि. वाराणसी), भाग-1, पृ.-873
2. श्रीमद्भगवत गीता-2/16
3. दोहावली : जगजीवनदास, छन्द सं.-475 (सतनामी प्रिंटिंग प्रेस, जगदीशपुर, सुल्तानपुर)
4. भक्त विनोद : बोधेदास, पृ. 19-20
5. दोहावली, छन्द सं.-1
6. भक्त शिरोमणि, प्रकाशक-महन्त कृष्ण मुरारी दास, सम्पादक-महन्त-राज बहादुर सिंह
7. अवध के प्रमुख कवि : डॉ. ब्रज किशोर मिश्र, पृ.-3
8. दोहावली, छन्द सं.-50
9. वही, छन्द सं.-534
10. वही, छन्द सं.-553
11. वही, छन्द सं.-333
12. महावीर स्तुति : जगजीवन दास, छन्द-18
13. ज्ञान-प्रकाश : जगजीवन दास (हस्तलिखित प्रति कोटवाधाम से प्राप्त)
14. दोहावली, छन्द सं.-187
15. वही, छन्द सं.-260
16. महाप्रलै : जगजीवन दास (हस्तलिखित प्रति कोटवाधाम से प्राप्त)
17. महाप्रलै : जगजीवन दास (हस्तलिखित प्रति कोटवाधाम से प्राप्त)
18. मनपूरना : जगजीवन दास (हस्तलिखित प्रति कोटवाधाम से प्राप्त)
19. दोहावली, छन्द सं.-66
20. वही, छन्द सं.-327
21. वही, छन्द सं.-326
22. जगजीवन बानी, भाग-1, पृ.-10
23. जगजीवन बानी, भाग-1, पृ.-16
24. दोहावली, छन्द सं.-7
25. वही, छन्द सं.-389
26. वही, छन्द सं.-27
27. वही, छन्द सं.-18
28. दोहावली, छन्द सं.-8

विरासत का सौदा

✍ डॉ. शम्भू नाथ यादव

दिन प्रतिदिन यह सुनने एवं पढ़ने को मिलता है कि कला संग्रहालय से, अमुक मन्दिर से या किसी के निजी संग्रह से पुरातात्विक महत्व की प्रतिमा चोरी चली गयी। पुरातात्विक एवं कलात्मक पुरावशेषों की चोरी की इन बढ़ती हुई खबरों से संग्रहालय के अधिकारी, मन्दिरों के पुजारी या स्मारकों के पहरेदार अनभिज्ञ हों, यह मानना थोड़ा मुश्किल लगता है। भारत का आम नागरिक अभी इतना कला पारखी नहीं हुआ है कि उसे अपनी विरासत की कद्र हो। इस बात में जरूर पारंगत हुए हैं कि इन कला वस्तुओं को जायज या नाजायज तरीके से किस प्रकार प्राप्त कर मुँहमांगी धनराशि पर कला पारखियों या उनके शब्दों में विदेशियों को सुपुर्द करें।

कुछ बड़े और कुछ मध्यम वर्ग के ऐसे दुकानदार भी हैं जो अपनी विरासत की कद्र विदेशियों के आँखों में आँकते हैं (उनका इस तरह सोचना भी ठीक है) और अपनी राष्ट्रीय विरासत को सुरक्षित रखने के बजाय कानूनी (परन्तु अधिकांशतः गैर कानूनी) ढंग से निर्यात कर इन कलावस्तुओं की लूट को प्रोत्साहित करते हैं। पश्चिमी देशों में कलावस्तुओं को प्राप्त करने का जो मोह दिन-प्रतिदिन बढ़ रहा है, उससे भारत का सौदागर भली भाँति परिचित है और वह इस बात से भी पूर्ण सन्तुष्ट है कि उन देशों की विरासतों का दूसरे देशों में आना लगभग असम्भव सा है। इसके बावजूद भी भारतीय सौदागर अपने देश की विरासत (कलावस्तुएं) को यत्र-तत्र प्राप्त कर विदेशियों को बेचने में कोई कसर उठा नहीं रखते। वे इस बात से भलीभाँति अवगत हैं कि अगर वे कस्टम अधिकारियों, केन्द्रिय जाँच ब्यूरो, या पुलिस की पकड़ में भी आ जाते हैं तो इस अपराध के अन्तर्गत जो अर्थदण्ड या दण्ड का प्रावधान किया गया है, उसका भुगतान उनके सीमा के बाहर की बात नहीं है। क्योंकि वर्तमान कानून (पुरावशेष एवं बहुमूल्य कलाकृति अधिनियम 1972) की धारा 25 के अन्तर्गत कम से कम 6 माह की कैद है जो अधिकतम तीन साल तक बढ़ायी जा सकती है अथवा कुछ अर्थ दण्ड का प्रावधान किया गया है। इस तरह की सौदेबाजी को सबसे अधिक बढ़ावा देने का कारण इन कला वस्तुओं के प्रति देशव्यापी उपेक्षा की भावना है।

भारत में कुछ ऐसे तारीखी अहमियत के प्राचीन मन्दिर और संग्रहालय हैं, जहाँ पुरातात्विक महत्व की बहुमूल्य मूर्तियां, उद्भृतों चित्रों, स्तम्भ शीर्ष नक्काशी के कामों के संरक्षण एवं सुरक्षा की कोई व्यवस्था नहीं है। ताजमहल एवं लाल किले की तो रक्षा की जाती है, लेकिन बहुत कुछ स्मारक (कालिंजर दुर्ग, अजयगढ़ दुर्ग, झाँसी, मथुरा, अलवर, मदुरै, ग्वालियर, भोरमदेव जिसे छत्तीसगढ़ का खजुराहो कहा जाता है। शिव मन्दिर लिंगेश्वर, लक्ष्मण मन्दिर सिरपुर आदि) ऐसे हैं जो आज भी सुरक्षाविहीन हैं। यह बात अलग है कि जयपुर जैसे संग्रहालय से अगर कोई बहुमूल्य वस्तु चोरी चली जाती है या राष्ट्रीय संग्रहालय सलारजंग अथवा राष्ट्रीय संग्रहालय नई दिल्ली से कोई पुरावशेष गायब होता है तो उसकी खबर बहुत जल्दी फैल जाती है, परन्तु अगर यही घटना किसी प्राचीन

✍ सहायक पुरातत्वविद् भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण, रायपुर मण्डल, जे-10 अनुपम नगर, रायपुर (छत्तीसगढ़)

उपेक्षित स्मारक में घटती है तो उसके चोरी होने की ही पुष्टि नहीं हो पाती है। लेकिन किसी कबाड़ी की दुकान से अन्य बड़े संग्रहालयों से चोरी की गयी वस्तुओं के साथ मिल जाए तब कहीं जाकर यह पता चलता है कि वर्षों पूर्व चुराई गई अमुक मूर्ति या चित्र भी वर्तमान चोरी के साथ प्राप्त हुआ है, तब यह कहावत चरितार्थ होती है कि गेहूँ के साथ घुन भी तर गया।

केन्द्रीय जाँच ब्यूरो के अनुसार पिछले कुछ वर्षों से इन कलात्मक पुरावस्तुओं की चोरी का मुख्य कारण पर्यटकों की बढ़ने वाली संख्या है। भारत भ्रमण करने वाला हर विदेशी कुछ अनोखी, अजीब और अनूठी वस्तु की चाहत रखता है। उसके लिए विचित्र और वैविध्य की वस्तुएं केवल यही प्राचीन काल की प्रस्तर और काँस्य की प्रतिमाएं है, जो सदियों से मन्दिरों और संग्रहालयों की शोभा बढ़ा रही हैं। भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग द्वारा मरकजी अहमियत के संरक्षित स्मारकों से अनेकों मूर्तियों के चोरी जाने के मामले सामने आये हैं, जिसमें भोपाल सम्भाग, कलकत्ता, रायपुर, श्रीनगर, उड़ीसा, जयपुर आदि प्रमुख हैं। छठे, सातवें दशक में बम्बई के राजकुमार वेल्स संग्रहालय से कुछ काँस्य की प्रतिमाएं चोरी हुईं, जयपुर में मुगल और राजस्थानी कला की लगभग 2492 कलावस्तुओं की चोरी हुई थी। नागपुर के केन्द्रीय संग्रहालय से 6 बुद्ध प्रतिमाओं की चोरी की खबर मिली थी और इसी प्रकार वाराणसी के सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय से भी कुछ धार्मिक मूर्तियों के चोरी का भी पता चला था। चोरियों की बढ़ती हुई इस संख्या के बारे में कुछ संग्रहालय प्रमुखों का कहना है कि कलावस्तुओं की तस्करी और चोरी को रोकने का सबसे सुन्दर व आसान तरीका संग्रहालय से संग्रहालय में आदान-प्रदान है। ऐसी बात नहीं है कि संग्रहालय के सुरक्षा अधिकारी और मन्दिरों के पुजारी या रखवाले इन चोरियों से अनभिज्ञ होते हैं, बल्कि सत्य बात तो यह है, कि उनको विश्वास में लेकर ही अधिकांश चोरियां होती हैं। इन चोरियों, तस्करियों से एक बात यह भी सामने आयी है कि पुरानी बताई जाने वाली वस्तुएं अक्सर उतनी पुरानी नहीं होती हैं, जितनी प्राचीन बताई जाती हैं। परन्तु कुछ कलाकार इस विषय में इतने पारंगत होते हैं कि वे मूर्तियों आदि को ऐसा आकार एवं रूप दे देते हैं कि वे आठवीं या नवीं शताब्दी की या 800-900 वर्ष पुरानी प्रतीत होने लगती हैं। असली कलावस्तु के साथ यह जो नकलीपन का दौर शुरू हो गया है उससे वास्तव में पुरानी कलावस्तुओं के निर्यात को खासा नुकसान हो सकता है।

इन कला वस्तुओं का आधुनिकीकरण करने के लिए दिल्ली के कुछ सौदागरों ने देवी-देवताओं के लगभग 100 सिर काट डाले। देवी-देवताओं की ये मूर्तियां बुन्देलखण्ड की थीं जिनका निर्माण काल गुप्त कालीन बताया जाता है। इसके अतिरिक्त कुछ काँस्य एवं प्रस्तर की मूर्तियों का भी आधुनिकीकरण किया गया। इसकी आवश्यकता क्या थी ? इसके विषय में कुछ विषय विशेषज्ञों का कहना है कि इस विधा के द्वारा कला वस्तुओं की विदेशों में अच्छी कीमत मिलती है। इन कलावस्तुओं के निर्यात के लिए सौदागरों का ढ़ंग भी अनोखा है, वे लकड़ी के बक्सों में इन्हें भरकर काँस्य वस्तुएं या पुर्जे औजार आदि की छाप लगाकर बाहर भेज देते हैं। निर्यात के लिए जहाजों पर लादते समय सन्देह हो जाने पर जब कभी कस्टम अधिकारी इसे खोलते हैं तो उस पर अंकित मूल वस्तु से इतर कोई कलात्मक वस्तु पाकर सकते में आ जाते हैं। उनके इसी संशय के कारण कई वर्षों से चले आ रहे इस प्रकार के घोटाले का रहस्योद्घाटन हुआ है जो चरस या हशीष के घोटाले से कम घातक या खतरनाक नहीं हैं

सन् 1947 में पुरावशेष निर्यात नियन्त्रण अधिनियम पारित किया गया। इस अधिनियम के अनुसार एक सौ वर्ष से अधिक प्राचीन पुरावशेषों का निर्यात शासन से अनुज्ञप्ति प्राप्त करके ही किया जा सकता है। बिना अनुज्ञप्ति का निर्यात दण्डनीय अपराध माना गया। परन्तु इसके बावजूद भी कला वस्तुओं के खुले आम इस प्रकार के तस्करी पर किस प्रकार रोक लगाई जाएं, इस बारे में पिछले कुछ वर्षों से सरकार काफी क्रियाशील दिखाई दे रही है। अब पहले की अपेक्षा संग्रहालयों में सुरक्षा की आधुनिक व्यवस्था प्रयोग की जा रही है और कुछ प्रमुख मन्दिरों एवं स्मारकों में सशस्त्र सुरक्षा बलों की नियुक्तियां भी की गई हैं। सन् 1972 के अधिनियम (पुरावशेष तथा बहुमूल्य कलाकृति अधिनियम 1972) की धारा 5 के अन्तर्गत यह प्रावधान किया गया है कि अनुज्ञप्तिधारी व्यक्ति ही कलवास्तुओं का निर्यात कर सकता है। उसे यह अनुज्ञप्ति इस अधिनियम के धारा 8 के तहत दी जाती है। इस अधिनियम का मूल उद्देश्य यह था कि भारत में कुल कितनी कला कृतियां हैं और वह कहां पर हैं। इन सभी प्राविधानों के पश्चात भी लोगों को अपने देश के गौरवशाली एवं समृद्धिशाली अतीत के प्रति सजग बनाया जाये क्योंकि जनसमर्थन के बिना प्रजातन्त्र में कोई कार्य बहुत दिनों तक केवल सरकारी संरक्षण में नहीं चल सकता है।

भूमि पर्यावरण की आधारभूत इकाई होती है। यह एक स्थिर इकाई होने के नाते इसकी वृद्धि में बढ़ोत्तरी नहीं की जा सकती है। बड़े पैमाने पर हुए औद्योगीकरण एवं नगरीकरण ने नगरों में बढ़ती जनसंख्या एवं उपभोक्तावादी प्रवृत्ति ने भूमि के एक बड़े भू-भाग को कूड़ों-कचरों से भर दिया है। विभिन्न तरह के उद्योगों से निकलने वाले द्रव एवं ठोस अवशिष्ट पदार्थ मिट्टी को प्रदूषित कर रहें हैं। ठोस कचरे के कारण आज भूमि में प्रदूषण अधिक फैल रहा है। ठोस कचरा प्रायः घरों, मवेशी-ग्रहों, उद्योगों, कृषि एवं दूसरे स्थानों से भी आता है। इसके ढेर टीलों का रूप ले लेते हैं क्योंकि इस ठोस कचरे में राख, काँच, फल तथा सब्जियों के छिल्के, कागज, कपड़े, प्लास्टिक, रबड़, चमड़ा, ईंट, रेत, धातुएँ मवेशी गृह का कचरा, गोबर इत्यादि वस्तुएँ सम्मिलित हैं। हवा में छोड़े गये खतरनाक रसायन सल्फर, सीसा के यौगिक जब मृदा में पहुँचते हैं तो यह प्रदूषित हो जाती है। भूमि के भौतिक, रासायनिक या जैविक गुणों में ऐसा कोई भी अवांछित परिवर्तन, जिसका प्रभाव मनुष्य तथा अन्य जीवों पर पड़े या जिससे भूमि की प्राकृतिक गुणवत्ता तथा उपयोगिता नष्ट हो भू-प्रदूषण कहलाता है। भूमि पर उपलब्ध चक्र भू-सतह का लगभग 50 प्रतिशत भाग ही उपयोग के लायक है। और इसके शेष 50 प्रतिशत भाग में पहाड़, खाइयां, दलदल, मरूस्थल, पठार आदि हैं। यहाँ यह बताना आवश्यक है कि विश्व के 71 प्रतिशत खाद्य पदार्थ मिट्टी से ही उत्पन्न होते हैं। इस संसाधन (भूमि) की महत्ता इसलिए और भी बढ़ जाती है कि ग्लोब के मात्र 2 प्रतिशत भाग में ही कृषि योग्य भूमि मिलती है। अतः भूमि या मिट्टी एक अतिदुर्लभ (अति सीमित) संसाधान है। निवास एवं खाद्य पदार्थों की समुचित उपलब्धि के लिए इस सीमित संसाधान को प्रदूषण से बचाना आज की महती आवश्यकता हो गयी है। परन्तु आज जिस गति से विश्व एवं भारत की जनसंख्या बढ़ रही है इन लोगों की भोजन की व्यवस्था करने के लिए भूमि को जरूरत से ज्यादा शोषण किया जा रहा है। जिसके परिणाम स्वरूप आज भूमि की पोषक क्षमता कम होती जा रही है। पोषकता बढ़ाने के लिए मानव इसमें रासायनिक उर्वरकों को एवं कीटनाशकों का जमकर इस्तेमाल कर रहा है। इसके साथ ही पौधों को रोगों व कीटाणुओं तथा पशु पक्षियों से बचाव के लिए छिड़के जाने वाले मैलिथियान, गैमेक्सीन, डाइथेन एम 45, डाइथेन जेड 78 और 2,4 डी जैसे हानिकारक तत्व प्राकृतिक उर्वरता को नष्ट कर मृदा की साधना में व्यतिक्रम उत्पन्न कर इसे दूषित कर रहे हैं जिससे इसमें उत्पन्न होने वाले खाद्य पदार्थ विषाक्त होते जा रहे हैं और वही विषाक्त पदार्थ जब भोजन के माध्यम से मानव शरीर में पहुँचते हैं तो उसे नाना प्रकार की बीमारियां हो जाती हैं। आज पर्यावरण की समस्या व इसके संरक्षण, प्रबन्धन की दिशा में चिंतन व सार्वभौमिक सोच का होना लाजिमी हो गया है। कृपया उपरोक्त विषयों पर अपने सामाजिक ज्ञान, अनुभव की सीमाओं को ध्यान में रखते हुये शोधपूर्ण, तथ्यपरक एवं वैज्ञानिक तर्कों से युक्त शोध आलेख/लेख प्रेषित कर रचनात्मक सहयोग देने की कृपा करें।

साहित्य में सत्तावनी क्रांति के राष्ट्रबोध का स्वरूप

✍ डॉ. लखनलाल खरे

10 मई 2007 को देश के प्रथम स्वाधीनता आन्दोलन के 150 वर्ष पूरे हो गये। 150 वर्ष पूरे होने के उपलक्ष्य में केन्द्रीय और राज्य सरकारों ने इसके उपलक्ष्य में समारोहों के आयोजनों की रूपरेखायें बनायीं, विभिन्न परिकल्पनाएँ कीं और संकल्प पारित किये। वर्ष 2008 की मई माह की 10 तारीख व्यतीत हुई पर देशवासियों को पता ही नहीं चला कि एक वर्ष तक चलने वाले विभिन्न आयोजन कब और कहां हुए-गतिशीलता तो क्या, स्पंदन और स्फुरण भी नहीं हुआ-न राजनैतिक चेतना में और न राजनीति को सर्वस्व समझने वाली जन-चेतना में। 1857 में उठने वाली क्रांति की चिनगारी ज्वाला के रूप में परिवर्तित हुई और प्रायः एक शताब्दी में विदेशी सत्ता को भस्मीभूत कर शान्त हुई। हमारी चेतना इस छोटे से अन्तराल में ही क्रांति की पहली चिनगारी को विस्मृत कैसे कर बैठी-यह आश्चर्य है।

क्रांति का स्वरूप

साहित्य विचारों का संवाहक होता है-क्रांति का भी। साहित्य चाहे मौखिक हो अथवा लिखित, क्रांति के विचार उस पर सवार होकर अपने उद्देश्य की प्राप्ति की ओर अग्रसर होते हैं। संस्कृत की क्रम धातु से निर्मित 'क्रांति' शब्द का अर्थ है-गति अथवा चाल। क्रांति से आशय उस गति से है जो समाज में व्यापक रूप से उथल पुथल मचाती है, समाज में परिवर्तन लाती है। सामाजिक संस्थाओं के आधार पर ये परिवर्तन अनेक प्रकार के हो सकते हैं-आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक आदि। 'क्रांति' की व्यापकता पर प्रकाश डालते हुये भी श्रीनेत्र पाण्डेय लिखते हैं कि - ''....... साधारण जनता कुछ काल तक भ्रष्ट और विकृत संस्थाओं के अत्याचारों को मूक होकर सहन करती है क्योंकि इन परम्परागत संस्थाओं के प्रति उसकी बड़ी श्रद्धा होती है और वह सहसा उनके विरूद्ध आन्दोलन करने का साहस नहीं करती। परन्तु प्रत्येक समाज का एक प्रबुद्ध वर्ग भी होता है जो बड़ा ही प्रगतिवादी, विवेकशील एवं स्वतंत्र विचार का होता है। वह वर्ग सामाजिक दोषों की ओर से चैतन्यशील तथा जागरूक होता है। वह लोक कल्याण की भावना से प्रेरित होकर सामाजिक समस्याओं पर विचार करने लगता है। इस प्रकार उसके मस्तिष्क में विचारों की उथल-पुथल अथवा क्रांति आरम्भ हो जाती है। इसी को बौद्धिक क्रांति कहा जाता है। प्रबुद्ध वर्ग ध्वंसात्मक तथा रचनात्मक-दोनों प्रकार के विचारों से ओतप्रोत हो जाता है।''

1857 की क्रांति धवंसात्मक थी, जिसके मूल में राष्ट्र की स्वतंत्रता, राष्ट्रीय गौरव की पुनर्स्थापना तथा राष्ट्रीय कल्याण जैसे पवित्र तथा रचनात्मक भाव निहित थे।

राष्ट्र की परिकल्पना

'राष्ट्र' शब्द का प्राचीनतम उल्लेख वैदिक साहित्य में है। अथर्ववेद में मंत्रकार कहता है कि - आत्मज्ञानियों ने विश्वकल्याणार्थ सृष्टि के प्रारम्भ में ही दीक्षा ली और तप किया। इससे राष्ट्र, राष्ट्र बना और राष्ट्रीय बल तथा ओज प्रकट हुये। अतः समस्त बुद्धजन इस राष्ट्र की सेवा करें, इसे नमन करें :-

✍ सहायक प्राध्यापक हिन्दी, शास. एस. एम. एस. महाविद्यालय, कोलारस, जिला शिवपुरी (म. प्र.)

भद्रं इच्छन्त ऋषयः स्वर्विदः। तपो दीक्षां उपसेदुः अग्रे।

ततो राष्ट्रं बलं ओजश्च जातम्। तदस्मै देवा उपसं नमन्तु॥

देश, राज्य और राष्ट्र शब्दों में मूलभूत अन्तर है। इनके अंग्रेजी रूपान्तर क्रमशः Country, State और Nation हैं। इनके सटीक और सूक्ष्म अन्तर को स्पष्ट करते हुये डॉ. श्रद्धा सक्सेना ने अपने एक आलेख में उल्लेख किया है कि - 'देश' भौगोलिक अवधारणा है, 'राज्य' राजनैतिक अवधारणा है और राष्ट्र सांस्कृतिक अवधारणा है। जो व्यक्ति अपनी संस्कृति से जितना अधिक जुड़ा होता है, वह उतना ही राष्ट्रीय होता है। भाषा, साहित्य, पर्व, त्यौहार, रीतिरिवाज, परम्पराएँ, वेशभूषा, खान-पान यही संस्कृति के अंग-प्रत्यंग हैं। इनकी समृद्धि, इनका सम्मान तथा इनका संरक्षण-राष्ट्रीयता की पहचान है।'' प्रख्यात लेखक श्री श्रीधर पराडकर भी मानते हैं कि राष्ट्र एक सांस्कृतिक इकाई है। वे लिखते हैं - ''हिन्दुस्तान में राष्ट्र व राज्य अलग-अलग माने गये हैं। राष्ट्र सांस्कृतिक इकाई होने के कारण एक है, जबकि राजनीतिक अवस्था के अन्तर्गत राज्य कई हो सकते हैं। राजनीतिक दृष्टि से राज्य अलग-अलग होते हुये भी सांस्कृतिक धरातल पर राष्ट्र एक रह सकता है। तभी तो हिन्दुस्तान में अलग-अलग राज्य थे, फिर भी सदैव से आसेतु हिमालय एक राष्ट्र के रूप में जाना गया।''

परन्तु 'आसेतु हिमालय राष्ट्र' के रूप में मध्यकाल ने इसे मान्यता प्रदान नहीं की। समूचा भारत खण्ड-खण्ड रियासतों और राज्यों में विभक्त था। जो जिस रियासत या राज्य का मालिक होता था, वही उसका राष्ट्र और देश था। यही कारण है कि मध्यकालीन आख्यानों में 'राष्ट्रभक्ति' शब्द का प्रयोग प्रायः कहीं नहीं हुआ, 'राजभक्ति' शब्द ही प्रयुक्त हुआ है। मध्यकाल में सैनिक अपने राजा के नमक की लाज रखता था, राष्ट्र की नहीं।

1857 की क्रांति और राष्ट्रीयता

वास्तविकता यही है कि 1857 के प्रथम स्वतंत्रा आन्दोलन से ही राष्ट्रीय चेतना या राष्ट्र बोध का प्रारंभ होता है। इस आन्दोलन में भाग लेने वाले राजे-रजवाड़ों की खण्डीय चेतना एकाकार हो रही थी और 'राज' तथा 'राज्य' के ढहते महलों पर 'राष्ट्र' आकार ग्रहण कर रहा था। इस परिवर्तन के केवल राजनैतिक ही नहीं, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक कारण भी थे।

राष्ट्रीय चेतना, राष्ट्र बोध, राष्ट्रभक्ति, राष्ट्र प्रेम जैसे शब्दों की व्याप्ति यद्यपि पर्याप्त विस्तृत है, परन्तु इसका अर्थ-संकोच हुआ है और अब इनसे आशय केवल वीर-भावों से ही लिया जाता है। इसी अर्थ में ये शब्द रूढ़ भी हो गये हैं। 1857 की क्रांति के समय समूचे देश में स्वतंत्रता के जिस सामूहिक भाव-बोध ने जन्म लिया, उसने ही कालान्तर में राष्ट्रीय चेतना और राष्ट्रभक्ति का आकार ग्रहण कर लिया। विदेशियों के अत्याचारों तथा अन्याय से मुक्ति की तड़प ने इस भावना की मूर्ति गढ़ने में विशेष सहयोग प्रदान किया। जो राजे-महाराजे पहले अपने-अपने राज्य विस्तार अथवा राज्य की लड़ाई के लिये परस्पर लड़-झगड़कर शक्ति और समय का अपव्यय करते थे, वह सामूहिक होकर अंग्रेजी सत्ता पर टूट पड़े। राजतंत्र में जनता सदैव अपने राजा के नमक को भंजाती है, सो उसने भी अपने नायकों का साथ दिया। परिवर्तन के इस आकाश से नवीन राष्ट्र का बाल-रवि उदय हो रहा था।

सत्तावनी क्रांति साहित्य में राष्ट्र-बोध

क्रांति और साहित्य का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। परिवेश और परिस्थितियों को समझने

के लिये इन सम्बन्धों का उद्घाटन और विश्लेषण आवश्यक होता है। 1857 की क्रांति के समय वीरोचित भाव-जागरण हेतु अनेक गीतों का सृजन हुआ जिनमें प्रवृत्ति की दृष्टि से अधिकांश लोकाधृत थे।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के हिन्दी साहित्येतिहास के काल विभाजन के अनुसार आधुनिक युग का प्रारम्भ संवत् 1900 (ईसवी सन् 1843) से होता है, अर्थात् - प्रथम स्वाधीनता आंदोलन प्रारम्भ होने के 13 वर्ष पूर्व हिन्दी साहित्य में नवीन प्रवृत्तियों का प्रवेश हो चुका था। वस्तुत: यह समय हिन्दी साहित्य का संधिकाल था, जिसे युग प्रवर्तक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र नवयुग की ओर अग्रसर करने का प्रयास कर रहे थे। भारतेन्दु बाबू का जीवन-काल अत्यल्प रहा, जिनका जन्म प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के 7 वर्ष पूर्व (सन् 1850) और निधन इस क्रांति के 27 वर्ष पश्चात् (सन् 1884) हुआ। भारतेन्दु जी प्रथम क्रांति होने के समय बालक थे और मृत्यु के समय तक युवा। परन्तु, आश्चर्य है कि इन्होंने अपने साहित्य में इस क्रांति की किसी भी रूप में चर्चा नहीं की और न ही प्राय: इनके मण्डल के लेखकों ने।

यह अत्यन्त महत्वपूर्ण तथ्य है कि 1857 की क्रांति की पृष्ठभूमि में जिस राष्ट्रीय चेतना का सामूहिक उदय हुआ, वह वास्तविक राष्ट्रबोध था। आज भारत का जो राष्ट्रीय स्वरूप है, उसका आभास इस क्रांति के समय मिलने लगा था। एक बात सब में समान थी और वह यह कि विदेशी सत्ता के प्रति सबमें विस्फोटक असंतोष था। मण्डला की गौंड़ रानी दुर्गावती के वंशज शंकर शाह कवि थे। रामगढ़ की रानी ने 1857 की क्रांति में भाग लिया था। शंकर शाह ने भी अपने पुत्र रघुराज के साथ क्रांतिकारियों का सहयोग किया था। अंग्रेजों ने दोनों क्रांतिकारी पिता-पुत्र को गिरफ्तार किया और घर की तलाशी ली। तलाशी में शंकर शाह द्वारा लिखित एक कविता मिली जिसके आधार पर पिता-पुत्र को तोप के मुँह से बाँधकर निर्ममतापूर्वक उड़ा दिया गया। कविता यह थी :

मूँद मुख डंडिन को चुगलों को चबाइ खाइ,
खूंदडार दुष्टन को शत्रु संहारिका।
मार अँगरेज रेज कर देइ सात चण्डी,
बचे नहीं वैरी बाल-बच्चे संहारिका।
शंकर की रच्छा कर दास प्रतिपाल कर,
दीन की पुकार सुन जाय मात हालिका।
खाय लै मलेच्छन को देर नहीं करो मात,
भच्छन कर तच्छन वेग शत्रुन को कालिका।

इसी समय के आसपास दिल्ली से निकलने वाले उर्दू अखबार-'पयामे आजादी' में भी राष्ट्रभक्ति से सम्बन्धित रचनाएँ प्रकाशित हुआ करती थीं। इनमें एक कविता यह भी थी :-

हम हैं इसके मालिक हिन्दुस्तान हमारा,
पाक वतन है कौम का जन्नत से भी प्यारा।
ये है हमारी मिल्कियत हिन्दुस्तान हमारा,
इसकी रूहानियत से रोशन है जग सारा।
कितना कदीम कितना नईम, सब दुनिया से न्यारा,
करती है जरखेज जिसे गंग जमुन की धारा।
ऊपर बर्फीला पर्वत, पहरेदार हमारा,
नीले साहिल पर बजता सागर का नक्कारा।
इसकी खाने उगल रहीं सोना हीरा प्यारा
इसकी शानो-शौकत का दुनिया में जयकारा
आया फिरंगी दूर से ऐसा मन्तर मारा,
लूटा दोनों हाथ से प्यारा वतन हमारा।
आज शहीदों ने है तुमको अहले वतन ललकारा
तोड़ो गुलामी की जंजीरें, बरसाओ अंगारा।
हिन्दू मुसलिमाँ सिक्ख हमारा भाई-भाई प्यारा,
ये है आजादी का झण्डा, इसे सलाम हमारा।

सन् 1855 में कौमी झण्डे की सलामी पर

जगह-जगह यह गीत गाया जाता था। असली गीत 1867 (1857 होना चाहिये) क्रांति के अखबार-'पयामे आजादी' में छपा था। 'पयामे आजादी' की यह प्रति ब्रिटिश म्यूजियम लन्दन में सुरक्षित है।

उपर्युक्त काल-पंक्तियों में भारतीय राष्ट्रीय चेतना की स्पष्ट अभिव्यक्ति है। इसमें वीरोचित भाव तो हैं ही, गुलामी जंजीरों को तोड़ने का आव्हान भी है। यही नहीं, भारत के सौंदर्य का चित्रण है, तो अँग्रेजों द्वारा इसकी समृद्धि को लूटने के प्रति विषाद भी है। इन सबसे अधिक महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि राष्ट्रीय एकता को सुदृढ़ करने वाली साम्प्रदायिक सौहार्द्र की भावना की दृष्टि इसमें है।

जहाँ एक ओर सामूहिक राष्ट्रीय चेतना का उदय हो रहा था, वहाँ संकीर्ण राजनीतिक प्रवृत्ति भी हतोत्साहित नहीं हो पा रही थी। इतना ही नहीं, जब क्रांतिकारी अपने अभियान पर अडिग थे, उस समय कुछ राजाओं का चरित्र और ईमान डिग रहा था तथा वे अँग्रेजों से गहरी सहानुभूति प्रदर्शित कर रहे थे। तत्कालीन समय में राजाओं के मध्य हुये परस्पर पत्र-व्यवहारों के अध्ययन से यह बात स्पष्ट रूप से प्रमाणित होती है। प्रथम स्वतंत्रता आन्दोलन के समय टीकमगढ़ की महारानी की लड़ाई सरकार की महत्वपूर्ण भूमिका थी। एक ओर वे अँग्रेजों से सहानुभूति रखती थीं तो दूसरी ओर बुन्देलखण्ड के राजाओं पर उनका गहरा प्रभाव था। शाहगढ़-नरेश बखतबली शाह द्वारा लड़ाई सरकार को लिखे गये इस लम्बे पत्र से राजाओं की तत्कालीन मनोवृत्तियाँ उद्घाटित होती हैं :

''श्री रानी श्री महारानी श्री महेन्द्र महारानी लड़ई कको जू देव ऐते महाराजाधिराज श्री महाराजा श्री राजा बहादुर श्री बखतबली जू देव के वांचवै आपर उहाँ के समाचार भले चाहिजै इहाँ के समाचार भले हैं आपर इन दिनन में अपनी खुसी आनन की खबर नहीं पाई है सो लिखावे में आवैं इहाँ खुसी आनन्द से हैं और ई तरु की खबरें तो उहाँ पहुँचत ही रहत हुई जबलपुर में हजारक आदमी हैं दो चार साहब उहाँ हैं।

सो ऊ जागा के गौड़ व लोदी हैं तिनसे उहाँ बखेड़ा होत रहत है और मेंहरवारे (मैहर वाले) परना (पन्ना) वापुरान कर तावैनी हजूरी कमे पाता है तिनसे न्याउ होत रहत है और मेंहरवारे परना के पुर ते करनावनी हजूरी के ओर रहली में सागर के हजार वारा से आदमी हैं सो उहाँ थानन में छापा करत रहत हैं और नरियावली को बानपुर की फौज ने ली है और परना वारन को हटा दयौ है फिर समें समुवादया है परन्तु उनके मानश इहाँ से लगाय के आगे गड़ाकोटा की तरु बड़वे को विचार करे है उनकी समाधानी को विचार इहाँ ते करायो गयो है जो वे मान जैहै तो ठीक है कजात न माने तो बखेड़ा लगो है ही और जैतपुरा वारी श्री रानी कको जू देव की पाती इहाँ आई ताकी नकल अपने समझवे को पठवाई है पाती में लिखी आई के हमारे मानवन को पनाह अपने इलाका में मिलत रहत ताकी चरखारी को इलाका इहाँ से अड़ाई कोस के अंतर से है और बाजे गाँव इहाँ के गाउन से मिले तैं सों उनको विचार चरखारी को इलाका लूटने पें है जब इहाँ के इलाका में उहाँ को इलाका लूट है तब इहाँ वारन से बखेड़ा चरखारी वारन से बड़ते तासें अबै जो जागा लड़ाई लगी रहत ताके बन्दोबस्त की बिबूच से तीसरी जागा और विचार हो गयो तो आपुस ही में रात दिन को उरझाव कहाउ लगो अउ जो राज बिल्कुल बर्बाद भयो फिर साहगढ़ के केसउ आबाद न हो सकहै जैसो कछू राज व गौज है सो अपन सब जानो हो तासै जैतपुर वारी कको जे कौ उहाँ से समझाइस वा कहाउ हो जय तौ ई तरु हाल भुमयाउट बरका देई जो अपन भावरन की वा अँगरेजन के कछू समाधानी भई

जात है सो अपनी सलाह माफिक जो मदत कको जू की होत की हू है सो इहाँ ते करी जैहै परंत उहाँ के इलाका में हो चरखारी के इलाका में उनने भुमयाउट करी तो चरखारी वारन से हाल इतै बखेड़ा बीद जै है तासे इहाँ के गिर पैंत को बरकाउनौ रहै ओर सागर जबलपुर कौ अँगरेजन कौ हवाल अपुन को लिखौ है ही उहाँ सब जागन की खबर आउत हू है जो अँगरेजन बड़ाउस भयौ जात हौइ तो इहाँ के भले आदमी हवाल सब जाहर कर ही आये हैं जो तजबीज सलाह उहाँ ते लिखी आवै ता माफिक समझ इहाँ राख ली जाय आप जेठी हैं इहाँ वहाँ की समार अपनऊ को करने है जी में सुबीदाँ रहै सोऊ बन्दोबस्त वा सिखावन रहै यै सौ ना होय कै ई तरु की कौनऊ बेखबरी करी ये इहाँ निस्वे अपनी तजबीज वा हुकुम में है पाती समाचार खुसी लिखवावत रहवी अगन सुदी 12 सम्वत 1914 मुकाम साहिगढ़ (मुहर राजा की)''

उपर्युक्त पत्र राजाओं की आपसी कलह तथा अँगरेजों से भयभीत होने की स्थिति स्पष्ट कर रहा है। स्पष्ट है, प्रथम स्वाधीनता आंदोलन के समय खण्ड-खण्ड राष्ट्रीय चेतना का एकीकरण है इस क्रांति के पश्चात ब्रिटिश शासन स्थापित हो जाने के पश्चात ही हुआ।

उपसंहार

1857 की क्रांति के ठीक पूर्व और पश्चात् ऐसा साहित्य विपुल मात्र में प्रणीत हुआ होगा, परन्तु इसका अधिकांश भाग अँग्रेजों की भेंट चढ़ गया। क्रांतिकारियों की गतिविधियों से परेशान तथा क्रुद्ध होकर अँग्रेजों ने राजाओं के किलों को लूटा और आग लगायी। इससे इनके राजकीय पुस्तकालयों में संग्रहीत लाखों बहुमूल्य ग्रंथ भस्मीभूत हो गये। जो बचे, वे संरक्षण के अभाव में या तो नष्ट हो गये अथवा लुप्त हो गये। वर्तमान में जितना और जो प्राप्य है, उसी से सत्तावनी क्रांति के समय रचित साहित्य के स्वरूप को विश्लेषित किया जा सकता है। इतना ही नहीं इस साहित्य से प्रथम स्वतंत्रता आन्दोलन के समय राष्ट्रीय चेतना के स्वरूप का भी उद्घाटन होता है।

संदर्भ-संकेत

1. भारतवर्ष का सम्पूर्ण इतिहास (पहला भाग) : प्रो. श्रीनेत्र पाण्डेय पृ. 95 लोकभारती प्रकाशन, 15 स, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद (छब्बीसवां संस्करण-1986.87)
2. अथर्ववेद (टीका) टीकाकार : पं. श्रीराम आचार्य, 1941, पृ. 38 (काण्ड-19) (ब्रह्मवर्चस, शांतिकुंज हरिद्वार उ. प्र.) संस्करण 2000
3. 'इंगित' (17 से 19 फरवरी 2007 त्रिदिवसीय परिसंवाद-11 भारतीय साहित्य का राष्ट्रीय स्वर''-में प्रस्तुत आलेख) पृ. 97 स्मारिका, संपादक : जगदीश तोमर, मध्य भारतीय हिन्दी साहित्य सभा, ग्वालियर
4. वही, पृ. 02
5. डॉ. वृन्दावनलाल वर्मा समग्र (खण्ड-6), पृ. 59-60 (उपन्यास : रामगढ़ की रानी) सम्पादक डॉ. विश्वनाथ प्रसाद, प्रचारक ग्रंथावली परियोजना, हिन्दी प्रचारक पब्लिकेशन्स, पिशाचमोचन, वाराणसी संस्करण-1997
6. वही, पृ. 60
7. वही
8. तात्याटोपे बुन्देलखण्ड में : डॉ. परशुराम शुक्ल 'विरही', पृ. 68 (स्वराज्य संस्थान संचालनालय, संस्कृति विभाग, मध्य प्रदेश शासन, रवीन्द्र भवन परिसर, भोपाल, संस्करण-2006)

21वीं सदी में उच्च शिक्षा का परिदृश्य

डॉ. इन्द्रमणि

जब से समाज का आविर्भाव हुआ है तभी से हम शिक्षा-दीक्षा की बात करते रहे हैं। नि:संदेह शिक्षा से ही समाज एवं राष्ट्र उच्चीकृत भी बना है। यदि हम शिक्षा-प्रणाली के इतिहास को देखें तो जहाँ भारतीय परम्परा में वैदिक युग में गुरूकुल परम्परा का उल्लेख है वहीं यूनान एवं स्पार्टा में शिक्षा व्यवस्था राज्याधीन प्रतीत होती है।

आज के वैश्विक युग में किसी भी राष्ट्र के लिये उसके भौतिक एवं मानव संसाधनों का अत्यन्त महत्व है। वस्तुत: भौतिक एवं मानव संसाधन ही किसी राष्ट्र को अग्रणी राष्ट्रों की कतार में खड़ा करने के लिये सक्षम बनाते हैं। इस उपयोगितावादी युग में भौतिक संसाधनों की उपलब्धता सीमित होने के कारण मानव संसाधनों के लिये विकास पर अधिक जोर दिया जाने लगा है। नि:सन्देह किसी भी राष्ट्र अथवा समाज के विकास का सर्वाधिक महत्वपूर्ण साधन मानव है। वस्तुत: मानव जाति के विकास का आधार शिक्षा-प्रणाली ही है। शिक्षा के द्वारा ही व्यक्ति को सभ्य एवं सुसंस्कृत बनाकर उसे समाज व राष्ट्र का एक उपयोगी नागरिक बनाया जा सकता है। शिक्षा की यह प्रक्रिया जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त लगातार किसी न किसी रूप में एक सतत् प्रक्रिया के रूप में सदैव चलती रहती है।

शिक्षा व्यक्ति की शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, नैतिक, चारित्रिक, संवेगात्मक तथा आध्यात्मिक शक्तियों का विकास करती है। शिक्षा के द्वारा व्यक्ति अपनी समस्याओं का समाधान करता हैं; जीवन को आनन्दमय बनाता है तथा जनकल्याण के कार्यों की ओर प्रवृत्त होता है।[1]

यदि विश्व शिक्षा-प्रणाली के संदर्भ में विचार करें तो यूनानी संस्कृति की अपनी आधारगत पहचान है। सुकरात, प्लेटो एवं अरस्तू आदि ने शिक्षा-प्रणाली के सन्दर्भ में जो विचार एवं सिद्धान्त दिये वे आज भी मील के पत्थर साबित हो रहे हैं। प्लेटो ने अपनी पुस्तक रिपब्लिक में शिक्षा प्रणाली से संबंधित जो सिद्धान्त दिए हैं वे विश्व इतिहास में अद्वितीय हैं। रूसों रिपब्लिक के शिक्षा सिद्धान्त से इतना प्रभावित हुआ कि स्वयं लिखा - ''रिपब्लिक राजनीति पर लिखी गई पुस्तक मात्र ही नहीं वरन् शिक्षा पर लिखी गयी एक ऐसी उत्कृष्ट रचना है जो इससे पहले कभी नहीं लिखी जा सकी।''[2]

प्लेटो ने शिक्षा को एक ऐसी सामाजिक प्रक्रिया माना है जिसके द्वारा समाज के घटक एक सामाजिक चेतना से अनुप्रेरित होकर समाज के प्रति अपने कर्त्तव्यों का पालन करना सीखते हैं। एक अच्छे जीवन में आने वाली बाधाओं को शिक्षा के द्वारा ही दूर किया जा सकता है।

वैश्विक स्तर पर सामान्यत: त्रि-स्तरीय शिक्षा-प्रणाली देखने को मिलती है। प्लेटो ने शिक्षा संबंधी जो सिद्धान्त दिए हैं उनमें प्राथमिक, माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा की बात कही गयी है। प्राथमिक स्तर पर समाज के सभी व्यक्ति को शिक्षा दी जाती है, इसके बाद एक परीक्षा करायी जाती है। परीक्षा उत्तीर्ण करने वालों को आगे भी शिक्षा दी जाती थी एवं अनुत्तीर्ण होने वाला उत्पादन के कार्य में लग जाता था। प्राथमिक शिक्षा में उत्तीर्ण

विभागाध्यक्ष, राजनीति विज्ञान, अकबरपुर महाविद्यालय, अकबरपुर (कानपुर देहात)

होने वाले एवं अध्ययन करने वालों के लिये एक परीक्षा और उत्तीर्ण करनी होती थी। उसमें उत्तीर्ण होने वाले दार्शनिक राजा होते थे एवं अनुत्तीर्ण होने वाले सैनिक वर्ग।

रिपब्लिक का सबसे मौलिक और महत्वपूर्ण सुझाव उच्चतम शिक्षा की व्यवस्था के संबंध में है। प्लेटो ने उच्च शिक्षा को दो भागों में विभाजित किया है। एक 20 से 30 वर्ष तक का शिक्षण और दूसरा 30 से 35 वर्ष तक का शिक्षण। 20 वर्ष तक शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् जो विद्यार्थी परीक्षा में योग्य एवं बुद्धिमान प्रमाणित होंगे, उनके लिये ही इस उच्च शिक्षा की व्यवस्था है। प्लेटो की मान्यता थी कि जिस प्रकार एक सैनिक का विशेष गुण साहस और शौर्य है, उसी प्रकार एक शासक का आवश्यक गुण ज्ञान अथवा विवेक है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्लेटो की शिक्षण व्यवस्था के द्वारा यह तय होता है कि समाज में तीन वर्ग होंगे। प्राथमिक शिक्षा प्राप्त लोग कृषक अथवा उत्पादक होते हैं जिनके अन्दर क्षुद्या की अधिकता होती है। माध्यमिक शिक्षा प्राप्त लोग सैनिक होते हैं जिनके अन्दर शौर्य अथवा साहस की अधिकता होती है और अन्ततः जो उच्च शिक्षा प्राप्त हैं-वही विवेक का प्रतिनिधित्व करता है एवं उसे ही प्लेटो दार्शनिक राजा कहता है।

यही तीनों वर्ग समाज का सफल संचालन करेंगें ऐसा प्लेटो मानकर चलता है तथा तीनों वर्ग अपना-अपना कार्य करेंगे तथा दूसरे के कार्य में हस्तक्षेप नहीं करेंगे तभी तो समाज में न्याय का वातावरण होगा। इस प्रकार हम देखते हैं कि प्लेटो ने कार्य विशेषीकरण के सिद्धान्त को अपनाते हुए एक आदर्श शिक्षा व्यवस्था का निरूपण किया है।

उच्च शिक्षा की वर्तमान स्थिति

आज के भूमण्डलीकरण के युग में विश्व समुदाय के बीच उच्च शिक्षा का महत्व बढ़ता जा रहा है। प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक सदैव ही शिक्षा को सामाजिक तथा राष्ट्रीय विकास की दृष्टि से एक सम्मानजनक स्थान दिया जाता रहा है। उच्च शिक्षा के प्रति विश्व की सरकारें भी अपने आय का बहुत बड़ा हिस्सा निवेशित करती दिख रही हैं। जहाँ शिक्षा ही समाज एवं राष्ट्र के विकास की रीढ़ है, वहाँ भारतीय सरकारों को भी इस पर अधिक ध्यान देने की जरूरत है। अपेक्षाकृत उच्च शिक्षा में भारतीय शासन ने सम्माजनक धन निवेश किया है परन्तु हाल में अमेरिकन इंस्टीट्यूट आफ इंटरनेशनल एजूकेशन की वार्षिक रिपोर्ट 'ओपेन डोर 2008' इस बात का इशारा करती है कि अभी भी उच्च शिक्षा में भारत को वैश्विक केन्द्र बनने में बहुत समय लगेगा।

कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय के प्राध्यापक निरंजन कुमार ने 'ओपेन डोर 2008' की रिपोर्ट के अनुसार हमारा ध्यान आकृष्ट करते हुए लिखा कि यदि भारतीय छात्रों द्वारा प्रति वर्ष विदेश में खर्च की जाने वाली धनराशि यदि देश में रह जाये तो उच्च शिक्षा की काया पलट होने में देर नहीं लगेगी। रिपोर्ट के अनुसार[3] - अकादमिक सत्र 2007-08 में अमेरिका में उच्चतर शिक्षा प्राप्त करने के लिये आने वाले छात्रों में रिकार्ड संख्या में 94563 भारतीय छात्र हैं। बाहर से आने वाले छात्रों में भारतीय छात्रों की संख्या 2001 में सबसे ज्यादा चल रही है। अमेरिका में इस वर्ष 6.23 लाख विदेशी छात्र आए, जिनमें सबसे अधिक 15 प्रतिशत भारतीय छात्र है। विदेशी छात्रों की इस आवक से यहाँ की यूनिवर्सिटी और सरकार, दोनों खुश हैं, क्योंकि न केवल ये छात्र भारी-भरकम फीस चुकाते हैं, बल्कि शिक्षा के अलावा खाने-पीने, रहने और

अन्य खर्चों की वजह से बड़ी मात्रा में रोजगार पैदा करते है। उच्च शिक्षा को लेकर शीर्ष भारतीय उद्योग संगठन एसोचैम की भी एक रिपोर्ट आई है। इसके अनुसार अमेरिका, इंग्लैण्ड, आस्ट्रेलिया, कनाडा, जर्मनी, सिंगापुर आदि देशों में उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिये 4.50 लाख से भी अधिक भारतीय छात्र हर साल जाते हैं। इस रिपोर्ट के अनुसार इस पलायन की सबसे बड़ी वजह है पर्याप्त संख्या में उच्च गुणवत्ता वाले संस्थानों का अभाव होना। इसके अनुसार आई. आई. टी. और आई. आई. एम. में प्रवेश न पाने वाले 90 प्रतिशत छात्रों में कम से कम 20-25 प्रतिशत छात्र बाहर चले जाते हैं। इस अध्ययन के अनुसार ये छात्र विदेशों में लगभग 48 हजार करोड़ रूपये प्रतिवर्ष खर्च करते हैं। इस धन में विश्व स्तर के कम से कम 20 इंजीनियरिंग और मैनेजमेंट इंस्टीट्यूट खोले जा सकते हैं। इसके अतिरिक्त भारत में रोजगार में लगे लगभग 46 करोड़ लोगों में से केवल पाँच प्रतिशत के पास ही व्यावसायिक शिक्षा या प्रशिक्षण है, जबकि दक्षिण कोरिया में 95 प्रतिशत, जापान में 80 प्रतिशत और जर्मनी में 75 प्रतिशत तक लोग व्यावसायिक शिक्षा या प्रशिक्षण से लैस हैं। व्यावसायिक शिक्षा या प्रशिक्षण का अभाव हमारी उत्पादकता को प्रभावित करता है।

चीन में व्यावसायिक शिक्षा के लिये पांच लाख से ज्यादा संस्थान हैं, जबकि भारत में ऐसे संस्थान मात्र तीन हजार ही हैं। भारतीय छात्रों द्वारा बाहर खर्च की जाने वाली इतनी बड़ी राशि हर वर्ष अगर देश में रह जाए तो हमारी उच्च शिक्षा की कायापलट होने में देर नहीं लगेगी। इसका अनुमान इससे लगाया जा सकता है कि 11वीं पंचवर्षीय योजना में उच्च शिक्षा के लिये सरकार का कुल अनुमानित खर्च 84,943 करोड़ रूपये है। अगर भारत में विश्व स्तर के संस्थान होते तो न केवल हम इस राशि का उपयोग अपने लिये करते, बल्कि बड़ी संख्या में बाहर से भी विदेशी छात्रों को आकर्षित करने में सफल होते। अमेरिका के अलावा आस्ट्रेलिया, इंग्लैण्ड, कनाडा आदि जगहों से 4-5 लाख विदेशी छात्र आते हैं। वहीं भारत में विदेशी छात्रों की संख्या सिर्फ 27 हजार है। सिंगापुर जैसे अत्यंत छोटे से देश में भी डेढ़ लाख से अधिक छात्रों के प्रवेश की योजना है। उच्च शिक्षा संस्थानों की दुनिया में रेटिंग करने वाली प्रमुख संस्था 'क्वाकक्वारेली साइमंड्स' हर साल शीर्ष दो सौ शिक्षण संस्थानों की सूची निकलती है। इसमें भारत के केवल दो ही संस्थान 2008 में जगह पा पाए। वे भी 150 रैंक के बाद, जबकि टाप 50 में एशिया के ही चीन, जापान, सिंगापुर, दक्षिण कोरिया आदि के कई संस्थान हैं। एसोचैम के अनुसार अगर हम उच्च शिक्षा का समुचित विकास कर सकें तो भारत न केवल लगभग 2.4 लाख करोड़ रूपये की आय अर्जित कर सकेगा, बल्कि इसके द्वारा तकरीबन 10 लाख अतिरिक्त रोजगार भी पैदा होंगे। सरकार ने एक राष्ट्रीय ज्ञान आयोग की स्थापना की थी।

राष्ट्रीय ज्ञान आयोग ने 2006 में अपनी अनुशंसाएं और उच्च शिक्षा के लिये भावी रूपरेखा सरकार को सौंप दी। इसमें अन्य चीजों के अलावा सरकार, राजनेताओं और नौकरशाही के हस्तक्षेप से उच्च शिक्षा को मुक्त करने की बात कही गयी थी, ताकि विश्वविद्यालय को राजनीति और लालफीताशाही से दूर रखते हुए उन्हें अकादमिक स्वतंत्रता और स्वायत्तता मिल सकें। इसके लिये एक स्वतंत्र उच्च शिक्षा नियामक प्राधिकरण की स्थापना करने की सिफारिश भी की गयी, जो सरकार के हस्तक्षेप से काफी हद तक बाहर होगा। उल्लेखनीय है कि विकसित देशों में उच्च शिक्षा संस्थान सरकार के नियंत्रण से बाहर है। यह रिपोर्ट भारत में उच्च शिक्षा के नये आयाम खोलने की दिशा में अत्यंत दूरगामी है। सरकार ने इस दिशा में कुछ कदम उठाने शुरू किये हैं, जैसे 11वीं योजना

में 30 केन्द्रीय विश्वविद्यालय, तीन इंडियन इंस्टीट्यूट आफ साइंटिफिक एंड एजुकेशनल रिसर्च, दो स्कूल आफ प्लानिंग एंड आर्किटेक्चर, दस नेशनल इंस्टीट्यूट आफ टेक्नोलोजी और 20 इंडियन इंस्टीट्यूट आफ इनफार्मेशन टेक्नोलॉजी खोलने का प्रस्ताव है। फिर भी छात्रों की इतनी बड़ी संख्या और भारत को उच्च शिक्षा का एक वैश्विक केन्द्र बनाने के लिये ये कदम नाकाफी है। केन्द्र सरकार उच्च शिक्षा के लिये एक अध्यादेश भी लाई है, लेकिन ज्ञान आयोग ने इसकी कड़ी आलोचना की है। ज्ञान आयोग के अनुसार सरकार पुरानी गलतियों को फिर से दोहरा रही है तथा राजनीतिज्ञों और नौकरशाही के चंगुल से उच्च शिक्षण संस्थानों के छुटकारा पाने की कोई ज्यादा उम्मीद नहीं है। सरकार ने इसकी अनेक सिफारिशों को अनदेखी कर दी हैं, जो उच्च शिक्षा संस्थानों की स्वायत्ता के लिये हानिकारक है। इसके अतिरिक्त बड़ी संख्या में उच्च शिक्षा संस्थानों को खोलने में धन की समस्या को लेकर भी सरकार विशेष सक्रिय दिखाई नहीं पड़ रही है। हमें बहुत बड़ी मात्रा में निवेश करना होगा और इसके लिये निजी क्षेत्र की भागीदारी जरूरी है। उच्च शिक्षा में व्यापक सुधारों की आवश्यकता है, लेकिन सवाल है कि क्या हमारे राजनेता जाति, मजहब और क्षेत्रवाद की राजनीति से ऊपर उठकर कुछ सोचने और देश को आगे ले जाने के लिये तैयार हैं ?

उपर्युक्त आंकड़े स्पष्ट संकेत करते हैं कि भारतीय सरकार को उच्च शिक्षा के क्षेत्र में क्रान्ति लाने की आवश्यकता है। यह वही भारत है जहाँ गुरूकुल परम्परा कायम थी एवं विश्व के अन्य भागों से लोग यहाँ आकर शस्त्र एवं शास्त्र का ज्ञान करते थे। वह प्राचीन संस्कृति हमारे लिये धरोहर है। भारतीय वेद दुनिया के सबसे प्राचीन एवं दार्शनिक ग्रन्थ हैं जिसकी वकालत गाँधी, विनोबा जैसे महापुरूषों ने भी की है। उस समय की आश्रम शिक्षा पद्धति में बहु-आयामी ज्ञान की परम्परा थी जैसे धार्मिक शिक्षा, औद्योगिक शिक्षा, भाषा संबंधी शिक्षा, सामाजिक शिक्षा, व्यवहारिक शिक्षा, कलात्मक शिक्षा एवं शारीरिक शिक्षा आदि।

परन्तु आज हम उच्च शिक्षा के क्षेत्र में वैश्विक केन्द्र बनने में बहुत पीछे हैं। प्राचीन काल में यूनान, ऐथेन्स एवं स्पार्टा के मुकाबले भारत कहीं भी पीछे नहीं था परन्तु आज 21वीं सदी में हम इस क्षेत्र में पिछड़ रहे हैं तभी तो भारतीय छात्रों को विदेशों का मुंह देखना पड़ रहा है। अतः हमें ढांचागत विकास करने की जरूरत है। तभी हम राष्ट्र आगे ले जा पायेंगे।

संदर्भ -

1. गुप्ता, एस. पी. 'उच्चतर शिक्षा मनोविज्ञान', शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद, पृष्ठ संख्या-2
2. शर्मा, डॉ. प्रभुदत्त, 'पाश्चात्य राजनीतिक विचारों का इतिहास', कालेज बुक डिपो, जयपुर, पृष्ठ संख्या-63
3. दैनिक जागरण-4 फरवरी, 2009, सम्पादकीय पृष्ठ

- चोलकर, पराग-विनोवा विचार दोहन, प्रकाशन-परमधाम प्रकाशन, पवनार वर्धा
- पत्रिका मैत्री

स्ववित्तपोषित महाविद्यालय एवं शैक्षिक मूल्य

✍ सुमित कुमार श्रीवास्तव

किसी भी राष्ट्र के विकास में उच्च शिक्षा का महत्वपूर्ण योगदान होता है। इसी से राष्ट्रोपयोगी मानवशक्ति का उत्पादन होता है। यद्यपि सरकार ने उच्च शिक्षा को अनुदान दिया है, परन्तु वह कभी पर्याप्त व समयानुकूल नहीं रहा, फलस्वरूप उच्च शिक्षा संस्थाओं द्वारा सदैव इसे बढ़ाने का आग्रह किया गया। भारत में उदारीकरण के आरम्भ से सरकार को इस क्षेत्र में अपनी भागीदारी हटाने तथा निजी क्षेत्र की भागीदारी बढ़ाने के लिये आधार प्रदान किया गया। स्ववित्त पोषण के पीछे आधारभूत संकल्पना यह है कि जो व्यक्ति शिक्षा ग्रहण करे वही उसका मूल्य चुकाये। 1992 में सर्वोच्च न्यायालय के न्यायमूर्ति श्री के. पुनैया ने कहा था - कोई भी समाज जो गरीबी और गैर बराबरी से जूझ रहा हो वह विश्वविद्यालयों में हो रही फिजूलखर्ची के सब्सीडीकरण का समर्थन नहीं कर सकता इसलिए उच्च शिक्षा पर हो रहे वास्तविक खर्चे का बड़ा हिस्सा उनसे वसूला जाना चाहिए।

स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों की स्थिति

शिक्षा के क्षेत्र में स्ववित्त पोषण की अवधारणा लाने का श्रेय डॉ. टी. एम. आई. को है। अगर स्ववित्त पोषण को आत्म निर्भरता के रूप में क्रियान्वित किया जाता तो इसमें विकृति नहीं है। परन्तु जब स्ववित्त पोषण की आड़ में धन की उगाही की जाती है तो यह नैतिक, सामाजिक व आर्थिक रूप से छल करना है। सरकार दो धाराओं पर निजीकरण को समर्थन कर रही है एक तो वह मानती है कि निजी क्षेत्र दक्षता उत्पादकता तथा वैज्ञानिक प्रबन्ध का पर्याय है और दूसरा निजी क्षेत्र गुणवत्ता में सुधार करेगा गुणात्मकता में नहीं।

मनुष्य में मूल्यों के प्राप्ति हेतु शिक्षा की आवश्यकता होती है अत: व्यक्ति, समाज व राज्य का अपरिहार्य उत्तरदायित्व है कि वह सभी व्यक्तियों के लिए ईमानदारी व सुव्यवस्थित ढंग से शिक्षा की व्यवस्था करें। संविधान में भी अनुच्छेद 41 में सभी को शिक्षा उपलब्ध कराने का संकल्प उल्लिखित है देश में बढ़ती हुई जनसंख्या एवं अन्य नवीन क्षेत्रों के लिये जाने वाले व्यय को देखते हुए सरकार ने स्ववित्तपोषित संस्थाओं की स्थापना को खुली छूट दे दी है। इस व्यवस्था को 24 अप्रैल 2000 को अंबानी बिड़ला रिपोर्ट से विशेष बल मिला है। इस रिपोर्ट में भविष्य में विभिन्न स्तरों पर शिक्षा सम्बन्धी अनुमानित व्यय का चित्रण किया गया है और समस्या समाधान में स्ववित्त पोषित संस्थाओं के खोले जाने की संस्तुति की गई है, इसके बाद से ही शिक्षा के लिये भी स्ववित्त पोषित संस्थाओं की भरमार हो गई है।

शासन स्तर पर प्रत्येक शिक्षण शिक्षा संस्था पोषित में सीटों का बँटवारा व शुल्क निर्धारित किया गया है। जिसमें कुल सीटों का 50 प्रतिशत सामान्य सीटें, 35 प्रतिशत सेल्फ सपोर्टिंग सीटें एवं शेष 15 प्रतिशत एन. आर. आई./प्रबन्धक सीटें निर्धारित की गई है। सामान्य सीटों के लिये शुल्क सबसे कम सेल्फ सपोर्टिंग सीटों के लिये सामान्य से लगभग साढ़े तीन गुना एवं एन. आर. आई./प्रबन्धक सीटों के लिये सामान्य से लगभग पाँच गुना शुल्क निर्धारित किया गया है।

✍ प्रवक्ता, शिक्षा शास्त्र, उपरदहा डिग्री कालेज, बरौत, हण्डिया, इलाहाबाद

यद्यपि सन् 2003 में उ. प्र. सरकार ने स्ववित्त संस्थाओं द्वारा लिये जाने वाले शुल्कों में कुछ कमी अवश्य की है। परन्तु इस कमी के विरोध में इन संस्थाओं ने माननीय उच्च न्यायालय में अपील करके भारी भरकम फीस लेने को उचित ठहराया है। लेकिन माननीय उच्च न्यायालय ने लाभ के लिए भारी भरकम शुल्क न लेने का भी निर्देश दिया था। परन्तु ये संस्थाएं निर्धारित शुल्क के अतिरिक्त धनराशि लेते हैं। जिसके लिये रसीद नहीं दी जाती। यह शुल्क लाभ कमाने के लिये ही लिया जाता है। कहा यह जाता है कि यह शुल्क संस्थाओं के अध्यापकों व कर्मचारियों के मान्य वेतन हेतु लिया जाता है। परन्तु सर्वेक्षण के परिणाम दर्शाते हैं कि 70 प्रतिशत शिक्षकों को 2000-3000 के बीच और 30 प्रतिशत शिक्षकों को 3000-5000 के बीच ही वेतन दिया जाता है। यह वेतन सिर्फ 10 माह तक ही सीमित है। इस प्रकार से यह संस्थायें बहुत अधिक लाभ अर्जन कर रही हैं। सरकार भी स्ववित्त पोषित संस्थाओं की स्थापना को बढ़ावा देकर अग्नि में घी की आहुति का कार्य कर रही हैं। जिससे प्रशिक्षित बेरोजगार छात्रों की संख्या देश में बेरोजगारी का ग्राफ ऊँचा कर रही है। एक ओर एन. सी. टी. ई. एवं नैक शिक्षा में गुणवत्ता के मानक स्थापित करने में प्रयासरत है, दूसरी ओर ये स्ववित्त पोषित संस्थायें गुणवत्ता के मानक की धज्जियां उड़ाने से नहीं चूकती हैं। इन संस्थाओं में अध्यापकों का चयन एवं अनुमोदन तो पी-एच. डी. धारकों या नेट पास लोगों का होता है और वास्तव में अध्यापन का कार्य कम योग्यता वाले व्यक्तियों द्वारा किया जाता है।

अतः राष्ट्रीय शैक्षिक लक्ष्य की प्राप्ति एवं शिक्षित बेरोजगारी कम करने के लिए यह आवश्यक है कि स्ववित्त पोषित संस्थायें एन. सी. टी. ई. एवं नैक के मानक के अनुरूप एवं आवश्यकता के अनुरूप संचालित की जायें लाभ के दृष्टिकोण से नहीं।

शिक्षा में मूल्य

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है सामाजिक जीवन को सुचारू रूप से चलाने के लिये कुछ प्रमुख मूल्यों एवं सिद्धान्तों की आवश्यकता होती है। इन्हीं मूल्यों के प्रभाव के कारण मानव समाज पशु समाज से भिन्न होता है, समाज तथा उसका बड़ा स्वरूप राष्ट्र की संरचना विशेषकर मूल्यों के आधार पर निर्भर करती है। जो समाज अपने सदस्यों के मूल्यों के संवर्धन पर ध्यान नहीं देते, थोड़े समय में वही समाज पतनोन्मुख हो जाते हैं।

हरबर्ट जैसे शिक्षाविद् ने भी इस बात का समर्थन किया है कि मूल्य शिक्षा से तात्पर्य मनुष्य में आदम जातीय प्रवृत्तियों का परिमार्जन और उदात्त विचारों को प्रगट करना अर्थात् मनुष्य कुछ जैविक मूल प्रवृत्तियों को लेकर पैदा होता है शिक्षा के माध्यम से उन मूल प्रवृत्तियों में परिमार्जन और परिवर्तन किया जाता है जो व्यक्ति तथा समाज के लिये हितकर होता है। विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग ने इस बात पर विशेष बल दिया है कि छात्र/छात्राओं के नैतिक आध्यात्मिक एवं सामाजिक मूल्यों के संबर्धन के लिए शैक्षणिक व्यवस्था में विशेष प्रावधान किया, इस सम्बन्ध में माध्यमिक शिक्षा आयोग 1952-53 एवं कोठारी आयोग 1964-66 ने भी विशेष जोर किया है। हमारे भारतीय शिक्षाशास्त्री रविन्द्र नाथ टैगोर, स्वामी विवेकानन्द, महात्मा गाँधी और अरविन्द आदि ने भी मूल्यों के विकास पर बल दिया है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) के अन्तर्गत मूल्यों की समस्या को नये सन्दर्भ में देखने का प्रयास हुआ है।

1. समाज के आवश्यक जीवन मूल्यों के

कारण को ध्यान रखने से यह बात स्पष्ट होती है कि पाठ्यचर्या में इस प्रकार का प्रावधान करें कि शिक्षा सामाजिक और नैतिक मूल्यों के विकास का साधन बन सकें।

2. राष्ट्रीय शिक्षा नीति के अनुसार हमारी सांस्कृतिक विभिन्नता युक्त समाज में यह आवश्यक है कि शिक्षा सार्वभौमिक और शाश्वत मूल्यों को विकसित करे। इस प्रकार की शिक्षा से धार्मिक मदान्धता, हिंसा, अंधविश्वास, भाग्यवाद आदि का उन्मूलन होगा।

3. इसके अलावा शिक्षा का कार्य है कि हमारी सांस्कृतिक विरासत राष्ट्रीय तथा सार्वभौमिक परिप्रेक्ष्य को ध्यान में रखे।

4. शिक्षा उन शाश्वत मूल्यों के निर्माण में सहायक हो जो व्यक्ति के लिये चारित्रिक आधार तो होती है साथ ही सामाजिक, सांस्कृतिक व अन्य राष्ट्रीय मूल्यों को समाहित करें ताकि व्यक्ति के व्यवहार और निर्णय में उसकी उपादेयता दिखाई दे जिसके सन्दर्भ में व्यक्ति अपने निर्णयों व्यवहारों को वैयक्तिक व राष्ट्रीय तथा सामाजिक हितों के मध्य कर सके वे मूल्य हैं जो व्यक्ति को प्रतिबद्धता व समर्पण दे।

5. राष्ट्रीय समाकलन और एकता की प्राप्ति में शिक्षा मध्यस्थ व उपकेन्द्र की भूमिका का निर्वाह करे और छात्रों को सामाजिक परिवर्तन के अभिकर्ता के रूप में सहायक हो।

यह हमारा दुर्भाग्य है कि हम पाश्चात्य भौतिकवाद का अन्धानुकरण कर रहे हैं। जिनमें न तो कोई मानक है और न ही जीवन के प्रति वह दृष्टिकोण ही है, जिससे सम्पूर्ण मानवता के साथ-साथ स्वयं को कल्याण व शान्ति मिल सके आज हमारी स्थिति यह है कि हम अपनी सांस्कृतिक विरासत और उसकी आध्यात्मिक महत्ता को भूलते जा रहे हैं इसलिये यह आवश्यक है कि हम नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों का न केवल संरक्षण करें बल्कि विश्व में उनका प्रचार-प्रसार करें।

प्राचीन काल में मूल्य शिक्षा

प्राचीन काल में शिक्षा गुरूकुलों में दी जाती थी। गुरू के सानिध्य में रहकर शिष्य हर प्रकार के आवश्यक ज्ञान मूल्य परक रूप से प्राप्त करता था वह गुरूकुलों में पूर्ण रूपेण उपस्थित हो कर सामान्य शिक्षा के साथ-साथ वेद आध्यात्म, चिकित्सा शास्त्र इत्यादि का तो ज्ञान प्राप्त करता ही था साथ ही साथ शिक्षारण के द्वारा समाज से सानिध्य का कार्य छात्रों द्वारा कराया जाता था।

वैदिक काल में ईश्वर भक्ति तथा धार्मिकता की भावना, चरित्र निर्माण, व्यक्तित्व का विकास नागरिक तथा सामाजिक कर्त्तव्यों का पालन सामाजिक कुशलता की प्रगति तथा राष्ट्रीय संस्कृति का संरक्षण और प्रचार-प्रसार एवं आदर्श ही शिक्षा का मुख्य उद्देश्य था वैदिक काल में गुरूकुल प्रणाली थी। शिष्य अपने गुरूकुल या किसी आश्रम में रहकर विद्यार्जन करता था। इस काल में विद्यालय भवन के अभाव में खुले मौसम में अध्ययन एवं अध्यापन का कार्य वृक्षों के नीचे होता था। इस काल में प्राचार्यों के प्रति शिष्यों के उनके कर्त्तव्य थे। वे गुरू का स्थान राजा, माता-पिता एवं देवता से उच्च समझते थे और उनका हृदय से सम्मान करते थे तथा आचार्य अपने शिष्यों को पुत्र से अधिक स्नेह देता था।

बौद्ध काल में मूल्य शिक्षा प्रणाली में संघ के शिष्यों को ही धार्मिक और सांसारिक शिक्षा दी जाती थी। आचार्य के अतिरिक्त अन्य कोई व्यक्ति शिक्षा नहीं देते थे। इस काल में प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था थी। उच्च शिक्षा अध्ययन के विभिन्न विषयों और विशेषज्ञता का प्रबन्ध था। छात्र व्याकरण धर्म ज्योतिष, दर्शन औषधि विज्ञान आदि का अध्ययन करके इनमें से किसी में विशेष योग्यता प्राप्त कर सकते थे। उच्च शिक्षा के केन्द्रों में नालन्दा, बल्लभी, विक्रमशिला, जगदल, अदित्तपुरी, मिथिला और नादिया विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इस काल के विषयों में बौद्ध धर्म, हिन्दू धर्म, जैन धर्म, दर्शन शास्त्र, अध्यात्म विद्या, तर्कशास्त्र, संस्कृतपाली, नक्षतफल गणन विद्या, खगोल विद्या, औषधि विज्ञान, न्याय शास्त्र राज्य व्यवस्था और प्रशासन आदि थी। इन दोनों कालों में गुरू तथा शिष्य के सम्बन्ध में अत्याधिक निकटस्थता थी, जिसके परिणामस्वरूप गुरू शिष्य तथा मूल्य शिक्षा में धनात्मक सम्बन्ध था।

मध्यकाल में मूल्य शिक्षा

इस काल में विद्यालयों की स्थापना की गयी जिसमें छात्र दिन के 6 से 8 घण्टे गुरूओं के साथ रहकर ज्ञानार्जन करता था। इस काल से ही मूल्यों में गिरावट आयी। मध्य काल में शिक्षा की व्यवस्था मकतबों और मदरसों में की गयी थी। मकतब प्राथमिक शिक्षा और मदरसे उच्च शिक्षा के केन्द्र थे। इस काल में प्राथमिक शिक्षा मकतबों में दी जाती थी। मकतब की शिक्षा समाप्त करने के बाद छात्र मदरसों में प्रवेश करते थे। मदरसों में दी जाने वाली उच्च शिक्षा का अध्ययन काल 12 वर्ष का था। शिक्षा का पाठ्यक्रम अतिविस्तृत था और दो भागों में बंटा हुआ था। अतः इस काल में गुरू तथा शिष्य के सम्बन्धों में थोड़ी सी दूरी बढ़ी जिसके परिणामस्वरूप मूल्यों में गिरावट आयी।

आधुनिक काल में मूल्य शिक्षा

अंग्रेजों के शासनकाल में मूल्यों में गिरावट आयी क्योंकि अंग्रेजों का उद्देश्य भारतीय छात्रों को ज्ञान से विमुक्त करना ही नहीं था। बल्कि अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करना था। इस काल के अन्तर्गत शिक्षा विद्यालयों में दी जाने लगी थी। छात्र तथा गुरू के सम्बन्धों में दूरी बढ़ गयी। इस काल में प्राथमिक माध्यमिक तथा उच्च शिक्षा के लिए क्रमशः प्राथमिक, इण्टरमीडिएट कालेज तथा विश्वविद्यालयों की स्थापना की गयी। इस काल में गुरू तथा शिष्य के बीच दूरी बढ़ी। गुरू का एक व्यवसाय बना। गुरू समाज सेवा छोड़कर धनार्जन करने की ओर अग्रसर हुआ वह अब शिष्यों को शिष्य न समझकर एक ग्राहक समझने लगा।

स्वतन्त्रता के बाद देश की शिक्षा व्यवस्था में धीरे-धीरे परिवर्तन आरम्भ हुआ। हमारे शिक्षण संस्थान समाज व घर की स्थिति, रोजगार व व्यवसाय के नये स्वरूप छात्रों के मूल्यों को प्रभावित किये। बालक अध्ययन के साथ-साथ घर के कामकाज व सामाजिक कार्यों में समय देने लगे। राजनैतिक साझेदारियों का विशेष सहयोग लिया जाने लगा वस्तुतः इसी कारण विश्वविद्यालयों के छात्रों के मूल्यों में गिरावट आयी।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में मूल्यों की आवश्यकता

बालकों में मूल्यों का विकास परिवार और समुदाय की क्रियाओं में भाग लेने से स्वाभाविक रूप से होता है परन्तु इसमें दो मत नहीं है कि आज हमारे देश में परिवार और समुदाय का सामाजिक एवं सांस्कृतिक पर्यावरण मूल्यों के विकास के लिए उपयुक्त नहीं है। यहाँ तो बच्चे मूल्यों के स्थान पर गैर मूल्यों की शिक्षा प्राप्त करते हैं, प्रेम के स्थान पर द्वेष की शिक्षा प्राप्त करते हैं

और सहयोग के स्थान पर असहयोग की। आप ही सोचिए कि स्वार्थ प्रधान व्यक्तियों के बीच बच्चे परमार्थ की शिक्षा कैसे प्राप्त कर सकते हैं। पर शिक्षा की दृष्टि से जो कार्य परिवार और समुदाय नहीं कर पाते वही कार्य तो विद्यालयों को करना होता है। आज विद्यालयों को मूल्य शिक्षा का उत्तरदायित्व भी संभालना होगा और इस कार्य में उन्हें परिवार तथा समुदाय का सहयोग लेना होगा, उन्हें अपने यथा उत्तरदायित्व के प्रति सचेत करना होगा। जहाँ तक समाज के विश्वासों, आदर्शों सिद्धान्तों और व्यवहार मानदण्डों की बात है, इनकी चर्चा परिवारों में भी होती है और समुदाय में भी बच्चे भी इनसे परिचित हो जाते हैं। परन्तु विडम्बना तो यह है कि ये सब केवल सिद्धान्तों तक सीमित रहते हैं। हमारे व्यवहार को प्रभावित नहीं करते। कौन नहीं जानता कि सत्य बोलना चाहिए। प्राणि मात्र से प्रेम करना चाहिए और दूसरों की सेवा करनी चाहिए कौन नहीं जानता कि दीनों पर दया करनी चाहिए और निर्धनों को दान देना चाहिए पर इन सब बातों को महत्व कौन दे रहा है। आज बहुत कम लोग ऐसे हैं। जो इस ओर इसी प्रकार के अन्य विश्वास आदर्श सिद्धान्त और व्यवहार मानदण्डों को महत्व दे रहे हैं, उन्हें अपने भावात्मक पक्ष में जोड़े हुए हैं और इनके आधार पर व्यवहार कर रहे हैं। तब आप ही बताइये कि ऐसे पर्यावरण में बच्चों में मूल्यों का विकास कैसे हो सकता है।

थोड़ा और विचार कीजिए। हमारे समाज में बच्चे-बच्चे की जुबान पर सत्य, अहिंसा और ब्रम्हचर्य विराजमान है। प्रेम, दया, दान, सहयोग और सेवा इन सबसे भी हम परिचित हैं कर्म का सिद्धान्त तो हमारी अपनी थाती है। पर आप ही बतायें कितने लोग इन्हें अपने जीवन में उतारते हैं। आज हमारे देश में लोकतंत्र है। विधायक, सांसद और मंत्री सभी गोपनीयता एवं राष्ट्रीयता की कसम खाते हैं। आप ही बतायें इन कसमों पर कितने लोग अमल करते हैं। जज होने से पहले व्यक्ति न्याय करने की कसम खाते हैं पर कितने जज न्याय करते हैं। इतना ही नहीं अपितु जनसेवा की कसम खाने वाले डाक्टर मरीजों के जीवन से खिलवाड़ करते हैं किसी भी विभाग में झाँककर देखिये तो काम कम और रिश्वत अधिक दिखाई देगी। सब एक दूसरे का शोषण करने पर उतारू हैं। आखिर यह सब क्यों हो रहा है। इसका एक ही उत्तर है - मूल्यों का अभाव तब मूल्य शिक्षा की व्यवस्था होनी ही चाहिए।

यदि थोड़ा और बारीकी से देखें तो पता चलेगा कि मूल्यों के अभाव में भाषा अर्थहीन हो गयी है, व्यवहार अनिश्चित हो गया है, लोगों का एक दूसरे पर से विश्वास उठ गया है, सब एक दूसरे को शंका की दृष्टि से देख रहे हैं, समाज में अराजकता का नंगा नृत्य हो रहा है और मनुष्य तनावपूर्ण जीवन जी रहा है। हमें लगता है कि यदि हम समय रहते नहीं चेते तो वह दिन नहीं जब हम पुनः बर्बरता के युग में प्रवेश कर जायेंगे। यदि हम मानव सभ्यता और संस्कृति की सुरक्षा चाहते हैं तो हमें मूल्य शिक्षा पर बल देना होगा।

इस युग में हमारे देश सहित अन्य देशों में जितने भी शिक्षा आयोग और समितियों का गठन हुआ है, सभी ने किसी न किसी रूप में मूल्य शिक्षा की आवश्यकता पर बल दिया है - स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद हमारे देश में शिक्षा को समग्र रूप से देखने और उसमें सुधार हेतु सुझाव देने के लिए कोठारी आयोग (1964-66) का गठन किया गया। इस आयोग के प्रतिवेदन में मूल्य शिक्षा को पाठ्यक्रम का अभिन्न अंग बनाने की बात कही गई है। नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) में भी इस बात की चिन्ता व्यक्त की गयी है कि विद्यालय बच्चों में उचित मूल्यों का निर्माण करने में अक्षम

हैं और इस बात पर बल दिया गया है कि विद्यालयों को अपने इस उत्तरदायित्व को पूरा करना चाहिए। इस बीच हमारे देश में नहीं अपितु अन्य देशों में भी मूल्य शिक्षा के सन्दर्भ में खूब विचार विमर्श हुआ है और आज भी हो रहा है। इन सभी का एक ही निर्णय है और वह यह कि आज मूल्य शिक्षा की आवश्यकता है और इस दिशा में विद्यालय को विशेष भूमिका निभानी चाहिए।

स्ववित्तपोषी शिक्षण संस्थाओं की स्थापना में आवश्यक सुझाव

1. इन महाविद्यालयों को एन. सी. टी. ई. द्वारा निर्धारित मानकों को पूरा करने के उपरान्त ही मान्यता दी जाये।
2. एक प्रशिक्षण महाविद्यालयों के प्रबन्ध तंत्र का दृष्टिकोण शिक्षकों के प्रति सहानुभूति एवं सकारात्मक होना चाहिए।
3. शिक्षकों की नियुक्ति एवं छात्रों का प्रवेश योग्यता के आधार पर हो।
4. शिक्षकों की नियुक्ति स्थायी हो, जिससे वे मानसिक द्वन्द्व के शिकार न हों।
5. इन महाविद्यालयों में पुस्तकालय शिक्षण तकनीकी प्रयोगशाला और मनोविज्ञान प्रयोगशाला की उचित व्यवस्था हो।
6. प्रशिक्षण कार्य दिवसों में छात्रों की उपस्थिति अनिवार्य हो।
7. सरकार इन महाविद्यालयों के प्रति उचित ध्यान दे एवं स्थायी शिक्षा निधि का निर्माण व क्रियान्वयन करें।
8. इन महाविद्यालयों के कार्यों का मूल्यांकन करने के लिए निरीक्षण दल का गठन किया जाये। जो महाविद्यालय मानकों के अनुरूप कार्य नहीं करें। उनकी मान्यता समाप्त कर दी जाये।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. रमन बिहारी लाल : शिक्षा के दार्शनिक और समाजशास्त्रीय सिद्धान्त।
2. प्रो.-रामसकल पाण्डेय : मूल्य शिक्षा के परिप्रेक्ष्य।
3. जान डब्लू बेस्ट : रिसर्च इन एजुकेशन न्यू देलही।
4. एस. पी. गुप्ता : भारतीय शिक्षा का इतिहास विकास एवं समस्यायें।
5. जान डी. वी. : थीयरी आफ मोरल लाइफ।

उच्च शिक्षा का निजीकरण

✍ डॉ. कुसुमलता 'मधू'

उच्च शिक्षा में निजी क्षेत्र का योगदान स्ववित्तपोषित संस्थानों के नाम पर बहुत पहले से रहा है लेकिन वर्तमान में तेजी से बढ़ा ही नहीं है, बल्कि इसके कारण अनेक जटिल समस्याओं से समाज को जूझना पड़ रहा है। नगर पालिका या जिला परिषद के प्राथमिक विद्यालयों में मुफ्त शिक्षा और मिड डे मील भी है, दूसरी ओर तीन सौ रूपये से एक हजार मासिक भुगतान वाले निजी क्षेत्र के अंग्रेजी स्कूल। इतना बड़ा अन्तर जहाँ प्राइमरी स्तर पर है तो उच्च शिक्षा के क्षेत्र में क्या स्थिति होगी यह हमारे देश की गंभीर समस्या है जिस पर हमें विचार करना होगा।

उच्च शिक्षा का निजीकरण

उच्च शिक्षा के मापदण्ड किसी राष्ट्र के विकास का पैमाना है। इस सम्बन्ध में भारत का प्राचीन इतिहास गौरवशाली रहा है। आध्यात्मिक क्षेत्र, वैज्ञानिक खोज, संस्कृति के विकास में भारत की उच्च शिक्षा प्रणालियाँ दूर-दूर तक प्रसिद्ध रही हैं। भारत को विश्व गुरू कहा गया है। गुरूकुल पद्धति में त्यागी गुरू उच्च शिक्षा देते थे।

तक्षशिला एवं नालन्दा वैदिक तथा बौद्ध धर्म की शिक्षा के प्रमुख केन्द्र रहे हैं। वल्लभी (गुजरात) विक्रमशिला (बिहार में) उच्च शिक्षा के क्षेत्र की अग्रणी संस्थाएँ मानी जाती थीं - दक्षिणी भारत में कांची का 14वीं सदी तक नाम था। मध्यकाल में मुस्लिम बादशाहों ने मदरसा तालीम को महत्व दिया।

ब्रिटिश काल में कलकत्ता का मदरसा पहला आधुनिक कालेज बना था। संस्कृत कालेज बनारस हिन्दू कालेज कलकत्ता प्रसिद्ध रहे हैं।

इनका इतिहास बताता है कि - उच्च शिक्षा, आम लोगों के लिए नहीं थी। कुछ प्रतिभाशाली ही यह सुविधा पाते थे। दूसरी बात उच्च शिक्षा महंगी होती है। राजा, बादशाह धनी व्यक्ति इसकी पूर्ति करते रहे हैं।

उच्च शिक्षा के निजीकरण की समस्या वर्तमान भारत में विशेष चर्चा का विषय है। प्राचीन परम्परा के अनुसार, स्वदेशी शिक्षा नैतिकता प्रदान करती है इसके अभाव में वर्तमान में मूल्य घट रहे हैं। उच्च शिक्षा पर वैश्वीकरण का प्रभाव कई चुनौतियाँ खड़ी कर रहा है।

भारत में छात्र उच्च शिक्षा के लिए विदेश जाते रहे हैं। साधन सम्पन्न व्यक्ति ही महंगी शिक्षा का भार वहन कर अपने पुत्रों को भेजते रहे हैं लेकिन अब विदेशी विश्वविद्यालय, उनकी प्रबन्ध व्यवस्था यहाँ अपना स्थान बना रही है।

घटता सरकारी योगदान

आज उच्च शिक्षा के लिए राज्य सरकारें धनाभाव का तर्क देकर पीछे हट रही हैं। केन्द्र सरकार भी, विभिन्न शिक्षा आयोगों की संस्तुति के बाद भी शिक्षा बजट नहीं बढ़ा पा रही हैं। शिक्षा पर केन्द्रीय बजट में 3.8 प्रतिशत से अधिक आवंटन नहीं हो पाया है। उच्च शिक्षा के लिए दिल्ली के अथवा कुछ विशिष्ट विश्वविद्यालयों को विशेष सुविधा दी जा रही है। इस बार वित्तमंत्री ने बजट भाषण में कहा था - उच्च शिक्षा में शोधरत

✍ पुस्तकालयाध्यक्षा, बी. जी. एम., परास्नातक कालेज, दिबियापुर 206244 (उ. प्र.)

संस्थानों, उच्च स्तरीय निजी कॉलेज को भी विशेष अनुदान दिए जायेंगे लेकिन यह ऊँट के मुँह में जीरा वाली बात है। सरकार उच्च शिक्षा के बढ़ते भार को उठाने में असमर्थ हो रही है।

उच्च शिक्षा और महंगी होगी

यद्यपि पूनिया कमेटी ने सन् 1993 में स्पष्ट किया था कि राज्य को विश्वविद्यालय शिक्षा का आर्थिक भार वहन करते रहना चाहिए - लेकिन केन्द्र सरकार भी उच्च शिक्षा के निजीकरण की वकालत करने लगी है। नॉलेज कमीशन की सिफारिशों पर सरकार गंभीरता से विचार कर रही है। उच्च शिक्षा की चुनौतियों के मद्देनजर गुणवत्तापूर्ण शिक्षा मुहैया कराने की ओर बढ़ रही सरकार फीस के मौजूदा ढांचे में बदलाव पर विचार कर रही है। आनलाइन पढ़ाई की सुविधा के साथ ही डिजिटल कैंपस बनाने पर खास जोर दिया जा रहा है। 11वीं योजना में शिक्षा के लिए जरूरी कदमों को उठाने के क्रम में सरकार का ध्यान केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड (केब) की उस सिफारिश पर भी गया है, जिसमें उच्च शिक्षा में होने वाले कुल खर्च का 20 प्रतिशत छात्रों से वसूल किए जाने की बात कही गयी थी। कई राज्यों में विश्वविद्यालयों व कालेजों में तो ट्यूशन फीस में लम्बे अर्से से कोई बदलाव ही नहीं किया गया है। लिहाजा अब 2008-09 तक केन्द्रीय व सभी राज्यों के विश्वविद्यालयों और कॉलेजों के फीस ढांचे में बदलाव की जरूरत महसूस की गई है। योजना आयोग की मंशा इसके लिए सभी राज्यों के शिक्षा मंत्रियों की अध्यक्षता में एक सलाहकार समिति बनाने की है। आयोग का सुझाव है कि इसके लिए केन्द्र सरकार को हर राज्य की सलाहकार समिति के लिए एक मुश्त 25 लाख रूपये का भुगतान कर देना चाहिए। अभी तक उच्च शिक्षा में होने वाले कुल खर्च का लगभग 15 प्रतिशत छात्रों से उनकी फीस के रूप में वसूला जाता है। देश के सभी 367 विश्वविद्यालयों और 18 हजार कॉलेजों को सूचना एवं संचार तकनीक (आई.सी.टी.) से जोड़े जाने का प्रस्ताव है। उच्च शिक्षण संस्थाओं में वर्चुअल क्लासरूम, टेली-वीडियो कांफ्रेसिंग, डिजिटल लाइब्रेरी जैसी सुविधाएं उपलब्ध कराने की बात है।

उच्च शिक्षा : निजीकरण समस्यायें

इस समय देश में क्रान्ति का माहौल है। सरकार का वेतन आयोग-निजी क्षेत्र में दिए जाने वाले सैलरी-पैकेज के सामने वेतन निर्धारण में बौनी सिद्ध हो रही है। जबकि बढ़ती मंहगाई, सामाजिक, आर्थिक ढाँचे को विकास की ओर जाते हुए झकझोर रही है।

धनाढ्य वर्ग, किसी भी सीमा तक व्यय कर अपने बच्चों को उच्च शिक्षा दिला रहे हैं। प्रतिभाशाली निर्धन छात्र उच्च शिक्षा प्राप्त नहीं कर पा रहे हैं। शिक्षा व्यय बढ़ रहा है, शिक्षा का स्तर गिर रहा है। देश में 1500 विश्वविद्यालय स्थापित करने की नॉलेज कमीशन की सिफारिश के साथ प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह की चिंता सार्वजनिक हुई कि उच्च शिक्षा में निजी भागीदारी बढ़नी चाहिए। इसके लिए बाकायदा मानव संसाधन मंत्रालय को विधेयक तैयार करने का सुझाव दिया है। अगर वैश्विक परिप्रेक्ष्य में देखें, तो स्तर के लिहाज से हमारे विश्वविद्यालय अभी काफी पीछे हैं। मानक, गुणवत्ता और मूल्यों के अभाव पर नॉलेज कमीशन ने नॉन-प्राफिट प्लेयर्स की बात अपनी अनुशंसा में जोड़ी है। उच्च शिक्षा में प्रोजेक्ट, रिसर्च, अध्ययन केन्द्र और प्रयोगों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है, जो सिर्फ सरकार की मदद से संभव नहीं होगी। उच्च शिक्षा में निजी क्षेत्र की वर्तमान 60 फीसदी हिस्सेदारी से आगे की बात कर रहा नॉलेज कमीशन उन 70 फीसदी विद्यार्थियों

की बात कर रहा है, जिनके लिए अभी तक प्राइवेट प्लेयर्स आगे नहीं आए हैं। अभियांत्रिकी, चिकित्सा और प्रबन्धन के क्षेत्र में ही निजी भागीदारी का बड़ा हिस्सा समाया हुआ है।

विश्वविद्यालयों की संख्या बढ़ाने, नए विश्वविद्यालय खोलने के लिए सिंगल विंडो सिस्टम की अगर बात हो रही है, तो इसके पीछे विश्व का ऐसा मॉडल आँखों के सामने है, जहाँ निजी भागीदारों ने उदारता से विश्वविद्यालयों के साथ विभिन्न परियोजनाओं में जुड़कर अपने देश के चहुंमुखी विकास में योगदान दिया है। यह सब अपने देश में भी हो सकता है, पर इसके लिए शिक्षा का एक राष्ट्रव्यापी मॉडल विकसित करना होगा। शिक्षा अपने देश में समवर्ती सूची में है तो राज्य सरकारों को भी अपने यहाँ भागीदारी के लचीले नियमों को प्रश्रय देने की जरूरत है। नए विश्वविद्यालय खोलने के लिए अनुमति देने से पूर्व यह भी देखना होगा कि जिन विषयों की पढ़ाई वहाँ होनी है, उनके लिए पर्याप्त और तय संख्या के अनुरूप योग्य फैकल्टी, भवन, संसाधन, पाठ्यक्रम का स्तर और अन्य मानकों का अनुपालन हो रहा है या नहीं ? यह नहीं कि कुछ राज्यों की तरह एक या दो कमरों में विश्वविद्यालय चलाए जाने लगें। हमारे यहाँ कई विश्वविद्यालयों के पास अथाह भूमि और धन है, पर उनका समुचित उपयोग नहीं हो रहा। अपनी अनुशंसा में नॉलेज कमीशन ने इस ओर भी इशारा किया है। कमीशन ने विश्वविद्यालय की एकेडमिक जरूरतों के अनुसार अपनी परती पड़ी भूमि का उपयोग अपने हित में करने की बात कही है। दूसरा रास्ता यह भी है कि सरकार जमीन दे और निजी क्षेत्र धन। इस भागीदारी से शिक्षण और शोध की दिशा में भारत प्रगति की नई ऊँचाईयाँ छू सकता है। इस पूरे प्रकरण का मूल तथ्य यह है कि निजी भागीदारी में स्वहित का जो भाव चला आता है, वहाँ सख्त स्क्रीनिंग की जरूरत है, वरना छात्रों का फायदा हो न हो, वित्तपोषकों के फायदे की हजार राहें निकल आयेंगी, यह चिन्ताजनक और चिंतनीय विषय है।

उच्च शिक्षा पर राजनीति हावी है। पिछड़े वर्ग को उच्च शिक्षा प्रवेश में आरक्षण लागू किया जा रहा है। इससे कई प्रश्न उठ खड़े हुए हैं।

सच्चाई यह है कि भारत में शिक्षा का निजीकरण प्राइमरी से उच्च शिक्षा व्यवस्था तक 'प्रतिभा' को प्रभावित कर रहा है।

शिक्षा के निजीकरण से इन्फास्ट्रक्चर को बड़ी दुकान की तरह सजाया जा रहा है। बड़े शहरों में ही नहीं, कस्बों तक में प्रवेश परीक्षा की तैयारी के नाम मोटी फीस ली जा रही है। समाज का उच्च एवं मध्य वर्ग आंख बंद कर पैसा फेंक रहा है - फिर भी प्रवेश कुछ ही को मिल पाता है। शेष निजी संस्थानों में सीधी भर्ती की बोली लगती हैं। कुल मिलाकर इस व्यवस्था में शिक्षा जितनी मंहगी है - प्रतिफल उसके अनुरूप नहीं मिल पा रहा है।

सुझाव

हमें यह मानना होगा कि शिक्षा पर व्यय अनुत्पादक व्यय नहीं है। भले ही उच्च शिक्षा से तराशी प्रतिभा का लाभ देर से और पूरे राष्ट्र को मिलता है।

उच्च शिक्षा में सरकार और निजी क्षेत्र दोनों के दायित्वों के लिए एक समन्वित नीति (कॉर्डिनेटर पॉलिसी) बननी चाहिए।

सरकार को उच्च शिक्षा का स्तर तय करना होगा। उसकी अर्थपूर्ति का दायित्व केन्द्र सरकार, राज्य सरकार तथा निजी क्षेत्र में बांटना होगा। आरक्षण नीति समाज के हित में लम्बे समय के लिए कभी सफल नहीं होगी। सरकार का यह

भी दायित्व है कि प्राइमरी शिक्षा से ऊपर तक ऐसी नीति बनाए कि देश की 'प्रतिभा' का धनाभाव में गला न घुट जाए।

संदर्भ -

1. जागरण वार्षिकी 2005 पृ. 401
2. University News, 42 (46) Ed. Kant. SP. 15.2.2004 & 10
3. भारत वार्षिकी 2007 पृ. 264
4. ज्ञान आयोग सिफारिश
5. अंसारी, महताब आलम, लेख डिजिटल लाइब्रेरी, योजना पाक्षिक, मई 2002
6. वही, पृष्ठ 141
7. जागरण वार्षिकी, 2006, पृ. 358

हमारी पृथ्वी ब्रह्माण्ड के सात प्रमुख ग्रहों में सबसे सुन्दर एवं आकर्षक है, पृथ्वी की इस सुन्दरता एवं आकर्षण के पीछे इस पर विद्यमान जीवन का चक्र है। पृथ्वी में जीवन की विद्यता के पीछे उसमें व्याप्त पर्यावरण है। अर्थात् पृथ्वी पर पर्यावरण का होना ही जीवन का आधार माना जाता है क्योंकि जीवन रूपी सुन्दर सृष्टि की रचना पंच तत्व पृथ्वी, जल, वायु, आकाश और अग्नि से हुई है। इन्ही पंच तत्वों से सम्पूर्ण जगत की सृष्टि चल रही है और ये संसार को जीवन व शक्ति प्रदान करते हैं। इन्हीं पंच तत्वों से मिलकर पर्यावरण की रचना हुई है। अर्थात् पर्यावरण हमारी सम्पूर्ण मानवता के जीवन का आधार स्तम्भ है। यह सूर्य की किरणें, अग्नि, वायु और विविधा पेड़, पौधों, वृक्ष, वनस्पतियाँ एवं सुन्दर पुष्प जहाँ प्रकृति के अनुपम सौन्दर्य के अंग हैं वहीं ये जीने योग्य स्वस्थ्य वातावरण उपलब्ध कराने के साथ-साथ मनुष्य को आवश्यक मूलभूत जरूरतों रोटी, कपड़ा, मकान, कच्चा माल आदि भी उपलब्ध कराता है। वर्तमान की वैज्ञानिक प्रगति, आनुवंशिकी उन्नति उद्योग, कृषि तथा प्रौद्योगिकी विकास आदि की उपलब्धता प्रकृति से ही सम्भव हो पायी है, आज जब हम इक्कीसवीं सदी में प्रवेश कर गये हैं और आगे बढ़ने की होड़ में विगत एक शताब्दी में औद्योगिक विकास के उद्देश्य से मानव ने प्राकृतिक संसाधनों का बड़ी निर्ममता, क्रूरता तथा अविवेकपूर्ण तरीके से इसका शोषण किया है। पारिस्थितिक संसाधनों के इस अंधाधुंध दोहन तथा शोषण का नतीजा यह हुआ कि हमारा प्राकृतिक शृंखलाओं का यह ढाँचा ही असंतुलित होता जा रहा है। पर्यावरण के इस असंतुलन के पीछे तीन तत्वों की प्रमुखता पायी जाती है। उपभोक्तावादी संस्कृति, जनसंख्या विस्फोट तथा निर्वनीकरण। उपभोक्तावादी संस्कृति से ग्रसित मानव प्राकृतिक संसाधनों का सुपर उपभोक्ता हो गया है। अपनी धुन में रमा व्यक्ति यह सब भूल गया है कि प्रकृति की भी अपनी सीमायें एवमं क्षमताएँ हुआ करती हैं परन्तु मानव ने इस चिन्ता से दूर रहकर प्रकृति का जरूरत से ज्यादा दोहन किया जिसके परिणामस्वरूप सूखा, बाढ़, महामारी, भूकंप, भूस्खलन, ओजोन परत का नष्ट होना, ग्लोबल वार्मिंग, अकाल जैसी अनगिनत प्राकृतिक आपदाएं नित्य विकराल रूप धारण करती जा रही हैं। आज पर्यावरण की समस्या व इसके संरक्षण, प्रबन्धन की दिशा में चिंतन व सार्वभौमिक सोच का होना लाजिमी हो गया है। कृपया उपरोक्त विषयों पर अपने सामाजिक ज्ञान, अनुभव की सीमाओं को ध्यान में रखते हुये शोधपूर्ण, तथ्यपरक एवं वैज्ञानिक तर्कों से युक्त शोध आलेख/लेख प्रेषित कर रचनात्मक सहयोग देने की कृपा करें।

बाल-श्रम : समस्या एवं समाधान

✍ रूचि पाण्डेय

बाल-श्रम एक विकट समस्या

बालक किसी देश या समाज की महत्वपूर्ण सम्पत्ति होती है। वे उगने वाली पीढ़ी के सदस्य हैं, अतः उनकी समुचित सुरक्षा, लालन-पालन, शिक्षा-दीक्षा व पर्याप्त विकास का उत्तरदायित्व भी राष्ट्र या समुदाय का होता है, क्योंकि कालान्तर में यही बच्चे देश के निर्माण व राष्ट्र के उत्थान के आधार स्तम्भ होते हैं। भारत में बाल कल्याण को प्रमुखता प्रदान करने के लिए देश के प्रथम प्रधानमंत्री पं. जवाहर लाल नेहरू के जन्म दिन '14 नवम्बर' को प्रति वर्ष ''बाल दिवस'' के रूप में मनाया जाता है। जहाँ एक बालक कल्याण से सम्बन्धित अनेक विषयों पर विश्व जनमत बड़ी गम्भीरता से सोच रहा है। वहीं दूसरी ओर बाल श्रमिकों की समस्या भी तेजी से पनप रही है। विशेषकर विकासशील देशों में, जहाँ जनसंख्या तेजी से बढ़ रही है, वहीं यह समस्या भी तेजी से फैल रही है। चीन, द. एशिया, मध्य पूर्वी अफ्रीका तथा द. अमेरिका के देश इस समस्या से ग्रसित हैं। आज विश्व में 25 करोड़ के लगभग बाल श्रमिक हैं।

बाल श्रम समस्या के दुष्परिणाम

बच्चे हानिकारक प्रदूषित कारखानों में काम करते हैं, जिसका उनके स्वास्थ्य पर खतरनाक प्रभाव पड़ता है। कुछ दुष्परिणाम निम्न हैं।

बाल मजदूरी गरीबी का दुष्चक्र बनाये रखती है इसका प्रमुख कारण यह है कि बाल श्रमिकों को न्यूनतम मजदूरी से भी कम मजदूरी मिलती है। देश में लगभग 5.5 से 10 करोड़ के बीच बाल श्रमिक हैं जिसमें बाल श्रमिकों के एक बहुत बड़े भाग को मजदूरी नहीं मिलती है। राष्ट्रीय श्रम संस्थान नोएडा के अनुसार 0-5 रू. तक की मजदूरी मिलती है। अतः औसत मजदूरी = 0 + 5/2 = 2.5 रू. होता है। इस प्रकार 5.5 करोड़ बाल मजदूर को प्रतिवर्ष 4950.80 करोड़ रू. मजदूरी मिलती है।

कल्पना किया जाये कि इन बच्चों के स्थान पर सिर्फ वयस्कों को ही रोजगार मिले तो लाजमी है कि उसी काम के लिए वयस्क मजदूर को कम से कम 40 रू. प्रति दिन मिलेगा जो बाल श्रमिक से कई गुना अधिक होगा। निहायत सस्ते या मुफ्त कामगारों के रूप में बच्चों के न उपलब्ध होने पर वयस्कों का मनोबल, मजदूरी का स्तर स्वतः ही बढ़ेगा इसका अर्थ यह हुआ कि 4950 करोड़ रू. की जगह वयस्कों को रोजगार मिलने पर 7900.00 करोड़ रू. प्रति वर्ष मालिकों की तिजोरी से निकलेगा जो समाज के निचले स्तर पर पहुँचकर, जहाँ गरीबी को समाप्त करने में सहायक होगा वहीं क्रम में क्षमता व रोजगार को बढ़ायेगा।

उपरोक्त उल्लेखों से स्पष्ट है कि बाल मजदूरी से बहुत बड़े पैमाने पर धन का केन्द्रीकरण होता है। जो कि गरीबी का सबसे बड़ा कारण है, यह गरीबी पुनः बाल श्रम को प्रोत्साहित करती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि बाल मजदूरी और गरीबी के बीच मुर्गी व अण्डे का संबंध है।

बाल मजदूरी देश में काले धन की समस्या को भी उत्पन्न करती है कोई भी व्यापारी या व्यवसायी किताबों में जो मजदूरी देने का व्यय

✍ शोध छात्रा, उ. प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

दिखाता है वह न्यूनतम मजदूरी से थोड़ा बहुत ज्यादा ही होता है क्योंकि इससे कम मजदूरी देना कानूनन अपराध है। किन्तु बच्चों को काम पर लगा कर नाम मात्र की मजदूरी देता है इस तरह बाकी पैसा काला धन बन जाता है। काले धन की अर्थव्यवस्था गरीबी के साथ ही उसके सामाजिक समस्याओं को भी प्रोत्साहित करती है।

- बाल मजदूरी वयस्क बेरोजगारी को बढ़ा रहा है क्योंकि एक बाल मजदूर एक वयस्क का रोजगार छीनता है। जहाँ 5.5 करोड़ बच्चे श्रमिक हैं वहीं लगभग 6, 7 करोड़ युवकों के हाथ में कोई काम नहीं। इनसे कई बेरोजगार युवा तो नशेड़ी हो रहे हैं या अपराधी।
- बाल मजदूरी समस्या के कारण ट्रेड यूनियन आन्दोलन कमजोर है एवं न्यूनतम मजदूरी लागू नहीं हो पा रही है।
- प्रति वर्ष 1 करोड़ बाल मजदूर वयस्क हो रहे हैं। ये बीमार निरक्षर एवं गुलाम, मानसिक रोग के शिकार होते हैं। अत: इसके सामाजिक न्याय की लड़ाई में बाधा उत्पन्न हो रही है।
- बाल मजदूर वयस्क मजदूरों के साथ काम करते-करते उनकी बुरी आदतों जैसे धूम्रपान, मद्यपान तथा जुआ आदि सीख जाते हैं, जिससे उनका शारीरिक तथा मानसिक विकास बाधित होता है।
- कम आयु में ही प्रतिकूल परिस्थितियों में कठोर श्रम से अधिकतर बाल श्रमिकों को कुपोषण व विभिन्न रोगों का शिकार होना पड़ता है।

मालिक लोग बाल श्रमिकों से अच्छा व्यवहार नहीं रखते हैं मालिकों द्वारा बाल श्रमिकों को डाट फटकार और गाली गलौच करना आम बात होती है। कभी-कभी पिटाई की बात भी सामने आती है। अमानवीय परिस्थितियों में बाल मजदूर शारीरिक व मानसिक शोषण के बाद भी कार्य करते हैं ऐसे में उनकी आत्मा मर जाती है। बालपन की चंचलता लुप्त हो जाती है। कुंठा तथा तनाव के कारण अनेक बाल मजदूर मानसिक रूप से विक्षिप्त हो जाते हैं। उनमें आत्मसम्मान तथा आत्मविश्वास की भावना विकसित नहीं हो पाती है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि बाल श्रम एक समस्या के रूप में, केवल बच्चे के विकास पर ही नहीं बल्कि परिवार, समुदाय व सम्पूर्ण राष्ट्र के विकास पर अपना कुप्रभाव डालता है।

बाल समस्या का विस्तार

कितने बाल श्रमिक हो सकते हैं इसका आंकलन थोड़ा मुश्किल है। अनेक स्रोतों से प्राप्त विभिन्न आँकड़े हैं। बाल श्रमिकों की संख्या निश्चित करना कठिन है क्योंकि अधिकतर बच्चे कृषि कार्य में लगे हैं। घरेलू नौकर, चाय-पान की दुकान पर आदि असंगठित व्यवसायों में कार्यरत नौकरों का ठीक-ठाक आंकलन करना थोड़ा मुश्किल हो जाता है।

एक अनुमान के अनुसार पूरे विश्व में लगभग 20 से 30 करोड़ बाल श्रमिक हैं जबकि विश्व के 98 प्रतिशत बाल श्रमिक विकासशील देशों में है। जिसमें अकेले एरिया में 30% से अधिक लगभग 15 करोड़ बाल श्रमिक हैं। बाल श्रम समस्या का विस्तार दक्षिण एशियाई देशों में सबसे अधिक है।[1]

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के अनुसार विश्व में सबसे ज्यादा बाल श्रमिक भारत में है। विश्व में सबसे ज्यादा बाल श्रमिक भारत में हैं। कुल बाल श्रमिकों का लगभग 5वाँ भाग भारत में कार्यरत है।

भारत के हर तीसरे परिवार में एक बाल श्रमिक है। 5 से 14 वर्ष की आयु का हर बच्चा बाल श्रमिक है।

भारत में सन् 1971 की जनगणना प्रतिवेदन के अनुसार कुल एक करोड़ 74 लाख बाल श्रमिक थे जो 5 से 14 वर्ष आयु समूह के कुल बच्चों का 5.2% था।[2]

सन् 1981 की जनगणना प्रतिवेदन के अनुसार एक करोड़ 30 लाख 6 हजार बाल श्रमिक थे जो कि 5 से 14 वर्ष आयु समूह के कुल बच्चों का 5.27% था।

राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के 32वें दौर (1978) में 5 से 15 वर्ष आयु समूह के 1 करोड़ 60 लाख 25 हजार बाल श्रमिक थे।[3]

राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण 1983 के अनुसार बाल श्रमिकों की कुल संख्या 1 करोड़ 70 लाख थी अब कि आपरेशन रिसर्च ग्रुप आफ बड़ौदा के अनुसार 1 करोड़ 40 लाख बाल श्रमिक थे।[4]

श्रम मंत्रालय ने 1986 में राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण (N.P.C.) के तथ्यों का प्रयोग पूरे भारत में बाल श्रमिकों की संख्या 1 करोड़ 60 लाख आँका, जो कि भारत के 5 से 15 वर्ष के आयु समूह के बच्चों का 9.1% था जबकि इसमें उन बच्चों को नहीं सम्मिलित किया था जो कि अपने परिवार के उद्योग में लगे थे और वे घरेलू नौकर थे।[5]

सन् 1981 की जनगणना के अनुसार यह प्रकट किया गया कि भारत में 15 करोड़ 90 लाख बच्चों 6 से 14 वर्ष आयु समूह के हैं। जो विद्यालय नहीं जाते।[6]

बाल श्रम समस्या रोकने के सरकारी तथा गैर सरकारी प्रभाव

भारत में बाल मजदूरों तथा बच्चों के शोषण पर अनेक कानूनी प्रतिबन्ध लगे हुए हैं। संविधान के अनुसार 14 वर्ष से कम आयु वाले बच्चे को किसी भी कारखाने में नहीं रखा जा सकता।

कारखाना अधिनियम 1948 बाल अधिनियम 1960 (संशोधित 1978) बाल श्रमिक अधिनियम 1986 तथा अन्य अनेक कानूनों में भी बच्चों को अस्वास्थ्यकर परिस्थितियों में श्रम पर लगाने पर प्रतिबन्ध है। बाल श्रम पूर्णत: समाप्त तो नहीं किया जा सकता पर उसकी स्थितियों को सुधारा जा सकता है। अर्थात काम के घण्टों को कम करना, न्यूनतम मजदूरी तथा स्वास्थ्य शिक्षा को सुनिश्चित करना आदि बाल श्रम को रोकने के निम्न प्रावधान हैं।

कानूनी प्राविधान

बाल श्रमिकों का शोषण रोकने के लिये तथा उनमें रोजगार की स्थिति व परिस्थिति बनाये रखने के लिये समय-समय पर विभिन्न कानून बनाये गये हैं।

स्वतंत्रता के पश्चात् कारखाना अधिनियम 1948, न्यूनतम मजदूरी अधिनियम 1948, बागान श्रम 1951, खदान अधिनियम 1952, व्यापारिक जहाजरानी 1958, मोटर यातायात कामगार अधिनियम 1961, बीड़ी तथा सिगार अधिनियम 1976, बँधुआ श्रमिक प्रथा उन्मूलन अधिनियम 1976, आणविक ऊर्जा अधिनियम 1963 इत्यादि बनाये गये हैं।

ये अधिनियम बाल कल्याण के लिए बाल मजदूरों की सेवाओं, कार्य दशाओं, कार्य के घण्टे तथा मजदूरी की दरें आदि को नियमित करते हैं।

भारत सरकार ने हाल ही में बाल श्रम उन्मूलन के प्रति वचनबद्ध होकर एक महत्वपूर्ण कदम उठाया है इस सन्दर्भ में भारत के पूर्व

प्रधानमंत्री श्री पी. वी. नरसिम्हा राव ने 15 अगस्त 1994 को स्वाधीनता दिवस पर यह घोषणा किया कि जोखिम भरे काम करने वाले श्रमिकों को सन् 2000 तक भीषण जोखिम युक्त धन्धों में बाल श्रमिकों के नियोजन को समाप्त किया जायेगा।

संयुक्त राष्ट्र संघ का प्रयास

विश्व स्तर पर बालाधिकार के परिप्रेक्ष्य में महत्वपूर्ण घटना संयुक्त राष्ट्र संघ महासभा की 1989 की बैठक में घटित हुई। जब बाल अधिकार पर संयुक्त राष्ट्र संघ कनवेन्शन को स्वीकारा गया तथा 2 सितम्बर 1990 में यह विश्व स्तर पर लागू हुआ। अनेक देशों ने इस पर हस्ताक्षर किया। जिसमें से भारत का ही संयुक्त राष्ट्र अन्तर्राष्ट्रीय बालाधिकार घोषणा पत्र 1990 का अनु. 10, 28, 32, 34 मजदूरी से सम्बन्धित है।

राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर गैर सरकारी प्रयास

द. एशिया पूरे विश्व की कालीन का 2.3 भाग बनता है। इस परिक्षेत्र में 10 लाख बच्चे कालीन उद्योग में कार्यरत हैं। गैर सरकारी स्तर पर प्रथम बार 1989 में दिल्ली के विश्व युवा केन्द्र में दक्षिण एशिया के विभिन्न स्वयं सेवी संगठन की बैठक की गयी जिसमें दक्षिण एशिया के बाल दस्ता विरोधी संगठन का निर्माण हुआ। उनके 250 संगठनों ने यूरोप में उपभोक्ता आन्दोलन शुरू कर पूरे विश्व में एक जागरूकता लाया जिसके बाद यूनीसेफ से लेकर सरकारों ने इस समस्या के उन्मूलन पर ध्यान केन्द्रित किया।

इस प्रकार बालश्रम कानून 1986 के बनने से यह आशा जाग्रत हुई कि अब बाल श्रमिकों के भाग्य सुधरेंगे परन्तु इससे राज्य सरकारों या केन्द्र को सीमित रूप से भी किसी प्रकार उद्देश्योन्मुखी कार्य करने के लिए प्रेरित नहीं किया इस उदासीनता को श्रम मंत्रालय द्वारा अगस्त 1987 में घोषित कार्य योजना का दुर्भाग्यपूर्ण परिणाम सिद्ध करता है।

सन्दर्भ -

1. चिल्ड्रेन एक्ट वर्क ए रिपोर्ट आन द यूनीसेफ एण्ड आई. एल. ओ. आई. पी. ई. सी. वर्कशाप एण्ड चाइल्ड लेवर एण्ड इस्ट्रीट चिल्ड्रेन-नवम्बर 1994
2. चाइल्ड लेवर एन. साउथ एशिया - रोसा रिपोर्ट नं.-2, 1995
3. चाइल्ड लेवर एन. साउथ एशिया - रोसा रिपोर्ट नं.-2, 1995
4. चाइल्ड लेवर एन. साउथ एशिया - रोसा रिपोर्ट नं.-2, 1995
5. चाइल्ड लेवर एन. साउथ एशिया - रोसा रिपोर्ट नं.-2, 1995
6. चिल्ड्रेन एक्ट वर्क ए रिपोर्ट, पूर्वोक्त।

जद्दोजहद

रैगिंग : एक मासूम शरारत या मानसिक उन्माद ?

✍ देवेन्द्र कुमार सिंह

बारहवीं की परीक्षा में अच्छे अंक पाने के तनावपूर्ण मानसिक व शारीरिक स्थिति को पार कर, किसी अच्छे कोचिंग के चक्कर में आर्थिक रूप से नुचकर, अपनी हाड़ तोड़ मेहनत के बल पर जब छात्र किसी अच्छे तकनीकी संस्थान में प्रवेश पा लेता है तो जैसे उसकी कल्पना के पंख लग जाते हैं। वह पिछले साल भर के कष्ट और निश्चितता की वेदना को भुलाकर सुनहरे भविष्य की ओर कुलांचे भरने को तत्पर हो उठता है। उसके ऊपर घर से बाहर पहली बार अकेले जाने के भय पर कैम्पस की नयी जिन्दगी का रोमांच हावी है। लेकिन छात्रावास में प्रवेश की पहली रात ही उसके साथ जो घटना घटती है वह उसके मन-मस्तिष्क को झंकझोर कर रख देती है। रैगिंग के नाम पर नवागंतुक छात्रों को सीनियर छात्रों द्वारा असहय शारीरिक यातनाएं और मानसिक यंत्रणाएं दी जाती हैं। विद्रोह का हल्का सा भी प्रयत्न का परिणाम अच्छा नहीं होता और नये छात्र पर थप्पड़ों, लातों और घूसों की बौछार कर दी जाती है। असल में उनके साथ ऐसा बहुत कुछ होता है जिसका यहां वर्णन नहीं किया जा सकता। अखबारों में तो तभी छपता है जब कोई नया छात्र पढ़ाई छोड़ दे, पागल हो जाए या आत्महत्या कर ले। कभी-कभी तो रैगिंग खून-खराबे का रूप ले लेती है।

सच पूछा जाये तो शिक्षण संस्थानों में हर वर्ष का घटनाक्रम अब लगभग निश्चित-सा हो गया है : सत्र की शुरूआत, संस्थानों में प्रवेश करते नये छात्र, आखों में रूमानी कल्पनाएं संजोये हुए। एक नये माहौल को समझने-जानने की बेताबी। इनसे भी अधिक प्रसन्न हैं इनके अभिभावक, अपने बच्चों के भविष्य के प्रति आश्वस्त और आशावादी। इसी रूमानी पर्दे के दूसरी ओर खड़ा होता है सीनियर छात्रों का झुंड। नये छात्रों की प्रतीक्षा करता हुआ। उन्हें नये-नये पाठ पढ़ाने को उत्सुक। यह बताने को बेताब कि वे 'फ्रेशर' यानि जाहिल, बुद्धू और अपरिपक्व हैं। उन्हें सुधारना बहुत जरूरी है और फिर शुरू हो जाता है रैगिंग का सिलसिला। कोई वर्ष नहीं गुजरता जब इस निर्दयी कुप्रथा के हाथों कोई जीवन या भविष्य तबाह न होता हो। रैगिंग के बारे में अखबारों की सुर्खियां, संपादकों के नाम पत्र और संस्थानों-अधिकारियों द्वारा की गयी कार्यवाहियां हिमखंड का महज उतना ही सिरा उजागर करती हैं जो पानी के बाहर है। फिर भी इस पर जोरों की प्रतिक्रिया होती है। रैगिंग के विरूद्ध हर मंच पर आवाजें उठायी जाती हैं। पर थोड़े दिनों के सारे हो-हल्ले के बाद शांति छा जाती है। एक बार फिर जागरूक समाज सो जाता है। अगले सत्र की शुरूआत तक।

रैगिंग एक पश्चिमी अवधारणा है। इसके संबंध में हमें पहला प्रमाण आठवीं शताब्दी में ग्रीस में मिलता है। इसका उद्भव और विकास यूरोपीय विश्वविद्यालयों में हुआ, जहां सीनियर छात्र फ्रेशर्स का हंसी मजाक के माहौल में परिचय प्राप्त करते थे। हमनें ढेर सारी अन्य परम्पराओं की तरह इसे भी आयात किया है। रैगिंग अंग्रेजी के 'रैग' शब्द से बना है। ऑक्सफोर्ड शब्दकोष के अनुसार इसका शाब्दिक अर्थ 'किसी पर हंसना या चिढ़ाना' है। अपने मूल रूप में रैगिंग एक हल्का-फुल्का

✍ श्री शंकर महाविद्यालय, सासाराम (बिहार)

मासूम-सा शरारताना मनोरंजन भर था – फ्रेशर्स की झिझक को झकझोर कर उन्हें कैम्पस के माहौल के अनुरूप ढालने का एक नायाब तरीका। तब उसका उद्देश्य होता था, नये पुरानों के बीच मेल जोल बढ़ाना, अपरिचय की दीवार को ढहाना।

हमारे यहां रैगिंग आवासीय शिक्षण संस्थानों में पनपी और परवान चढ़ी। इनमें अधिकतर इंजीनियरिंग, मेडिकल कालेज, रक्षा सेवा अकादमियों जैसी व्यवसाय-विशेष की शिक्षा देने वाली संस्थायें हैं। इन संस्थानों में रहने वाले छात्रों की जिन्दगी का अपना एक अलग ही तर्क और ढर्रा होता है, जो रैगिंग की प्रथा को कायम रखता है। यह जीवन, परिवार के सुरक्षित माहौल में गुजारे गये दिनों से एकदम अलग होता है। अक्सर ऐसा होता है कि स्कूल और घर के माहौल से छात्र जो मान्यताएं और परम्पराएं लाते हैं उनमें और कैम्पस-जीवन के यथार्थ में कोई तालमेल नहीं होता। आई.आई.टी. मुम्बई के एक छात्र के अनुसार "कैम्पस जीवन में जिये गये यथार्थ और बाहरी समाज में प्रचलित मान्यताओं के बीच एक खाई है, जो दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। मसलन-जहां समाज की बुजुर्ग पीढ़ी एक ओर सारे आदर्श, मूल्य और मर्यादा युवा पीढ़ी पर थोपती है, वहीं अपने वास्तविक जीवन में वह स्वयं इनको ताक पर रख देती है। कथनी और करनी के बीच का यह अन्तर युवा मन में एक विद्रोह को जन्म देता है। रैगिंग इसी की एक अभिव्यक्ति है।"

कैम्पस में नये-नये आये फ्रेशी को जब कोई सीनियर पकड़कर अपने कमरे में ले जाता है, तो उसकी फ्रेशर से कोई निजी दुश्मनी नहीं होती। और-तो-और दोनों एक दूसरे को जानते तक नहीं, पर पुराना छात्र एक फ्रेशर के विचारों से करीब-करीब परिचित रहता है। अतः जब फ्रेशी से अपशब्द बुलवाये जाते हैं, तब मंशा उस व्यवस्था को चोट पहुंचाने की भी होती है, जिसका फ्रेशी एक हिस्सा है। अधिकांश आवासीय संस्थानों में रैगिंग के दौरान कपड़े उतरवाना एक आम बात है। अक्सर ऐसा होता है कि जो फ्रेशर बेधड़क अपना चोला उतार फेंकता है उसकी रैगिंग औरों की अपेक्षा कम होती है। कारण, फ्रेशी अपनी झिझक तोड़ने के लिए तैयार हैं और इससे सीनियरों को संतोष की अनुभूति होती है। रैगिंग का उद्देश्य भी तो यही होता है।

पर रैगिंग का जो रूप इन दिनों शिक्षण संस्थानों में दिखाई देता है, वह पहले से बिल्कुल अलग तरह का है। छात्रों के एक समूह ने इस पूरी प्रक्रिया को शर्मनाक और उत्पीड़नवादी बना दिया है। यह विकृत रैगिंग एक 'विद्रोह' न रहकर शोषण का औजार बन चुका है। परिचय के नाम पर सीनियर छात्र संगठित गुंडागर्दी करने लगे हैं। इसके चलते शिक्षा के मौलिक अधिकार से ही नहीं, अपने प्राणों से भी वंचित हो जाते हैं कुछ बच्चे। विश्वास न हो तो पिछले चंद वर्षों के अखबारों की सुर्खियों पर नजर दौड़ायें।

पिछले साल कई बिहारी छात्र जो बंगलूरू में इंजीनियरिंग की पढ़ाई कर रहे थे, उन पर रैगिंग के बहाने उनके वरिष्ठ साथियों ने रॉड और डंडों से वार किया था। लेकिन दोषियों पर कोई कार्यवाही नहीं हुई। इस वर्ष 25 फरवरी को पूसा स्थित राजेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय के कालेज ऑफ एग्रीकल्चर इंजीनियरिंग के सीनियर छात्रों ने जूनियरों को क्रिकेट के विकेट से इतना पीटा कि अजीत नाम के एक छात्र का दाहिना अंग सुन्न हो गया और उसके दो अन्य साथी गंभीर रूप से घायल हो गये। उन्हें उनके परिवार वालों ने पीएमसीएच में भर्ती कराया और कालेज तथा हास्टल प्रबंधन मूक दर्शक बना रहा। हाल ही में हिमाचल प्रदेश में कांगड़ा स्थित डॉ. राजेन्द्र प्रसाद राजकीय मेडीकल

कालेज के छात्र अमन काचरू की रैगिंग के दौरान सीनियर छात्रों ने जान ले ली। इसके बाद आंध्र प्रदेश में गुंटूर जिले के बापातला स्थित राजकीय एग्रीकल्चर इंजीनियरिंग कालेज की छात्रा त्रिवेणी ने रैगिंग के कारण जहर खाकर आत्महत्या का प्रयास किया। अभी 20 मार्च को शिमला में मेडिकल कालेज के पाँच जूनियर डाक्टर रैगिंग के शिकार बन गये। पिछले दो वर्षों के दौरान रैगिंग के 89 से अधिक मामले दर्ज किये जा चुके हैं और इसके कारण 55 छात्रों की जान जा चुकी है। निश्चित ही रैगिंग की ये घटनाएं व्यावसायिक शिक्षा के बेलगाम तंत्र पर एक बदनुमा दाग हैं। स्कूल की सुरक्षित चार दीवारी से निकलकर, अनियंत्रित छात्रावासों में रहने गये सहमें विद्यार्थियों के तन-मन के चीथड़े कर दिये जाते हैं। सीनियर का दम्भ मासूम किशोर-किशोरियों को अपने सामने झुकाने में तृप्त होता है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इसे 'मानसिक उन्माद' की संज्ञा दी है। जब वे काशी हिंदू विश्वविद्यालय के रेक्टर थे, उन्होंने लिखा था – 'यह एक मानसिक उन्माद है। असंयत चरित्र का भयंकर रोग है। ये लोग भूल गये हैं कि वे यहां पढ़ने के लिए आये हैं। अनुचित मानोविनोद के लिए नवागंतुक दुर्बल विद्यार्थियों को सताते हैं।' मनोविज्ञान भी कहता है कि जिन्होंने स्वयं हिंसा झेली होती है, मौका पाते ही वे हिंसक बन जाते हैं। और यह तथ्य है कि दूसरे और तीसरे वर्ष के छात्र तीव्रतम रैगिंग करते हैं क्योंकि पिछले ही वर्ष इन्होंने रैगिंग झेली होती है। मानवता की मांग यह है कि जिस दुःख से हम गुजर चुके हों दूसरों को उससे मुक्त रखने की कोशिश करें। इसके विपरीत आचरण मानसिक उन्माद का लक्षण है।

आज रैगिंग सरकार और संस्थाओं के लिए चुनौती बन गया है। इसे कानून व्यवस्था से जोड़ा जाये या शिक्षण संस्थाओं में बढ़ते अनुशासनहीनता से, लेकिन यह भयंकर रोग बढ़ता ही जा रहा है। ऐसा नहीं है कि कानूनी तौर पर रैगिंग रोकने के प्रयास नहीं हुए। इस संदर्भ में न्यायालय का रूख हमेशा ही कठोर रहा है। वर्ष 1977 में केरल उच्च न्यायालय ने रैगिंग के कारण कालेज से निलंबित किये गये बारह सीनियर छात्रों की वह अपील नामंजूर कर दी थी, जिसमें कालीकट मेडिकल कालेज के इन छात्रों ने यह तकनीकी मुद्दा उठाया था कि उन्हें निलम्बित करने का अधिकार विश्वविद्यालय के सिन्डीकेट को है, प्रिंसिपल को नहीं। न्यायालय ने उन्हें ऐसे तकनीकी मुद्दों की आड़ में आश्रय देने से इंकार कर दिया और उनका निलंबन बरकरार रखा। लगातार घट रही घटनाओं पर संज्ञान लेते हुए वर्ष 2001 में सुप्रीम कोर्ट ने रैगिंग के किसी भी रूप पर पूर्ण रूप से पाबंदी लगा दी थी। लेकिन न ही सरकार, न ही शिक्षण संस्थानों के प्रबंधन का ध्यान इस ओर गया।

उच्च शिक्षण संस्थानों में रैगिंग रोकने के लिए यूजीसी ने एक समिति का गठन किया था। समिति ने रैगिंग की गैरजमानती अपराध घोषित करने के पक्ष में राय दी। समिति ने रैगिंग रोकने में विफल संस्थानों की पहचान करके पहले उन्हें चेतावनी देने, गलती दोहराने पर अनुदान रोकने तथा अंत में उनकी मान्यता तक समाप्त करने की सिफारिश की थी। रैगिंग के संबंध में 'प्रीवेंशन ऑफ रैगिंग इन कालेजेज एण्ड इंस्टीट्यूशन्स एक्ट-2005' लागू हो चुका है। इसमें स्पष्ट कहा गया है कि 'रैगिंग किसी भी छात्र द्वारा किया जाने वाला एक ऐसा विकारयुक्त व्यवहार है, जिसमें दूसरे छात्र को शारीरिक और मानसिक क्षति के साथ-साथ शर्म अथवा भय या लज्जा से गुजरना पड़ता है।' इस एक्ट में रैगिंग का दोषी पाये जाने पर छात्र को तीन माह का कठोर कारावास और पच्चीस हजार रूपये का जुर्माना भरने का स्पष्ट प्रावधान किया गया है। वर्ष 2007 में सुप्रीम कोर्ट ने रैगिंग की रोकथाम को लेकर सख्त दिशा-निर्देश

जारी किये। इनमें रैगिंग से जुड़ी संस्थाओं के खिलाफ एफआईआर दर्ज कराना भी शामिल है। शैक्षिक संस्थानों में रैगिंग रोकने के सुप्रीम कोर्ट के आदेशों और उन पर निगरानी के लिए बनी आर. राघवन कमेटी के तमाम प्रयासों के बावजूद यूजीसी से लेकर मेडिकल काउंसिल, अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद जैसे तमाम नियामक संस्थान कठोर कदम उठाने में हिचकिचा रहे हैं।

हमारे देश में सबसे बड़ी समस्या यह है कि जब तक कोई मसला हद से गुजर न जाये, तब तक कोई उस पर नजर नहीं डालता। अमन काचरू की मौत ने सबको हिलाकर रख दिया है। यूजीसी दो दशक बाद पुराने दिशा-निर्देशों को बदलने के लिए अब जागी है। उसने कड़े प्रावधान के नाम पर कुछ घोषणाएं की हैं। फिलहाल इस पर अप्रैल महीने में विचार करने का समय तय किया गया है। नये नियमों के मुताबिक, दाखिले के समय छात्रों और उनके अभिभावकों से लिखित में ले लिया जायेगा कि उन्हें रैगिंग पर बने कानूनों की जानकारी है और वे नियमों का पालन करेंगे। अगर कोई संस्थान इन नियमों को लागू करने में कोताही बरतता है, तो उसकी मान्यता समाप्त कर दी जायेगी। इतना ही नहीं, रैगिंग में लिप्त छात्रों को देश के किसी भी शिक्षण संस्थानों में दाखिले पर आजीवन प्रतिबंध लगाने की सिफारिश की गई है। यूजीसी के नये दिशा-निर्देश संबंधी सिफारिश को मान भी लिया गया, तो यह अगले सत्र से ही लागू हो सकेगा। 30 मार्च को सुप्रीम कोर्ट ने हिमाचल प्रदेश और आन्ध्र प्रदेश की राज्य सरकारों और स्थानीय प्रशासन के लापरवाहीपूर्ण रवैये पर सख्त नाराजगी जताते हुए संबंधित कालेजों के प्राचार्य को हटाने का निर्देश दिया। न्यायमूर्ति अरिजित पसायत और न्यायमूर्ति ए. के. गांगुली की खंडपीठ ने रैगिंग को लेकर उच्चतम न्यायालय द्वारा गठित राघवन कमेटी को अमन काचरू हत्या मामले की जांच कर रिपोर्ट पेश करने का भी आदेश दिया।

देश में कानून की कोई कमी नहीं है, लेकिन इनमें से किसी का भी पालन सही ढंग से नहीं हो रहा है। शिक्षण संस्थानों के प्रबंधक अगर कायदे-कानूनों का सही ढंग से पालन करायें तो समस्या पर कुछ हद तक काबू पाया जा सकता है और रोंगटे खड़े कर देने वाली दुर्घटनाएं रोकी जा सकती हैं। यह बहुत दु:ख की बात है कि सुप्रीम कोर्ट या हाईकोर्ट को सरकार और शिक्षण संस्थानों को उसकी जवाबदेही याद दिलानी पड़ती है। रैगिंग पर रोक लगाने के लिए हमारे शिक्षण संस्थाओं को आगे आना होगा। उन्हें इस समस्या पर चौतरफा आक्रमण करना होगा। इसके लिए रैगिंग विरोधी कानूनों का व्यापक प्रचार-प्रसार, विगत वर्षों में रैगिंग के दोषी पाये गये छात्रों के विरूद्ध की गई प्रभावी कार्यवाही की जानकारी तथा शिक्षकों के रैगिंग विरोधी उड़नदस्तों द्वारा लगातार निगरानी जैसे प्रमुख बिन्दुओं को शामिल किया जा सकता है।

जद्दोजहद

भारत का पूर्ण विकास कैसे हो ?

✍ डॉ. अजीत सिंह राही*
✍ डॉ. अलका द्विवेदी**

भारत विकासशील देश

वर्तमान समय में भारत विकास की दौड़ में शामिल अनेक देशों में से एक है। किन्तु प्रश्न तो यह है, कि क्या विकासशील होना ही यह सिद्ध करता है, कि "हमारा देश-भारत विकसित देशों की सूची में आ सकेगा ?"

और प्रश्न तो यह भी है, कि किस विकास की ओर हम ले जा रहे है भारत को ? यदि अधिकांश लोगों से यह प्रश्न करें तो उत्तर मिलेगा कि यांत्रिकी और मशीनरी क्षेत्र में एक उन्नत शिखर पर पहुँचना ही लक्ष्य है भारत का। अधिकांश जनता के मत यही प्राप्त होते हैं, कि जब हमारे देश की टेक्नॉलोजी अमेरिका और जापान के बराबर हो जायेगी तब हम कह सकेंगे कि हमारा देश भारत विकसित देश है। वहीं कुछ लोगों का कहना यह भी है कि - **"जब भारत एक पूर्ण साक्षर देश हो जायेगा तब भारत विकसित देश कहलायेगा।"**

किन्तु एक विवेचनात्मक दृष्टि से देखा जाये तो क्या भारत में साक्षरता का अर्थ यह नहीं कि लोगों के पास उच्च डिग्रियाँ हों, जो कुछ रिश्वत देने पर प्राप्त हो जाती हैं। किन्तु उनके विचार उनकी सोच, और निर्णय लेने की क्षमता अति सूक्ष्म (क्षीण) होती है। इस प्रकार प्रश्न या कहें समस्या यह है कि - भारत विकासशील तो है किन्तु क्या विकसित देश भी होगा ? इस पर शिद्दत के साथ विचार किया जा सकता है।

एक विकासशील देश की समस्यायें

एक विकासशील देश की जो समस्यायें होती हैं, वो भारत की भी हैं। यह विचार अधिक विचारणीय नहीं कि भारत में भ्रष्टाचार और अंधविश्वास व जातिवाद, आतंकवाद, असाक्षरता क्यों है, क्योंकि यह सिर्फ भारत की समस्यायें नहीं वरन् सम्पूर्ण विश्व की समस्यायें हैं **"आवश्यकता इस बात की नहीं कि हम लोगों को बतायें कि भ्रष्टाचार, आतंकवाद क्या है, जरूरी तो यह है कि हम विचार करें कि इसका समाधान क्या है ?"**

वर्तमान समय में यदि कहीं कोई भाषण होता है अथवा कोई लेख प्रकाशित होता है, तो सर्वप्रथम से लेकर अंत तक सिर्फ यह प्रदर्शित होता है कि समस्याओं को सिर्फ परिभाषित किया जा रहा है, उदाहरण हेतु कोई नेता अपने भाषण के दौरान यह अधिक बताता है। भ्रष्टाचार क्या है ? इसके रूप कौन-कौन से है ? कौन-कौन भ्रष्ट है। या भ्रष्टाचार की परिभाषा क्या है ? किन्तु सच तो यह कि प्रत्येक व्यक्ति चाहे ग्रामीण हो या शहरी हो। यह सब भलीभांति जानता है कि यह सब क्या है ? किन्तु वह जानना मात्र यह चाहता है कि इसके निवारण के क्या-क्या तरीके हैं। मेरे विचार से समस्याओं को परिभाषित करने में समय न देकर, उनके समाधान की ओर विचार-विमर्श करना

✍ P.O. Box 199, HANWOOD NEW 2680, AUSTRALIA*
✍ वरिष्ठ प्रवक्ता, हिन्दी विभाग, जुहारी देवी गर्ल्स पी. जी. कालेज, कानपुर**

चाहिये। जो वर्तमान समय की आवश्यकता है।

जागरूकता की आवश्यकता

स्पष्ट शब्दों में कहूँ तो जिस प्रकार - अच्छी सोच, शरीर के सभी रोगों से लड़ने की प्रतिरोध क्षमता बढ़ाती है। उसी प्रकार व्यक्ति का जागरूक होना किसी भी विकासशील देश की अनेक समस्याओं का समाधान है।

जागरूक होना हमारा कर्त्तव्य भी है। हमें स्वयं के प्रति जागरूक होना चाहिये और अपने दोषों को दूर कर सुधार की ओर अग्रसर होना चाहिये। प्रत्येक व्यक्ति को समाज में व्याप्त बुराईयों के प्रति जागरूक होकर समाज को बुराईयों से बचाकर उन्नति के मार्ग पर ले जाने का प्रयास करना चाहिये। किसी भी राष्ट्र में (विकासशील राष्ट्र) जागरूकता का अभाव उस राष्ट्र की समस्याओं को और भी अधिक जटिल बनाता है। किसी विकासशील देश में जितनी ज्यादा जागरूकता होगी, उन्नति की ओर उसकी गति भी उतनी ही अधिक तीव्र होगी। अर्थात् किसी देश का विकास उसकी जागरूक जनता पर निर्भर करता है, प्रत्येक विकासशील देश का कर्त्तव्य है कि वह अपने देश के नागरिकों को अधिक से अधिक जागरूक बनाने का प्रयत्न करें। जागरूक नागरिक विकासशील देश की समस्याओं को उचित तरीके से समझकर, उन समस्याओं का समाधान कर देश के विकास में अहम् भूमिका अदा कर सकते हैं।

भारत के विकास के मार्ग में बाधायें

भारत के विकास में कई अड़चने हैं। किन्तु हम लोगों का मानना है कि शायद प्रत्येक व्यक्ति का शिक्षित न होना ही सबसे बड़ी समस्या है और शायद हमारे दृष्टिकोण से शिक्षित न होना सिर्फ समस्या मात्र नहीं है। अपितु अन्य समस्याओं की जड़ है। शिक्षा के अभाव में अशिक्षित व्यक्ति देश के विकास में कोई सहयोग नहीं दे सकता या कहें अशिक्षित व्यक्ति को नागरिक होने का अधिकार ही नहीं मिलना चाहिये। क्योंकि नागरिकता की परिभाषा के अनुसार कोई व्यक्ति तब तक नागरिक होता है। जब उसे राज्य (राष्ट्र) की ओर से राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं आर्थिक अधिकार प्राप्त हों, और राज्य की ओर उसके कर्त्तव्य हों, जिनका वह ईमानदारी से पालन करें किन्तु - **''एक अशिक्षित व्यक्ति को न ही अपने मौलिक-अधिकारों का ज्ञान होता है और न ही राज्य के प्रति कर्त्तव्यों का। फिर न ही वह स्वयं के और राज्य के विकास में सहयोगी बन सकता है।''**

अर्थात् अशिक्षित होना देश के विकास में एक मुख्य बाधा है, जिसके फलस्वरूप देश को कई प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ता है। जैसे - शिक्षा का अभाव ही आतंकवाद, भ्रष्टाचार एवं अंधविश्वास को जन्म देता है।

भारत में भ्रष्टाचार एक बाधा

भारत में भ्रष्टाचार की स्थिति चिंतनीय एवं सोचनीय है भ्रष्टाचार का अर्थ सिर्फ रिश्वतखोरी एवं दलाली तक ही सीमित नहीं, अपितु इसका क्षेत्र व्यापक है और जैसा कि पीछे लिखा जा चुका है कि अधिकांशतया शिक्षा का अभाव ही भ्रष्टाचार का कारण है। ऐसी स्थिति में वे अपने कर्त्तव्यों और अधिकारों के प्रति सचेत न होकर भ्रष्टाचार को अप्रत्यक्ष रूप से योगदान देकर बढ़ावा देते हैं। प्रत्येक वह व्यवहार या आधार जो किसी-न-किसी परेशानी को जन्म देता है-भ्रष्टाचार है अर्थात् भ्रष्टाचार एक व्यापक समस्या है जो भारत के विकास के मार्ग में एक बाधा है।

भ्रष्टाचार रोकने के उपाय

भ्रष्टाचार रोकने के अनेक उपाय हैं। जिनमें प्रमुख है। शिक्षा और जागरूकता-यदि हम शिक्षित होंगे तभी हम भ्रष्टाचार को रोक सकेंगे और एक समय इसे देश से खत्म कर सकेंगे। हम शिक्षित होंगे तभी हम रिश्वतखोरी के प्रति आवाज उठा सकेंगे, क्योंकि हमें अपने अधिकारों का पूर्ण ज्ञान होगा और हम उन लोगों का विरोध कर सकेंगे जो भ्रष्टाचार को फैलाते हैं। उचित शिक्षा ही भ्रष्टाचार के विरूद्ध एक शस्त्र है।

अंधविश्वास विकास में बाधा

भारत में अंधविश्वास जो कि इसके विकास में एक अवरोध के रूप में विकसित है पहले की अपेक्षाकृत अपनी समाप्ति की ओर तेजी से अग्रसर है। भारत में आधुनिकता के विकास से जहाँ **संस्कृति का पतन हो रहा है, वहीं इसका सकारात्मक रूप यह है कि अंधविश्वास भी समाप्ति की ओर बढ़ रहा है।** किन्तु अभी भी कहीं-कहीं भारत के अविकसित क्षेत्रों में जैसे गाँवों में अंधविश्वास उन्नति के मार्ग में रूकावट है। गाँव के समाज में स्त्रियों की अशिक्षा के कारणों में अंधविश्वास की अपनी भूमिका है अंधविश्वास के कारण ही कुछ गाँवों में खेती योग्य भूमि पर खेती नहीं की जाती है उसे अशुभ स्थान के रूप में नकार दिया जाता है।

जिस प्रकार 11वीं शताब्दी में राजपूत राजाओं की हार एवं गोर वंश की विजय के पीछे अंधविश्वास एक कारण था, क्योंकि राजपूत राजा अंधविश्वासी होने के कारण भाग्य पर ज्यादा जोर देते थे। जबकि मुगल या तुर्क शासक अपने प्रयासों पर, ठीक उसी प्रकार लोग आज भी कर्मवादी नहीं भाग्यवादी हैं। **लोग कर्मवादी न होकर भाग्यवादी हैं**, जिससे उनका और राष्ट्र का सर्वविकास नहीं हो पा रहा है।

अंधविश्वास का विरोध जरूरी है

हम सभी को अंधविश्वास का विरोध कर देश के विकास की ओर नागरिकों का ध्यान आकर्षित करना होगा।

बढ़ती जनसंख्या भारत के विकास में बाधक

बढ़ती हुई जनसंख्या किसी भी देश के लिये खतरे का संकेत है, और विशेष रूप से तब जब वह देश विकासशील हो। बढ़ती हुई जनसंख्या, अशिक्षा की तरह अन्य समस्याओं की जनक है और हम लोगों के विचारों से **अशिक्षा सभी विकास की बाधक समस्याओं की जनक है, बल्कि अशिक्षा का मूल कारण बढ़ती हुई जनसंख्या है।**

भारत का क्षेत्रफल विश्व के क्षेत्रफल का 2.4% है, जबकि भारत की जनसंख्या विश्व की जनसंख्या की 16% है। प्रत्येक व्यक्ति को इस समस्या से परेशानी हो रही - **अधिक जनसंख्या की वजह से स्वच्छ जल, उचित भोजन, उचित शिक्षा और उचित मूल्य पर वस्तुयें नहीं मिल पा रही हैं।** बढ़ती हुई जनसंख्या की वजह से सरकार प्रत्येक व्यक्ति के लिये समुचित साधन उपलब्ध नहीं करा पा रही है और हम सरकार को दोषी ठहरा रहे हैं। बल्कि वास्तविकता में दोष सरकार का न होकर, हमारा है और यदि हम अभी भी सतर्क न हुये तो वो दिन दूर नहीं जब वृक्षों और खेतों को पूरी तरह काटकर लोग वहाँ पर घर बसायेंगे और मँहगाई अपनी चरम सीमा पर होगी, और तब हमारे पास इतना समय भी न होगा कि हम कुछ कर सकें।

बढ़ती जनसंख्या कारण

भारत में बढ़ती हुई जनसंख्या के पीछे अनेक कारणों में सबसे बड़ा कारण भारत के जनमानस का नकारात्मक नजरिया एवं अज्ञानता है।

लोगों की कुछ गलत धारणायें भी इसकी वजह है। कुछ लोग आज भी ये समझते हैं - बच्चे होना या उनका दुनिया में आना ईश्वर की मर्जी है। कुछ लोगों को तो इसके द्वारा होने वाले घातक परिणामों का ज्ञान ही नहीं अतः जनसंख्या पर नियंत्रण के लिये हमें लोगों की अज्ञानता को दूर करके इसके (बढ़ती जनसंख्या के) परिणामों से उन्हें अवगत कराना होगा।

नियंत्रण के तरीके

भारत में इस जनसंख्या के बढ़ते हुये रूप को देखकर सरकार ने बहुत से उपाय जैसे - परिवार नियोजन, मुफ्त दवाइयाँ, दूरदर्शन पर विज्ञापन आदि उपलब्ध कराये हैं। **लेकिन आवश्यक बात यह है, कि हम लोगों को सरकार द्वारा परिवार नियोजन के लिये उपलब्ध कराई गई (मुफ्त) योजनाओं के बारे में बतायें।** और यह कार्य राष्ट्र के लिये ही नहीं समाज के लिये ही नहीं अपितु हमारे लिये आवश्यक है। ताकि हमारा कल सुखद और चिंतारहित हो। इस बार वर्तमान समय में चिंतन की शिद्दत के साथ आवश्यकता है।

समानता का अभाव सभी जाति वर्ग समान हैं लड़का-लड़की समान हैं

भारत में विकास के मार्ग में आने वाली बाधाओं में मुख्य समानता का अभाव एक बड़ी बाधा है। सभी जातियाँ समान हैं - **सभी जाति-वर्ग समान हैं, आपस में भेदभाव नहीं, प्रेम होना चाहिये, मन में कामना होनी चाहिये कि सभी के विकास से देश का विकास होगा।** हमारे देश का विकास मानो जात-पात, धर्म-भेदभाव से रूक गया है। सब मिलकर काम करने के स्थान पर सर्वप्रथम जाति पूछते हैं, सच तो है, मैं सोचता हूँ - **ईश्वर ने जब मनुष्य की रचना की उससे तो सिर्फ मानव बनाये जाति-धर्म नहीं।** फिर जाति-धर्म-भेदभाव कहाँ से आया और सबसे प्रमुख बात तो यह है कि सभी धर्मों में जो श्रेष्ठ पुरूष हुये हैं, उन्होंने सभी धर्मों को श्रेष्ठ बताया चाहे - **मोहम्मद पैगम्बर** हों या **ईसामसीह** चाहे **गुरूनानक**, चाहे **साँई राम** सभी ने इस बात पर जोर दिया, कि यदि हम प्रेम से रहेंगे तो हमारे समाज का, देश का और विश्व का कल्याण होगा। फिर यदि **भारत को विकसित देश बनाना है तो सभी को आपस में मिलकर कार्य करना होगा प्रेम और एकता के साथ।** एकता और अखण्डता ही भारत का आभूषण है और भारत के बहुमुखी विकास के लिये आवश्यक भी है।

लड़का लड़की समान है

भारत के विकास की ओर एक दूसरे प्रमुख दृष्टिकोण से विचार किया जाये तो प्रतीत होगा, कि भारत के प्रत्येक क्षेत्र में जहाँ लड़कों ने योगदान दिया। वहीं लड़कियों ने भी अविस्मरणीय योगदान दिया है। चाहे **मध्यकाल में रजिया सुल्तान हो, या आधुनिक भारत की कल्पना चावला, चाहे लक्ष्मीबाई या किरण बेदी की बात करें।** इतिहास यही बताता है कि लड़कियों/महिलाओं ने भारत के विकास को नई दिशा दी है। किन्तु आज भी कई परिवार ऐसे हैं, जहाँ लड़कियों के साथ भेदभाव किया जा रहा है। लड़कियों को शिक्षा से वंचित किया जा रहा है, जिनसे उनका देश के विकास में सहयोग नही मिल पा रहा है।

अत: आवश्यकता है कि देश के सिर्फ शहरी क्षेत्रों में ही नहीं, अपितु ग्रामीण भागों में भी लड़कियों को लड़कों के समान स्थान प्राप्त हो, तभी देश का समुचित विकास हो सकेगा।

आवश्यकता इस बात की भी है कि हम भ्रूण हत्या जैसे बुरे कार्यों का विरोध करें। तभी समाज में सुधार होगा। आज प्रत्येक देश को लड़कियों के योगदान की महती आवश्यकता है।

भारत के विकास के उपाय विकास में सहायक तत्व

भारत को विकासशील से विकसित देश बनाना हमारा कर्तव्य है। प्रत्येक नागरिक को इस कर्तव्य के प्रति सक्रिय एवं क्रियाशील होना चाहिये। देश के प्रति हमें अपने कर्त्तव्यों का पालन करना होगा। **आगे बढ़कर, गाँव-गाँव जाकर लोगों को शिक्षित करना होगा, दायित्वों की ओर प्रेरित करना होगा, और जागरूक करना होगा।**

सर्वप्रथम यदि हम पुराने लोगों को सही रास्ते पर नहीं ला सकते हैं, तो स्वयं को सुधारना होगा। तभी हम अपनी आगामी आने वाली पीढ़ी को अच्छा बना सकते हैं।

अन्त में हम लोगों का मानना है कि देश की सबसे बड़ी शक्ति युवा संघ को आगे आना होगा। लोगों को साक्षर बनाने का पूर्ण प्रयास करना होगा। इन सबके अलावा प्रत्येक भारतवासी की दृढ़ इच्छा शक्ति और अपने प्रति एवम् देश के प्रति एक ईमानदाराना प्रयास कर भारत को विकास के पथ पर अग्रसर करने की कोशिश ही उसे विश्व समुदाय के सिरमौर्य बनने में मदद करेगी।

उपभोक्तावादी प्रवृत्ति तथा अत्यधिक जनसंख्या आज पर्यावरण प्रदूषण के मूल आधार हैं। अत्यधिक जनसंख्या अत्यधिक प्रदूषण आज एक हकीकत के रूप में हमारे समक्ष आ गया है क्योंकि जनसंख्या में तीव्रवृद्धि के साथ-साथ मानव की आवश्यकताओं में भी तेजी से वृद्धि हुयी है। मानव ने अपनी जनसंख्या की बढ़ी हुयी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु विज्ञान और तकनीक के अनेक अविष्कार शुरू किए। प्राकृतिक संसाधनों के इन प्रयोगों से जल, वायु, भूमि, खनिज संसाधन के अनियंत्रित तथा अव्यवस्थित उपयोग ने प्राकृतिक संतुलन बिगाड़ दिया है और इसके परिणाम स्वरूप आज प्रकृति सूखा, बाढ़ असामयिक एवं अनियंत्रित वर्षा, भूकंप, तूफान, चक्रवात, मौसम एवं जलवायु में हो रहे तीव्र परिवर्तन आदि के माध्यम से अपना आक्रोश प्रकट कर रहे हैं। वनों के अंधाधुंध कटने से इनकी संख्या लगातार घटती जा रही है। वर्तमान में जल प्रदूषण एक गम्भीर समस्या के रूप में मानव के समक्ष आ खड़ी हुयी है। पानी के लगभग सभी स्रोत कुएँ, तालाब, नदियाँ एवं भूगर्भ के स्रोत प्रदूषित एवं विषाक्त हो गये हैं। नागपुर के वैज्ञानिकों (राष्ट्रीय पर्यावरण अभियांत्रिक प्राकृतिक संस्थान) के अनुसार 'देश में उपलब्ध जल का 70 प्रतिशत भाग प्रदूषित हो चुका है, जिनमें 30 प्रतिशत भाग विषाक्त हो चुका है जो कि पीने की दृष्टि से बेहद खतरनाक है।' जनसंख्या की बढ़ती इस रफ्तार ने ही प्राकृतिक संसाधनों को प्रदूषित किया है इसके साथ ही प्राकृतिक आवश्यकताओं की पूर्ति न होने पर लोगों में श्रम शोषण, भ्रष्टाचार, भिक्षावृत्ति साम्प्रदायिक दंगे, वेश्यावृत्ति, गंदी बस्तियाँ, बुरी आदतों के व्यसन (चोरी, जुआ, ड्रग्स सेवन) खाद्य सामग्री में मिलावट, ठगी, धोखाधाड़ी एवं आत्महत्यायें जैसी कुप्रवत्तियाँ एवं सामाजिक प्रदूषण फैल रहा है। आज पर्यावरण की समस्या व इसके संरक्षण, प्रबन्धन की दिशा में चिंतन व सार्वभौमिक सोच का होना लाजिमी हो गया है। कृपया उपरोक्त विषयों पर अपने सामाजिक ज्ञान, अनुभव की सीमाओं को ध्यान में रखते हुये शोधपूर्ण, तथ्यपरक एवं वैज्ञानिक तर्कों से युक्त शोध आलेख/लेख प्रेषित कर रचनात्मक सहयोग देने की कृपा करें।

स्याह हाशिए

दरकती-चटकती परम्पराओं का अक्स और दलित आत्मकथाओं का सच

✍ डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव

दलित चिंतकों की दृष्टि में अतीत एक स्याह पृष्ठ है, जहां सिर्फ घृणा है, द्वेष है, उदात्त मानवीय सम्बन्धों की गरिमा का विखंडन है। हर एक प्रसंग, घटना, दैहिक वासना बनकर रह गई है। दलित साहित्य अतीत के इस खोखलेपन से परिचित है। अतीत के आदर्श उसे झूठे और छद्म दिखाई पड़ते हैं। जिसे वह उतारकर फेंक देना चाहता है ताकि भारतीयता की सच्ची और सजीव पहचान उभरे। दलित साहित्य ने इस उदात्त भाव को मुखरता से अभिव्यक्त किया है। इस परिप्रेक्ष्य में ओमप्रकाश बाल्मीकि की टिप्पणी सटीक है- ''युगों-युगों से प्रताड़ित, शोषित, साहित्यिक, संस्कृति से वंचित मानव जब स्वयं को साहित्य के साथ जोड़ता है तो दलित साहित्य उसकी निजता को पहचानने की अभिव्यक्ति बन जाता है। हाशिए पर कर दिए गए इस समूह की पीड़ा जब शब्द बनकर सामने आती है तो सामाजिकता की पराकाष्टा होती है। सदियों से दबा आक्रोश शब्द की आग बनकर फूटता है। तब भाषा और कला की परिस्थितियाँ उसे सीमाबद्ध करने में असमर्थ हो जाती हैं क्योंकि-पारम्परिक साहित्य के छद्म और नकारात्मक दृष्टिकोण के प्रति वह निर्मम है। दलित रचनाकार लुक-छिपकर या घुमा-फिराकर बात करने का पक्षधर नहीं है। उनके लिए कल्पना और धोखों पर आधारित पद्धति और उसके मापदंड त्याज्य हैं। अन्तर्सम्बन्धों और परिवेश की वस्तुपरक व्याख्या दलित साहित्य में आरोपित नहीं है। बल्कि सहज और स्वाभाविक है।''[1] इसलिए दलित लेखकों के इस कथन में दम है कि केवल दलित ही दलित लेखन कर सकता है। दलित का लेखन ही दलित की स्वानुभूति का लेखन है शेष गैर दलित का लेखन दलित के बारे में स्वानुभूति का नहीं, सहानुभूति का हो सकता है और यह सहानुभूति जातीय, वर्गीय और सांस्कारिक हितों की भिन्नता के कारण बहुत दूर तक नहीं रहती। कभी-कभी तो यह सहानुभूति तदनुभूति से भी अधिक खतरनाक होती है। ऐसा अक्सर देखने को मिल जाता है। आत्मकथाओं के परिप्रेक्ष्य में यह टिप्पणी सटीक बैठती है।

हिन्दी साहित्य के परम्परावादी समीक्षकों की समझ में दलित चिंतकों/दलित लेखकों तथा दलितों का दर्द नहीं आ सकता, क्योंकि जिस लदोई (मैली) को सवर्णों के लोग जानवरों को खिलाते थे, वही लदोई श्यौराज सिंह बेचैन जैसे दलितों का भोजन है और जिस जूठन को पशु और कुत्ते खाते उसी जूठन को ओमप्रकाश बाल्मीकि जैसे कितने दलित खाकर आज यहाँ तक पहुँचे हैं। इस लदोई और जूठन को कितने गैर दलितों ने खाया और लेखक बने हैं ? क्या लदोई और जूठन खाया गैर दलित लिख सकता है उसी अनुभूति के साथ जिस अनुभूति के साथ इसके भोक्ता रहे दलित लेखक? जो बात दलित आत्मकथा और अन्य आत्मकथा में फर्क करती है, वह यह है कि दलित लेखक स्वयं और अपने परिवार के द्वारा भोगे गये यथार्थ के चित्रण करने में नहीं हिचकता। यदि दलित लेखक के परिवार की महिला को मजबूरीवश, भयवश, बलवश अथवा किसी अन्य कारणों से भी शारीरिक और यौन शोषण झेलना पड़ता है तो वह उसको अपनी आत्मकथा में अपने अनुभव और सोच के अनुसार स्थान देने में नहीं हिचकता। इतना ही नहीं

✍ वरिष्ठ प्रवक्ता, हिन्दी विभाग, डी. वी. (पी. जी.) कालेज, उरई (जालौन) उ. प्र.

यदि किसी दलित लेखक ने बदले की भावना या प्रतिक्रिया स्वरूप अथवा आक्रोश में आकर सवर्ण की महिला के साथ ऐसा कुछ कर दिया है तो वह उसको अपनी आत्मकथा में स्थान दे देगा। दलित की आत्मकथा 'गुह्यं च गुह्यति' का पालन करते हुए अपने अनुभव और विचारों को ज्यों का त्यों प्रकट कर देगी, परन्तु दलित के अतिरिक्त अन्य आत्मकथाकारों में इतना साहस देखने को नहीं मिलता कि वह इन दोनों परिस्थितियों या कारनामों को न छुपाए।''दलित आत्मकथा इसीलिए बेबाक आत्मकथा होती है। लागलपेट के सहारे इसे कलात्मकता के आवरण में लपेटकर अविश्वसनीय नहीं बनाया जाता।''(2)

आत्मकथाएँ पहले से ही लिखी जा रही हैं। कई साहित्यकार हैं जिन्होंने सक्रियता के साथ आत्मथाएँ लिखी हैं। परन्तु उनकी आत्मकथाएँ और दलित साहित्यकारों द्वारा लिखित आत्मकथाओं में मूलभूत अन्तर होता है। यह प्रश्न भी अनेक बार उठ चुका है कि दलित लोग सोच-समझकर आत्मकथा ही क्यों लिख रहे हैं ? क्या ये दलित साहित्यकार किसी दबाव में आत्मकथाएं नहीं लिख रहे हैं ? ऐसे सवालों का उत्तर देते हुए श्यौराज सिंह 'बेचैन' का कहना है,कि 'रही बात दबाव में लिखने की तो यह काम वही लोग कर सकते हैं, जिनको लिखने से जबरन रोका गया।' सोच-समझ कर लिखने का प्रश्न कोई प्रश्न नहीं है। ऐसा कौन सा लेखन है जो बिन-सोचे समझे हो जाता है। अपितु सोच-समझ कर किया गया काम तो और भी अच्छा होता है। वैसे शोषित लोगों को जब भी शिक्षा प्राप्त करने का अवसर मिला, उसने उसे प्राप्त करने का अवसर नहीं गंवाया और पढ़-लिखकर उसने जब अपनी व्यथाओं को लिपिबद्ध करना आरम्भ किया तो उसने सबसे पहले आत्मवृत्तांत ही लिखना आरम्भ किया। ''अमेरिका के अश्वेतों और रेड-इंडियन ने जब लेखन के द्वारा आन्दोलन में जागरूकता लानी आरम्भ की तब सबसे पहले उनमें से नब्बे प्रतिशत ने आत्मकथाएँ ही लिखीं। विश्वभर में ऐसे लोगों ने अपनी समस्याओं की वैचारिक शुरूआत आत्मकथा लेखन से ही की, क्योंकि आत्मकथा एक प्रामाणिक अभिलेख के रूप में सामने आती है। इस प्रामाणिक अभिलेख की विश्वसनीयता से शोषक हमेशा घबराता रहा है। साथ ही-साथ आत्मकथा भुक्तभोगी समुदाय में एक विशेष प्रकार की जागृति का कार्य करती है, जो उस समाज में वैचारिक उत्तेजना का संचार करती है।''(3)

आत्मचरित्र आधुनिक मराठी साहित्य की एक समृद्ध विधा रही है। विशेषतः सन् 1960 के बाद जीवन के विविध क्षेत्रों में कार्यरत व्यक्तियों ने अपनी आत्मकथाएँ बड़ी बेवाक भाषा में लिखना शुरू कर दिया। दलितों की विभिन्न जातियों के शिक्षित लेखकों ने भी अपनी आत्मकथाएँ लिखनी शुरू कर दीं। इनकी आत्मकथाओं की यह विशेषता रही है कि इसमें वे अपने बहाने अपनी जाति की भयावह स्थिति का, प्रस्थापितों और सवर्णों की शोषण-वृत्ति का, जातिगत संस्कृति, संस्कार अन्ध श्रद्धाएँ, खान-पान आदि का बड़ा ही तीखा और यथार्थ चित्रण करते हैं। यह आत्मकथाएँ समाज की सबसे निचली श्रेणी के दुखों को शिक्षित समाज तक पहुँचाने में सफल हो गयीं। कहानी की अपेक्षा ये आत्मकथाएँ अधिक सशक्त रहीं। पारम्परिक आत्मकथाओं में व्यक्ति अपने जन्म से लेकर वृद्धावस्था तक की प्रमुख घटनाओं, अनुभवों और सम्पर्क में आये हुए व्यक्तियों को उभारता चलता है। परन्तु दलित-आत्मकथाओं के लेखकों की औसत उम्र 25-40 तक के बीच की रही है। कुछ प्रमुख दलित आत्मकथाएं इस प्रकार हैं- (1) हजारी कृत आई वाज एन आउट कास्ट (अंग्रेजी में

1951), (2) श्यामलाल की ''अनटोल्ड स्टोरी ऑफ ए भंगी वाइस चान्सलर (अंग्रेजी), (3) डॉ. डी. आर. जाटव की ''मेरा सफर मेरी मंजिल'' (अंग्रेजी में), (4) दया पवार की आत्मकथा ''अछूत'' (मराठी में), (5) बेबी कॉवले की ''जीवन हमारा'' (मराठी), (6) सान्ताबाई कृष्ण जी कांवले की मा ज्या जल माची चित्यूर कथा (मराठी), (7) शरण कुमार लिम्बले की ''अक्करमासी'' (मराठी), (8) लक्ष्मण गायकवाड़ की ''उठाईगीर'' (मराठी), (9) प्रा. ई. सोन कांवले की ''यादों का पंछी'' आदि।

हिन्दी में मराठी की प्रेरणा से सत्तर-अस्सी के दशक में दलित लेखन आरम्भ हुआ। हिन्दी में प्रमुख आत्मकथाएं हैं- 1. ओमप्रकाश बाल्मीकि ''जूठन'', 2. मोहनदास नैमिशराय की ''अपने-अपने पिंजरे'', 3. कौशल्या वैसंत्री की ''दोहरा अभिशाप'', इन रचनाओं में जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं-जातिवाद, रोटी कपड़ा और मकान का व्यापक उल्लेख हुआ है। यही नहीं इन आत्मकथाओं में अपने समाज का सम्पूर्ण दैन्य, दारिद्रय, अज्ञान, संस्कृति-विकृति, धर्म, मनोरंजन आदि बातों को भी रेखांकित किया है। इसका यह कदापि अर्थ नहीं कि ये आत्मकथाएँ समाजशास्त्र की पुस्तकें मात्र हैं बल्कि कलात्मक स्तर तक ये पहुँची हुई हैं। एक परिसंवाद में लक्ष्मण माने ने कहा है कि 'हमारे समाज में एक जाति के दुख का पता दूसरी जाति को नहीं होता। संवेदनाओं का आदान-प्रदान भी यहाँ नहीं हुआ है। साढ़े तीन प्रतिशत लोगों द्वारा लिखे गये मराठी साहित्य में समाज के दुर्बल वर्ग का चित्रण नहीं हुआ है।' कम-अधिक मात्रा में यही स्थिति हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं के साहित्य की है।[4] अत्यन्त प्रतिकूल परिस्थितियों, दरिद्रता और संघर्ष की स्थिति से इनका व्यक्तित्व विकसित होता गया है। इस कारण इन आत्मकथाओं का मूल्यांकन सामाजिक और आर्थिक स्थिति के सन्दर्भ में करना पड़ता है। इन आत्मकथाओं का शिल्पगत ढाँचा कहानी के शिल्प के अधिक निकट है। प्रत्येक प्रकरण अपने-आपमें अर्थपूर्ण और स्वायत्त होता है। यूँ तो वह एक-दूसरे के साथ जुड़ा हुआ भी होता है, लेकिन उसकी स्वतन्त्र सत्ता के कारण ही उसके किसी अंश को कहानी विधा के अन्तर्गत रखा जा सकता है। आत्मकथा के लेखन पर परम्परावादी लेखकों द्वारा उठाये गये प्रश्नों का उत्तर देते हुए हरपाल सिंह अरूप का मानना है कि ''जिनके सामने शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार और आर्थिक प्रगति के प्रश्नों से पहले मानवीय गरिमा के साथ जीने का प्रश्न प्रमुख है, जिनके सामने बड़ी-बड़ी परियोजनाओं के दोहन स्वरूप जमीन, जंगल और मकान से उखड़ जाने का दुर्भाग्य राक्षस की तरह मुंह बाये खड़ा है, जिनको अपने मूल स्थानों से विस्थापन झेलने की लाचारी से दो-चार होना पड़ रहा है, जिनको महानगरों की झुग्गी झोपड़ियों में नारकीय जीवन जीने की तिक्तता झेलनी पड़ रही है, जिनको पर्यावरण-क्षरण और प्रदूषण की मार झेलती जिन्दगी को जीवन मानने के लिए मजबूर होना पड़ रहा है, वे अपनी व्यथा-कथा को यदि व्यक्त करना चाहते हैं तो उन्हें साहित्य की किसी ऐसी विधा की दरकार तो होगी ही जो उनके अनुभवों और सोचों को पूरी शिद्दत के साथ सामने ला सके। दलितों के जीवन के यथार्थ को अभिव्यक्ति देने के लिए सामाजिक, आर्थिक विद्रूपताओं और असंगतियों को झेलने वाले की भीतरी कशमश को सामने लाने की आवश्यकताओं को जो विश्वसनीयता से वहन कर सके, किसी ऐसी विधा की आवश्यकता दलित साहित्यकारों के द्वारा महसूस की ही जानी चाहिए। व्यष्टिगत अनुभवों की समष्टिगतता प्रदान करने के लिए परिवेश के यथार्थ को झेलते, देखते, अनुभव करते

केन्द्रीय पात्र के लिए आत्मकथा लिखने से बढ़कर और कोई उपाय नहीं हो सकता।''[5]

दलित आत्मकथाओं का आरम्भ डॉ. बाबा साहब अम्बेडकर द्वारा लिखित 'मी कसा झालो' (मैं कैसे बना) से होता है। इसके बाद प्र. ई. सोनकांबले द्वारा लिखित 'यादों के पंछी' एक उत्कृष्ट आत्मकथा है। इसमें महार समाज की यातना को अत्यन्त प्रखरता और जीवन्तता के साथ व्यक्त किया गया है।

दया पवार की 'बलुंत' ('अछूत' नाम से हिन्दी में प्रकाशित) भी इसी परम्परा की कृति है। सोनकांबले की आत्मकथा का केन्द्र अंचल और वहाँ की मानसिकता है तो दया पवार की आत्मकथा का आरम्भ अंचल से होता है; परन्तु सम्पूर्ण आत्मकथा में बम्बई, वहाँ की झुग्गियों में रहती अछूत जातियाँ, उनके सुख-दुख, संस्कृति-विकृति आदि केन्द्र में है। मराठी दलित महिलाएं भी आत्मकथा लेखन में आगे आई हैं। बेबी काँवले, शांता बाई, मुक्तासवा गौड़ आदि''।[6]

माधाव कोंडविलकर की आत्मकथा 'मुक्काम पोस्ट गोठणे- में भी अनुभूति के नये आयाम उद्घाटित हुए हैं। शिक्षित चमार व्यक्ति को शिक्षकी पेशा करते समय किस भयावह मानसिकता से गुजरना पड़ता है इसका बड़ा सशक्त चित्रण इसमें किया गया है।

शरण कुमार लिम्बाले की आत्मकथा अक्करमाज़ी में शोषण एवं अमानवीयता तथा गरीबी का यथार्थ चित्रण हुआ है। आत्मकथाओं पर उठाये गये पराम्परावादी साहित्यकारों के प्रश्नों का उत्तर देते हुए दलित साहित्यकारों का मानना है कि यह सब सोची-समझी रणनीति के तहत किया जा रहा है। परम्परावादी समाज पर टिप्पणी करते हुए मुद्राराक्षस कहते हैं कि, 'इनकी दरिद्रता का अर्थ सिर्फ इतना होता है कि हमने तीन रोज मुर्गा नहीं खाया, दो दिन विलायती शराब नहीं पी, एक जगह से दूसरी जगह पैदल चले। पंचसितारा होटलों में नहीं जा सके। गरीबी का स्वरूप यह कि बैंक या विश्वविद्यालय में नौकरी नहीं मिली, गवर्नर या एम्बेसडर नहीं बन सके, कितनी गरीबी झेली', कितनी सटीक उक्ति है। जरा सोचकर देखो, कहां 'अक्करमासी' का नायक जिसकी मां किसी जमींदार की रखैल है, बहनों की दशा भी इतनी ही दर्द भरी है। सब नायक को अपने सामने झेलना-सुनाना और सुनना पड़ रहा है। सोचकर देखिए, 'अक्करमासी' में गरीबी मात्र ही नहीं झेली जा रही, अपितु जो झेला जा रहा है वह इन हिन्दी के आत्मकथाकारों की जीवनी में दूर-दूर तक भी कहीं नहीं रहा होगा।''[7]

कैकाड़ी समाज (विमुक्ति जनजाति) के लक्ष्मण माने की 'उपरा' (पराया) आठवें दशक की उत्कृष्ट आत्मकथा है। माने की उम्र केवल 30-32 वर्ष की है। कैकाड़ी समाज घोर अज्ञानी, अन्ध श्रृद्धालु, दरिद्री, अछूत और घुमक्कड़ी वृत्ति का है। ऐसे समाज में जन्म लेकर स्नातक स्तर तक की शिक्षा पाना विशेष बात है। इन प्रमुख लेखकों के अलावा प्रो. केशव मेश्राम, प्रो. कुमुद पावडे, दिनकर गोस्वामी, आत्माराम राठौड़, ना. मा. निमगडे, डॉ. गंगाधर पानतावणे आदि लेखकों ने भी अपनी-अपनी आत्मकथाएँ लिखी हैं।

मराठी साहित्य के समांतर हिन्दी साहित्य में भी पिछले वर्षों में कुछ दलित आत्मकथाएं आई हैं और इन्होंने साहित्य की जड़ता को अपने ढंग से तोड़ा है। हिन्दी दलित साहित्य के क्षेत्र में भी भगवान दास ने ''मैं भंगी हूँ'' नाम से एक भंगी मेहतर जाति के इतिहास से सम्बन्धित समाज की आत्मकथा लिखी थी। यह सम्भवतः सन् 1950 के दशक में प्रकाशित हुई थी। आत्मकथा विधा में

दलित साहित्य की यह पहली रचना थी, जिसमें एक आत्मविस्मृति दलित जाति के इतिहास की गम्भीर गवेष्णा है। इसके काफी समय बाद हिन्दी दलित साहित्य में व्यक्तिगत आत्मकथा के लेखन का दौर आरम्भ हुआ। 9वें दशक में हिन्दी दलित आत्मकथा लिखने की शुरूआत पत्रकार राजकिशोर द्वारा सम्पादित 'हरिजन से दलित' में दलित लेखक ओमप्रकाश बाल्मीकि का आत्मकथांश से मानी जा सकती है। हिन्दी पाठकों व साहित्यकारों में दलित आत्मकथाओं के प्रति रुझान बढ़ी है और यह साहित्य की प्रमुख विधा बन रही है। इसी की प्रेरणा स्वरूप 1995 में मोहनदास नैमिशराय की आत्मकथा 'अपने-अपने पिंजरे' दूसरी आत्मकथा, ओमप्रकाश बाल्मीकि की 'जूठन' 1996 में प्रकाशित हुई।'[8] मोहनदास नैमिशराय और ओमप्रकाश बाल्मीकि की आत्मकथाएं इनमें प्रमुख हैं। नैमिशराय की ''अपने-अपने पिंजरे'' और बाल्मीकि की ''जूठन'' श्यौराज सिंह बेचैन की मेरा बचपन मेरे कन्धों पर, एक लदोई, जयप्रकाश कर्दम की 'मेरी जात', एन. आर. सागर 'जब मुझे चोर कहा', सूरज पाल चौहान की 'घूंट के अपमान', बुद्धशरण हंस की 'टुकड़े-टुकड़े आइना', हिन्दी पट्टी में लगभग उन्हीं जीवन अनुभवों को व्यक्त करती हैं जो मराठी दलित आत्मकथाओं से उजागर होती हैं। कुछ परम्परावादी आलोचक दलित आत्माकथाकारों पर जल्दबाजी के लेखन पर प्रश्नचिन्ह लगा रहे हैं उनका मानना है कि दलित साहित्यकारों में एक प्रकार की जल्दबाजी देखी जा रही है। लगभग सभी दलित साहित्यकारों ने इतनी जल्दी अपनी-अपनी आत्मकथाएं भी लिख डाली हैं, कहीं ऐसा न हो जाए कि कुछ दिनों के उपरान्त उनके पास विषय की ही कमी हो जाय ? मेरी समझ में सदियों तक धीरज और यंत्रणा के साथ प्रतीक्षा करने के बाद, अन्याय और शोषण का लगातार निर्मम शिकार होने के बाद अगर उनमें अपना स्थान और मानवीय गरिमा पाने की कुछ अधीरता लगती है तो यह सर्वथा उचित और सामयिक है। उन्होंने अगर जल्दी-जल्दी अपनी आत्मकथाएं लिख डाली हैं तो इसका एक कारण तो यह होगा कि वे अपने सीधे अनुभवों पर अपना ध्यान एकाग्र करना चाहते हैं। इस बहाने उन्होंने आत्मकथा जैसी हिन्दी में विपन्न विधा को कुछ समृद्ध करने की चेष्टा भी की है। यह खतरा भले हो लेकिन अभी यह मानने का कारण नहीं जान पड़ता कि आत्मकथा से उनका जीवनानुभव चुक जाएगा। उनकी जिजीविषा और सिसृक्षा बनी रहेगी ऐसी आशा करनी चाहिए। दलित संसार स्वयं में बेहद जटिल और विशाल है और कई हजार लेखकों के लिए उपजीव्य बना रह सकता है। दूसरे, दलित के अलावा बहुत बड़ा संसार है जिस पर लिखने का दलित लेखकों को समान अधिकार है।[9]

दलित आत्मकथाओं पर अपनी टिप्पणी करते हुए डॉ. श्यौराज सिंह बेचैन लिखते हैं ''इनमें दलित छवि एक सचेतन आत्मसंघर्षरत स्वाभिमानी व्यक्ति की छवि के रूप में उभरकर आई है। दलित आत्मकथाकार अतीत की भद्दी तस्वीरें देखते हैं। साथ-साथ उन हाथों को भी पकड़ते हैं जिन्होंने कई, सौन्दर्य से भरी जीवन झांकियों पर ईर्ष्यावश कालिख पोत दी है। कई कारणों से दलित साहित्य में आत्मकथाओं का बड़ा महत्त्व है। ये आत्मकथाएं इतिहास विहीन दलित समाज में सूचनाओं, तथ्यों और स्थितियों के ऐसे प्रमाण जुटाती हैं जिनके बगैर हिन्दी समाज का अध्ययन अधूरा है। दलितों के दुखों पर गौर करते हुए दलित चेतना के पक्षधर डॉ. ए. एन. सिंह बार-बार इतिहास के सबक दोहराते हैं। दलित आत्मकथाएं सत्य के जरूरी दस्तावेज हैं, इन्हें ब्राह्मणों को प्राथमिकता से पढ़ना चाहिए। यदि वे नहीं पढ़ पा रहे हैं तो वे खुद को नहीं समझ

पाएंगे। ज्ञान व्यवस्था के सर्वेसर्वा होने के कारण अतीत में दलितों की जीवन भूमि में ब्राह्मणों ने दु:ख बोये हैं, तो दलितों को सुख भी उन्हीं से प्राप्त करना है। "मुद्राराक्षस का इस बारे में विचार है, 'दुनिया में जो भी दलित समस्या रही उसकी वैचारिक शुरूआत अपनी कहानी से ही हुई। जैसा कि पिछले बीस वर्षों में रचनात्मक हिन्दी में चूंकि दलित प्रश्न निर्णायक सिद्ध हो गया है, इसलिए सवर्णों को दलित रचनाकारों के आत्मवृत्तान्तों से खौफ महसूस होने लगा। उन्हें महसूस हुआ कि ये जीवनियां ऐसा प्रमाणिक दस्तावेज हैं जो दलित समुदाय को जागृति और वैचारिक उत्तेजना देगी। उनमें विजेता की कल्पना पैदा होगी।"[10]

अमेरिकी ब्लैक पैन्थर (1966) की तर्ज पर भारत में 1972 में दलित पैन्थर की स्थापना महाराष्ट्र में राजा ढ़ाले और नामदेव ढ़साल ने की। उसके बाद देश भर में कला, साहित्य सम्बन्धी सैकड़ों संस्थायें खड़ी हो गयीं। छिपाकर रखी एवं भोगी हुई यातनाएं आत्मकथाओं के जरिए सार्वजनिक कर दी गयीं। दलितों को आत्मकथा लिखने के खतरे भी बहुत हैं। तब सवाल उठता है कि ऐसे जोखिमपूर्ण कार्य को ये लोग क्यों कर रहे हैं ? शरण कुमार लिम्बाले की पत्नी यह प्रश्न करती हैं "कि यह सब लिखने से क्या फायदा ? तुम क्यों लिखते हो? कौन अपनाएगा हमारे बच्चों को ? या ओमप्रकाश बाल्मीकि की पत्नी उनके 'सरनेम' को लेकर कहती हैं 'कि हमारे कोई बच्चा होता तो मैं इनका सरनेम जरूर बदलवा देती।" जब ये समस्या इतनी गम्भीर है तब इस पर सोचने की जरूरत है? लिम्बाले जी कहते हैं "फिर भी मैं लिखता हूँ, यह सोचकर कि जो जीवन मैंने जिया वह सिर्फ मेरा नहीं है। मेरे जैसे हजारों, लाखों का जीवन है। मुख्य प्रेरणा यहां यह मिलती है कि अमानवीय जीवन को जिया, लाखों यंत्रणाओं का सामना करना पड़ा, फिर भी यहां तक पहुंचा। इसलिए आत्मकथाएं दलित लेखकों के अदम्य जीवन संघर्ष के साथ आगे बढ़ने का संदेश देती हैं, क्योंकि दलित आत्मकथाकार बताना चाहते हैं कि जो नारकीय जीवन हमें मिला, उसमें व्यक्ति विशेष का अपराध नहीं है। शिक्षा, साहित्य, भूमि आदि उत्पादन के साधनों से वंचित और सामाजिक गतिविधियों से अलग-थलग कर हमें मजबूर बना दिया, यह हमारे पूर्वजन्मों के कारण नहीं है बल्कि पक्षपातपूर्ण सामाजिक व्यवस्था की नियत के कारण हैं।[11] डॉ. अम्बेडकर ने भी अपनी आत्मकथा 'मी कसा झाला' (मैं कैसे बना) शीर्षक से लिखी, जिसमें आत्मकथा की उपयोगिता व प्रकृति का आभास होता है। "मेरा विकास किसी अद्‌भुत शक्ति के कारण नहीं हुआ बल्कि मेरे जीवन निर्माण में परिश्रम और संघर्ष मुख्य बिन्दु रहे हैं।" ऐसा मत प्रतिपादित करने वाले डॉ. अम्बेडकर से दलित लेखकों ने क्या प्रेरणा ली है ? "अपने जीवन की सांघातिक परिस्थितियों को झेलना, सहना और प्रतिकार की सन्नद्धता संजोना इन सभी को सही अभिव्यक्ति देने के लिए आत्मकथा से अच्छी विधा दूसरी कैसे हो सकती है? उपन्यास या कहानी में इतना खुलापन नहीं आ सकता कि विश्वसनीय तरीके से झेले गये संघातों को सीधे-सीधे बयान किया जा सके। कटुता और अन्यमनस्कता जब क्षोभ उत्पन्न करते हैं तब एक ऊर्जावान दलित मन में सभी दबावों को झेलने के उपरान्त जो संभावनाशीलता जन्म लेती है, उसको शाब्दिक रूप में आत्मकथा से बेहतर ढ़ालने का और कोई तरीका हाथ नहीं लगता। अन्तर्मन की कुंठा और खामोश प्रतिक्रिया को मुक्ति चेतना में ढ़लते हुए दिखाना इसी विधा की सामर्थ्य में है। जीवन में घटी घटनाओं को जैसा भोगा, जैसा महसूस किया वैसा ही कह देना कला का हिस्सा न हो, कोई बात नहीं, परन्तु घटना के पीछे का विचार-मंथन तो

अपना कुछ अर्थ रखता है, यही 'कुछ' तो है जो उद्देश्य के हिस्से में आता है।''[12] ये आत्कथाएं दलितों की जीवन-शैली, जीवन-प्रक्रिया और जीवन-अनुभवों की यथार्थाभिव्यक्ति कराती हैं, और दलित साहित्य की लोकप्रिय विधा भी हैं। इतना ही नहीं, यह एक मूर्त्त विधा भी है, जो क्रियाओं-प्रतिक्रियाओं, द्वन्द्वों, कुण्ठाओं, प्रतिरोधों, विडम्बनाओं, का ऐसा इतिवृत्त प्रस्तुत करती हैं, अनुरंजन और काल्पनिक सुख के बरक्स सार्थक जीवन-दृष्टि भी जिसमें उपलब्ध होती है। जो व्यावहारिक जीवन में काम आती है। अतः परम्परागत मानदण्डों के अतिरिक्त भी बहुत कुछ है जो मापा जाना चाहिए। अब प्रश्न यह उठ रहा है, वैचारिकता, सार्थक जीवन दृष्टि, अनुभव की सहज निष्कर्षबद्धता क्या आत्मकथा की विधागत स्वाभाविकता के भीतर उसकी सहजात प्रवृत्ति के रूप में अन्तर्लिप्त नहीं है। यदि आप दूसरे की पीड़ा का एहसास नहीं कर सकते तो आप मनुष्यता से कोसों दूर हैं। दलित साहित्य के लेखक इसी एहसास को जगाना चाहते हैं। वे चाहते हैं कि समाज उनकी पीड़ा को समझे। उनके भोगे हुए दर्द को समझकर शेष, समाज उनको बराबरी का दर्जा देना और उसका हकदार होना, दोनों को स्वीकार कर सके। यह साहित्य एक प्रकार से चेतावनी का साहित्य भी बनता जा रहा है, इसका मनोवैज्ञानिक प्रभाव भी पड़ता जा रहा है। एक प्रकार से कहें तो दलित लेखकों की आत्मकथाओं ने दलित और अन्य दोनों समाजों पर अपने-अपने तरीके से सोचने का दबाव बनाया है। इस दृष्टि से आत्मकथा दलित साहित्य लेखन की प्रमुख विधा के रूप में उभर कर सामने आ रही है।''[13]

इधर हाल में कुछ दलित आत्मकथाओं ने हिन्दी साहित्य जगत में बेचैनी पैदा कर दी है। आलोचक इसे एक फैशन मान रहे हैं। दलित आत्माभिव्यक्ति की प्रमाणिकता पर उन्हें संदेह है। हिन्दी क्षेत्रों में इन आत्मकथाओं को बाकायदा उपन्यास के रूप में प्रोजेक्ट किया जा रहा है। हिन्दी में दो प्रमुख दलित आत्मकथाएं प्रकाशित हुई हैं-मोहनदास नैमिशराय की 'अपने-अपने पिंजरे' और ओमप्रकाश बाल्मीकि की 'जूठन'। मराठी से हिन्दी में अनूदित दो दलित आत्मकथाएं चर्चा के केन्द्र बिन्दु में रही हैं- दया पवार को 'अछूत' और शरण कुमार लिंबाले की 'अक्करमासी'। गिरिराज किशोर इस पर टिप्पणी करते हुए कहते हैं ''अम्बेडकर ने अनेक युवा दलित लेखकों को रास्ता दिखाया, उन्होंने उन रचनाकारों से अपने को अलग करते हुए अपने परिवेश से सम्बन्धित क्रान्तिकारी रचनायें लिखीं। खासतौर से आत्मकथाएं, कविताएं और गद्य रचनाएं भी लिखी गई। पाठकों पर उनका गहरा प्रभाव पड़ा। आत्मकथायें खासतौर से एक ऐसे यथार्थ को सामने लाती हैं जो था तो, लोग उसे देखना नहीं चाहते थे। वे आँखें खोलने वाली रचनायें हैं। उपन्यास और आत्मकथाओं में अंतर होता है। आत्मकथायें व्यक्तिपरक होती हैं। मनुष्य जितना अपने बारे में जानता है उतना एक गद्य लेखक अपने पात्रों के बारे में प्रथम पुरूष के रूप में नहीं जानता। उसे अपने पात्रों को जानने के लिए अतिरिक्त उद्यम करना पड़ता है। लेखक के साथ-साथ पात्रों की भी सीमायें होती हैं। साथ ही तत्कालीन समाज भी समकालीन सोच में अंतर डालने का काम करता है। वह लेखक को उतनी आजादी नहीं देता जितनी आत्मकथाओं में मिल सकती है।''[14] परम्परावादी आलोचकों को दलितों की व्यथा पर संदेह क्यों है? उसकी पीड़ागत प्रामाणिकता पर वे विश्वास क्यों नहीं कर पा रहे हैं? हिन्दू समाज के जुल्मों का दस्तावेज प्रामाणित न बन सके क्या इसीलिए आत्मकथाओं को उपन्यास के रूप में प्रोजेक्ट किया जा रहा है ? ये सभी सवाल दलित चिंतकों को चिंतित या विचलित

नहीं करते, क्योंकि दलित साहित्य या दलित आत्माभिव्यक्ति किसी की विश्वसनीयता की मोहताज नहीं है, न ही गैर दलितों के द्वारा प्रामाणिकता के स्टैम्प की जरूरत है। फिर भी इन सभी सवालों से टकराने की जरूरत है, आज इसमें शोध और बहस की पर्याप्त गुंजाईश है।

आत्मकथा लिखने के लिए साहस और ईमानदारी होनी चाहिए; रचनाशीलता का अपना खुद का तेवर होना चाहिए- ये सारी चीजें एक दलित आत्मकथा में विद्यमान हैं। समाज की कुरीतियों और खौफनाक चेहरे को उजागर करने के लिए आत्मकथा के अलावा और कोई प्रामाणिक माध्यम नहीं हो सकता। दलित आत्मकथाओं ने समाज के 'एलिट वर्ग' के चिंतन को झकझोर दिया है। व्यवस्था के चरमराने और वर्चस्व के टूटने का खतरा पैदा हो गया है। आत्मकथाओं ने गैर दलितों के सामाजिक चिंतन पर प्रश्नचिन्ह लगा दिया है।

गैर दलित चिंतकों को दलित आत्मकथा में अभिव्यक्त अपमान, पीड़ा और जहालत पर विश्वास नहीं है। इनकी प्रामाणिकता की वे परीक्षा लेना चाहते हैं। हिन्दू व्यवस्था के घावों को बदन खोलकर दिखाना पड़ेगा क्या? जीवन में कभी यातना से वास्ता पड़ा होता तो शायद उन्हें समझ में आता भी। फुले के शब्दों में कहें तो राख ही बता सकती है जलने की पीड़ा क्या है ? कोई परम्परावादी लेखक जो हिन्दू समाज की दी हुई अछूत पहचान को अपने से जोड़ सके ? अपने को भंगी, चमार और पासी कह सके ? डोम, चमार नाम सुनते ही चेहरे की रंगत बदल जाती है। मुंह का सारा जायका ही बिगड़ जाता है। सारी संवेदनशीलता पल-भर में उड़न छू हो जाती है। यह साहस सिर्फ दलित लेखकों में ही है, जिन्होंने अपनी अस्मिता और अपने होने के एहसास को जताया है। यह सब गैर दलितों के बूते का नहीं है।

दलित कथाओं में जहाँ तक विषय और वस्तु का प्रश्न है तो यह सदियों से चली आ रही दलितों की उपेक्षा और तिरस्कार को केन्द्रित करके ही लिखी जा रही हैं। दलितों द्वारा शोषण का विरोध, सामाजिक अधिकारों के लिए संघर्ष, प्रताड़ना के बावजूद कार्य करने की इच्छा शक्ति आदि का प्रदर्शन दलित कथाओं में प्रतिपाद्य के रूप में सामने आ रहा है। कुल मिलाकर अगर कहें तो हम यह कह सकते हैं कि दलित आत्मकथा तथा साहित्य दलितों के सार्वभौमिक शोषण का विरोध करते हुए साहित्य में गतिशील हो रहा है।[15]

यदि साहित्य में आत्मकथा नामक विधा है तो आत्मकथा लिखना गुनाह है क्या ? और यदि आत्मकथा दर्द बयानी का माध्यम नहीं है तो दलित साहित्य उन सारी परिभाषाओं और मानदण्डों को ध्वस्त कर आत्मकथा के मानदण्डों और शर्तों को खुद ही विकसित और निर्धारित करेगा। हिन्दी साहित्य के बने-बनाए ढर्रे पर चलने को मोहताज या बाध्य नहीं है दलित साहित्य।

दलित आत्मकथाओं को उपन्यास कहना पीड़ा, दर्द और यातना के संत्रास को तथा अभिव्यक्ति के तेवर को कम करना है, मजाक उड़ाना है। दलित आत्मकथाओं पर जो प्रश्न उठाए जा रहे हैं वे तिलमिलाहट के प्रतिरूप हैं या एक सकारात्मक दिशा देने की कोशिश इस पर गम्भीरता से सोचने, विचारने की जरूरत है। जब कोई दलित लेखक अपने को दोगली संतान कहता है, जब अपने परिवार और समाज की सच्चाइयों को उकेरता है तो क्या उसमें ईमानदारी नहीं है ? जीते-जी अपने जीवन की कड़वी सच्चाईयों को बयान करना, कोई मजाक की बात नहीं है। और किसी में इतना साहस, ईमानदारी और सच कहने का माद्दा भी नहीं।

अभी तक हिन्दी में, सिर्फ दो-चार ही

दलित आत्मकथाएं आई हैं, जिनमें जीवन के दग्ध अनुभव एवं शोषण की लम्बी दास्तान है। शीघ्र ही डॉ. धर्मवीर और की आत्मकथा प्रकाशित होने वाली हैं। 'हंस' में प्रकाशित अस्थियों के अक्षर 'युद्धरत आम आदमी' में 'चमार' का और साहित्य अकादमी की पत्रिका-समकालीन भारतीय साहित्य के जुलाई-अगस्त 2000 के अंक में 'बचपन कंधों पर' शीर्षक से छपे कुछ अंश झकझोरते हैं। इनसे प्रेरित होकर अभी और भी आत्मकथाएं आने की आशा दलित साहित्य को है। इसमें कोई दो राय नहीं कि दलित आत्मकथाएं दलित चेतना के लिए उत्प्रेरक का कार्य कर रही हैं, थोपी गई हीनता-ग्रन्थि को आत्मकथाएं तोड़ रही हैं और आत्मसम्मान की जिंदगी जीने का मार्ग प्रशस्त कर रही हैं। ये दलित मानसिकता को जकड़न से बाहर निकालने का एक प्रयास है आत्मकथा। आने वाली पीढ़ी के लिए दलित आत्मकथाएं एक विस्तृत फलक तैयार करने का काम कर रही हैं। नई दलित पीढ़ी के लिए दलित आत्मकथाओं का महत्व ज्यादा है। आत्मकथाओं में एक खास विजन है। इसी विजन के जरिए आने वाली पीढ़ी रचनाशीलता को पर्याप्त विस्तार देगी।

आने वाली पीढ़ी के लिए दलित आत्मकथाएं एक विस्तृत फलक तैयार करने का काम कर रही हैं। विजन के जरिए गैर दलितों द्वारा दलित आत्मकथाओं के बारें में प्रामाणिकता की मांग करना दु:ख ही नहीं, बल्कि बेहद शर्मनाक बात है। इससे साफ जाहिर होता है कि वे दलित संवेदनशीलता से कोसों दूर हैं। दलित आत्मकथाओं में उन्हें सब कुछ झूठा लगता है। समाज के खौफनाक पंजों से कभी वास्ता पड़ा होता तो शायद उन्हें हकीकत का पता चलता। एक दलित को आत्मकथाएं सच्ची क्यों लगती हैं ? क्या सिर्फ इसलिए कि वह दलित है या उसने हिन्दू व्यवस्था के अत्याचारों को झेला और महसूस किया है ? यही कारण है कि दलित चिंतन गैर दलितों की संवेदनशीलता और लेखन पर प्रश्नचिन्ह लगा रहा है।[16] हॉलांकि गैर दलित चिंतकों, लेखकों, आलोचकों के बीच से एक ऐसा वर्ग उभर कर आ रहा है, जो दलित चिंतन और आक्रोश को विश्लेषित कर रहा है। दलित साहित्य को स्वीकारते हुए बड़ी संजीदगी से उसकी मीमांसा कर रहा है, जो कि स्वागत योग्य है। फुले-पेरियार-नारायण गुरू-अम्बेडकर ने आत्म सम्मान और सामाजिक अस्मिता की जो भावभूमि तैयार की थी तथा संघर्ष का जो दीप प्रज्ज्वलित किया था, आज वह और भी तेजी से प्रदीप्त हो उठा है। वेदना, आक्रोश और आमूल परिवर्तन की आकांक्षा से दलितों ने अस्मिता के संघर्ष को एक आकार देना शुरू कर दिया है। सदियों से जिसे साहित्य और समाज के हाशिए पर फेंक दिया गया था तथा जिसे अछूत, अतिशूद्र, अन्त्यज, चाण्डाल, अवर्ण, पंचम तथा हरिजन आदि नामों से विहित करके घृणा, हिकारत और दया का पात्र बना दिया गया था, वही आज प्रखर आत्मबोध के साथ इन सारी शब्दावलियों और विश्लेषणों को ठुकराकर स्वयं दलित के रूप में अपनी अस्मिता का बोध साहित्य, समाज और राजनीति तीनों ही स्तरों पर अपनी सार्थक उपस्थिति दर्ज करा कर जबर्दस्त दस्तक दे रहा है और अपने अधिकारों के लिए स्वयं संघर्ष कर रहा है।

दलित साहित्य और साहित्यकारों के सामने आज चुनौतियां हैं। अभी बहुत सारे अवरोधों को उन्हें तोड़ना शेष है। अपनी अस्मिता को सशक्तता से स्थापित करना है तथा आने वाली पीढ़ी को एक दिशा भी देनी है। अत: छोटे-मोटे दुराग्रहों से बचते हुए पूरी सामूहिकता और सहयोगवृत्ति के साथ इस आन्दोलन को उन्हें शिद्दत से गति देनी होगी। इसके साथ ही गैर दलित साहित्यकारों के अन्दर

दलित साहित्य की स्वीकृति को लेकर एक अन्तर्विरोध है। इस जकड़न और अन्तर्विरोध से जितनी जल्दी वे मुक्त हो जाएं, उतनी ही समरसता आएगी।

दलित लेखकों को दया से घृणा है। उन्हें दया और सहानुभूति नहीं अधिकार चाहिए। आत्मसम्मान और अस्मिता की पदचाप मराठी, गुजराती और अन्य भाषा-साहित्यों के साथ-साथ हिन्दी में नकार, वेदना और आक्रोश के रूप में दलित साहित्य में अभिव्यक्त हो रही है। मोहक शब्दावलियों, आकर्षक अवधारणाओं-दार्शनिक उपपत्तियों की असलियत क्रमशः उघाड़ी जाने लगी है। खुद की बनाई हुई भीति से रहस्य की चादर दरकने तथा चटखने लगी हैं। गर्व से महिमार्मंडित करने वाले साहित्य के ठेकेदारों की साहित्यिकता और सौन्दर्यशास्त्र उन्हें ही मुंह चिढ़ाने को आतुर है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, ओम प्रकाश बाल्मीकि, पृ0-104
2. कथाक्रम, जनवरी-मार्च, 2005, पृ0-63
3. कथाक्रम, जनवरी-मार्च, 2004, पृ0-53
4. दलित कहानियाँ, रणसुभे, गंगावणे, पृ0-21
5. कथाक्रम, जनवरी-मार्च, पृ0-48
6. चिन्तन की परम्परा और दलित साहित्य, आत्मकथा की परम्परा और दलित आत्मकथाएं -रजतरानी मीनू, पृ0-156
7. कथाक्रम, जनवरी-मार्च, 2004, पृ0-53
8. चिंतन की परम्परा और दलित साहित्य-आत्मकथा की परम्परा और दलित आत्मकथाएं -रजतरानी मीनू, पृ0-156-157
9. हंस, अगस्त-2004, पृ0-222- 223
10. हंस, अगस्त-2004, पृ0-228
11. कथाक्रम, जनवरी-मार्च, 2004, पृ0-50
12. चिंतन की परम्परा और दलित साहित्य, आत्मकथा की परम्परा और दलित आत्मकथाएं -रजतरानी मीनू, पृ0-157
13. कथाक्रम, जनवरी-मार्च, 2004, पृ0-50
14. कथाक्रम, जनवरी-मार्च, 2004, पृ0-51
15. दलित विमर्श : सन्दर्भ गाँधी, गिरिराज किशोर, पृ0-40
16. दलित विमर्श : चिंतन एवं परम्परा, नवम्बर-2005, सम्पादक-डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव, पृ0-57

अध्यात्म एवं दर्शन

ऋग्वैदिक अनुक्रमणियों में नाम

✍ डॉ. मीरा रानी रावत

विचार सम्प्रेषण का माध्यम भाषा का आधार पद है। 'पद' अर्थ के स्तर पर भाषा की लघुतम स्वतन्त्र इकाई है। 'अपदं 'मा प्रयुञ्जीत' इस उक्ति के अनुसार वाक्य में पदों का प्रयोग इष्ट है। 'पद' शब्द गत्यर्थक पद् धातु से घ् प्रत्यय करने पर निष्पन्न होता है जिसका व्युत्पत्ति लभ्य अर्थ है। अर्थ का पोषक। पद्यते गम्यते ऽर्थो ऽनेनेति पदम् अर्थात् जिसके प्रयोग से अर्थ की प्रतीति हो वह पद है।

पद शब्द का सर्वप्रथम उल्लेख ऐन्द्र व्याकरण में मिलता है, यद्यपि आज ऐन्द्र व्याकरण उपलब्ध नहीं होता है तथापि उसके मत को विभिन्न ग्रन्थों में उद्घृत किया गया है। जिसके अनुसार अर्थ बोधक अक्षर समुदाय को पद कहा गया है। 'अर्थ: पदमेन्द्राणामिति'।[1] 'अन्यत्र भी सार्थक वर्ण समूह को पद कहा गया है।[2]

अति प्राचीन काल से मनीषी पद-विभाग के सम्बन्ध में विचार करते रहे हैं तथा अनेकविधा वर्गीकरण भी उपलब्ध होते हैं।[3] सर्वप्रथम आचार्य यास्क ने पदों को चार श्रेणियों में विभक्त किया है - नाम, आख्यात, उपसर्ग, निपात।[4] अधिकांश विद्वानों को पद का चतुर्धा विभाजन ही मान्य है।[5] आचार्य शौनक ने क्रम भेद से पदों के चार विभाग उपसर्ग, निपात, नाम और आख्यात वर्णित किये हैं।[6] प्रस्तुत आलेख में ऋग्वैदिक अनुक्रमणियों के अनुसार 'नाम' पद का विवेचन किया जा रहा है।

निरूक्त में द्रव्याभिधान करने में समर्थ पद को नाम पद से अभिहित किया गया है।[7] सत्त्वम् शब्द की व्युत्पत्ति 'सीदत: गुण क्रिये यस्मिन् तत् सत्त्वम्' की जाती है कैयट ने गुण और क्रिया के अधिकरण को सत्त्व कहा है।[8]

नामन् शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार की जाती है - ''म्नायते अभ्यस्यतेनम्यतेऽभिधीयते ऽर्थोऽनेनेति: अथवा म्नायते अभ्यस्यते यत् तत् इन अर्थो में अभ्यासे धातु से नामन् सीमन् व्योमन् रोमन् लोमन् पापमन् धामन''[9] औणादिक सूत्र द्वारा मनिन् प्रत्यय होने पर 'म्ना' के मकार का निपातनात् ना भाव होने पर 'नामन्' नपुंसकलिङ् शब्द की व्युत्पत्ति होती है। कोशकारों ने नाम शब्दों को उणाद्यन्त, कृदन्त, तद्धितान्त, समासज तथा शब्दानुकरण रूप पॉच प्रकार का माना है।[10]

आचार्य शौनक का विचार है कि जब धातु से कृत् प्रत्यय किया जाता है तब धातु (भाव) संख्या, विभक्ति, व्यय लिंग आदि से युक्त हो जाती है और द्रव्य अर्थात् नाम के रूप में उपलक्षित होती है।[11] ''महर्षि पतंजलि ने भी इसी प्रकार के विचार व्यक्त किये है।[12]

नाम शब्द के सम्बन्ध में ऋग्वेदानुक्रमणी में उल्लेख मिलता है कि नाम शब्द प्रधान अर्थ (क्रिया) के प्रति अपने अर्थ को झुका देते है अत: उन्हें नाम कहते है। उनको कारक भी कहते है क्योकि वे क्रिया को करते है।[13] दुर्ग ने भी इसी प्रकार के भाव व्यक्त किये है।[14] एक फल के साधक कारकों के आगे-पीछे होने वाले परिस्पन्दन को लोक में क्रिया कहा जाता है।[15]

नाम पदों का मुख्याधार द्रव्यगत क्रिया को

✍ रीडर, संस्कृत विभाग, आर्य कन्या महाविद्यालय, हरदोई

माना गया है। जब नाम का अर्थ संज्ञा होता है इसमें आशी: वागनुकृति, अर्थ वैरूप्य और क्रिया चार आधार बनते हैं।[16] शौनक ने सभी नामों को कर्म द्वारा उत्पन्न माना है।[17] इस सम्बन्ध में वेंकट माधव ने ऋग्वेदानुक्रमणी में स्पष्ट शब्दों में लिखा है कि जिन उच्चरित शब्दों से द्रव्य का बोध होता है वे नाम है यथा अग्नि, वायु तथा अश्विन।[18] इसी प्रकार के विचार शौनक ने भी व्यक्त किये हैं।[19]

नाम शब्दों पर विस्तार से विचार करते हुए माधव ने ऋग्वेदानुक्रमणी में लिखा है कि जिन शब्दों द्वारा पृथक्-पृथक् अर्थों में आठ विभक्तियों का प्रयोग किया जाता है तथा जो लिंग संख्या से युक्त होता है वह नाम है।[20] विभक्तियों के अर्थ क्रमश: निर्देश, कर्म, करण, प्रदान, अपकर्षण, स्वाम्यर्थ तथा अधिकरण बताये गये हैं।[21] बृहद्देवता में भी इसी प्रकार का उल्लेख मिलता है।[22]

अत: नाम वह है जो क्रिया और अव्यय को छोड़कर अर्थवान् पदराशि के रूप में किसी भी भाषा में प्रयुक्त किया जाता है। अत: विद्वान लिंग संख्या, वचनादि से युक्त पद को ही नाम मानते हैं।

बृहद्देवता में नामकरण का आधार:- बृहद्देवता में आचार्य शौनक ने नामों की उत्पत्ति पर बड़े ही सहज भाव से प्रकाश डाला है। प्रारम्भ में आचार्य शौनक ने वैदिक ऋषियों तथा अन्य नामों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में प्रश्न उठाया है कि इन नामों की उत्पत्ति कितने कर्मों से होती है?[23] तदुपरान्त स्वयं प्रश्न का उत्तर देते हुए नामकरण के नौ आधार प्रस्तुत किये हैं। जिसमें नैरूक्त, श्वेतकेतु, तथा गालव के विचारों को भी उद्घृत किया है।[24] उन्होंने निवास कर्म, रूप, मंगलत्व, वाच् आशीष, यदृच्छा, उपवसन, आमुष्याण को नामकरण का आधार बताया है।[25]

निवास :- निवास के आधार पर मनुष्यों के नाम पड़ जाते हैं यथा शालातुर के निवासी होने के कारण पाणिनि शालातुरीय कहलाये।

कर्म :- किसी कर्म विशेष को करने के कारण उस क्रिया के वाचक धातु से नाम निष्पन्न हो जाते हैं वर्धन (काटने) के कारण वर्धाकि नाम पड़ा। ब्राह्मण क्षत्रिय आदि वर्णों के नाम भी तत्तत क्रियाओं के आधार पर ही पड़े हैं।

रूप :- रंग तथा आकृति के आधार पर भी नामकरण हो जाता है यथा काले वर्ण के कारण कृष्ण, श्याम तथा आकार के कारण वामन आदि नाम लोक प्रसिद्ध हैं।

मंगल :- कल्याण की भावना से देवताओं के नाम पर नाम भी लोक में दृष्टिगोचर होते हैं यथा इन्द्रदेव, अग्निदेव, सरस्वती आदि।

वाक् :- विशेष प्रकार की बोली के कारण भी नाम पड़ जाता है यथा काँ काँ बोलने से कौआ संस्कृत में काक कहलाता है।

आशी :- शुभकामना प्रकट करने के लिये भी शुभ शब्द से नामकरण किया जाता है। यथा-निर्धनता से उत्पन्न पुत्र का नाम सेठ करोड़ीमल रखना आदि।

यदृच्छा :- स्वेच्छा से कोई भी नाम रख लेना। यथा-संस्कृत में बहुपरिचित डित्थ डवित्थ आदि तथा लोक में टिंकू, पिंकी आदि।

उपवसन :- स्वभाव के कारण पड़ने वाले नाम इस श्रेणी के अन्तर्गत आते है यथा बिल्व फल खाने के स्वभाव वाले का नाम विल्वाद पड़ जाता है।

आमुष्याण :- माता पिता के गोत्र के आधार पर भी नामकरण पाया जाता है यथा-जमदग्नि का पुत्र जामदग्न्य, दशरथ पुत्र दाशरथि, वसुदेव पुत्र वासुदेव

इसके उदाहरण हैं।

तत्पश्चात् शौनक ने यास्क गार्ग्य और रथीतर के मतों का उल्लेख किया है। उनके अनुसार आशीष अर्थवैरूप्य, वाक् और क्रिया ही नामकरण के आधार हैं।[26] वस्तुतः शौनक का अभिप्राय है कि सभी नामों का आधार कर्म अर्थात् क्रिया है। आशीष रूप और वाच्यादि की उत्पत्ति कर्म से ही होती हैं।[27] यदृच्छा, स्वभाव के कारण तथा अमुक का पुत्र होने के कारण भी जो नामकरण होता है यह भी कर्म ही है।[28] सभी प्राणियों की उत्पत्ति कर्म से हुई है, कर्म के कारण ही द्रव्य परस्पर संयुक्त होते हैं प्रत्येक व्यक्ति वस्तुतः किसी न किसी स्थान पर ही अस्तित्व में आता है[29] स्वेच्छा से रखे गये नाम भी किसी न किसी स्थान पर ही रखे जाते हैं। उनका भी आधार किसी न किसी कर्म की समानता ही होता है।[30] कोई भी अस्तित्व कर्म रहित नहीं है और न ही कोई नाम ऐसा है जो निरर्थक है। नाम कर्म से निष्पन्न होते हैं।[31] मांगलिकता की दृष्टि से और वस्तु के स्वभाव की दृष्टि से रखा गया नाम कल्याण कामना ही है।[32] जब किसी व्यक्ति का मंगल सूचक नाम रखा जाता है तब यह भावना होती है कि यदि निन्दित नाम रखा गया तो वह दीर्घजीवी कैसे हो सकेगा।[33]

बृहद्देवता के अध्ययन से निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि अति प्राचीन काल से नामकरण के नौ आधार थे। शौनक नामकरण के सभी आधारों के मूल में कर्म को ही मानते हैं। दूसरे शब्दों में यदि यह कहा जाय कि आचार्य शौनक सभी नामों को आख्यातज मानते हैं तो अनुचित न होगा। क्योंकि उपर्युक्त नामकरण का प्रत्येक आधार किसी न किसी रूप में कर्म से संयुक्त है।

सन्दर्भ

1. द्रष्टव्य दुर्ग निरूक्त वृत्ति 1/1/8
2. अर्थाभिधायि पदम् पद्यते गम्यते ज्ञायते ऽर्थो ऽनेनेति पदम्। वाजसनेयि प्रातिशारव्य 3/2 वर्ण संघातः पदम्। कौटिल्य अर्थ शास्त्र 2/10/18
   वर्ण संघातज पदम् । बृहद्देवता 2/117
3. अष्ठाध्यायी 1/4/4य साहित्यदर्पण 2/4य काव्य प्रकाश 2/8
4. चत्वारि पदजातानि नामाख्याते चोपसर्ग निपाताश्च निरूक्त 1/1/8
5. ऋग्वेद प्रातिशारव्य 12/17य वाजसनेयि प्रातिशारव्य 1/1 ऋग्वेदानुक्रमणी 2/1/2
6. उपसर्गां निपातश्च नामचाख्यातमित्यपि। बृहद्देवता 1/39
7. सत्त्वम् प्रधानानि नामानि। निरूक्त 1/13
8. द्र0 कैयट प्रदीप महाभाष्यम् 1/4/57
9. अष्टाध्यायी उणादिगण सूत्र सं0 590
10. वाचस्पत्यम् खण्ड 5 पृ0 4040य हलायुधा कोश पृ0 387
11. क्रियाभिनिर्वृत्ति वशोपजातः कृदन्त शब्दाभिहितो यदा स्यात् संख्याविभक्त्यव्ययलिंग् युक्तो भावस्तदा द्रव्यमिवोपलक्ष्यः बृहद्देवता 1/45
12. कृदभिहितो भावो द्रव्यवद् भवति। महाभाष्य 2/2/19य3/1/97
13. नामानि नमयन्त्यर्थ प्रधानमिति नामता कारकाणि च तान्याहुः क्रियां कुर्वन्ति तानिहि ऋग्वेदानुक्रमणी 2/1/6
14. निरूक्त दुर्ग टीका 1/1
15. कारकाणां परिस्पन्दः फलस्यैकस्य साधकः। लोके पूर्वापरी भूतः क्रियेति व्यपदिश्यते।। ऋग्वेदानुक्रमणी 2/1/7
16. बृहद्देवता 1/26

17. वही 1/27-31
18. शब्दैरूच्चरितैर्द्रव्यं यैरिह प्रतिपद्यते।
तन्नाम कवय: प्राहुरग्निर्वायु स्तथाश्विनो
ऋग्वेदानुक्रमणी 2/1/3
19. बृहद्देवता 1/42
20. अष्टौ यत्र प्रयुज्यन्ते नानार्थेषु विभक्तय:।
तन्नाम कवय: प्राहुलिंग सङ्ख्या समन्वितम्।।
ऋग्वेदानुक्रमणी 2/1/4
21. ऋग्वेदानुक्रमणी 2/1/5
22. बृहद्देवता 1/43
23. बृहद्देवता 1/23
24. नवभ्य इति नैरूक्ता पुराणा: कवच च ये।
मधुक: वेतकेतु च गालव चैव मन्वते।।
बृहद्देवता 1/24
25. बृहद्देवता 1/25
26. वही 1/26
27. सर्वाण्येतानि नामानि कर्मतस्त्वाह शौनक:।
आशी रूपं च वाच्यं च सर्व भवति कर्मत:।।
बृहद्देवता 1/27
28. बृहद्देवता 1/28
29. वही 1/29
30. वही 1/30
31. नाकर्मकोऽस्ति भावो हि न नामास्ति निरर्थकम्।
नान्यत्र भावान्नामानि तस्मात्सर्वाणि कर्मत:।।
बृहद्देवता 1/31
32. बृहद्देवता 1/32
33. वही 1/33

प्रकृति से मानव को कुछ चीजें उपहार में मिली हैं, झरनों की कल-कल की आवाज, चिड़ियों की चहचहाहट कोयल की मधुर कूक जहाँ हृदय को शांति प्रदान करती है। वहीं संगीत की सुमधुर स्वर साधना जहाँ मानव में अनेक असाध्य रोगों से मुक्ति दिलाने के साथ उसमें उमंग, उत्साह तथा कार्यक्षमता बढ़ाने के साथ ही आनन्द की अखण्ड बढ़ोत्तरी करते हैं। वास्तव में यदि देखा जाये तो ध्वनि का रिश्ता मानव की प्रकृति में प्रारम्भ से ही रहा है। पशु-पक्षी, कीट-पतंगें, पेड़-पौधों, वर्षा, नदियां, झरने बादल आदि सब किसी न किसी प्रकार की आवाज से जुड़े होते हैं। हमारी दिनचर्या के साथ आज इन आवाज़ों का सम्बंध घनिष्ट रूप से जुड़ गया है जैसे एलार्म की आवाज जानवरों की आवाज, सड़कों पर यातायात बाइक, कार, ट्रक एवं अन्य वाहनों का आना जाना। और इसके साथ घर पर मनोरंजन के साधन (रेडियो, टी.वी., टेपरिकार्डर, डेस्क, कम्प्यूटर) आदि हैं। यही आवाजें जब सामान्य आवाजों से तेज हो जाती हैं तो वह हमें चुभने लगती हैं अर्थात् 'अवांछित ध्वनि को शोर कहा जाता है। मनुष्य अथवा कोई भी प्राणी जब भी कोई कार्य करता है अथवा किसी प्रकार की कोई अभिव्यक्ति करता है तो उससे वायुमण्डल पर दबाव पड़ता है और वायु तरंगे उत्पन्न हो जाती हैं जिससे आवाज आती है यही आवाज ध्वनि कहलाती है। दूसरे शब्दों में कहें तो 'ध्वनि प्रदूषण मानव के लिए असहनीयता एवं अनाराम की उस दशा को व्यक्त करता है जो विभिन्न स्रोतों से निकले शोर द्वारा उत्पन्न होती हैं। ध्वनि अंग्रेजी भाषा के Noise एवं लैटिन भाषा के Nau sea से बना है जिसका अर्थ होता है कम्पन करना। अर्थात् ध्वनि कम्पन से ही उत्पन्न होती है। यही ध्वनि जब अपनी उच्च सघनता के कारण शोरगुल में परिवर्तित हो जाती है। तो वह मानव में चिड़चिड़ापन, बोलने में व्यवधान, सुनने में हानिकारक तथा कार्य कुशलता में ह्रास उत्पन्न करती है। यही ध्वनि प्रदूषण कहलाता है। अनिच्छापूर्ण ध्वनि जो मानवीय सुविधा तथा गतिशीलता में हस्तक्षेप करती है अथवा प्रभावित करती है, ध्वनि प्रदूषण है। किसी भी स्रोत से निकलने वाली ध्वनि प्रदूषक बन जाती है जब वह असहाय हो जाती है। बिना मूल्य की अथवा अनुपयोगी ध्वनि, ध्वनि प्रदूषण है। इस दृष्टि को देखते हुये आज पर्यावरण की समस्या व इसके संरक्षण, प्रबन्धन की दिशा में चिंतन व सार्वभौमिक सोच का होना लाजिमी हो गया है। कृपया उपरोक्त विषयों पर अपने सामाजिक ज्ञान, अनुभव की सीमाओं को ध्यान में रखते हुये शोधपूर्ण, तथ्यपरक एवं वैज्ञानिक तर्कों से युक्त शोध आलेख/लेख प्रेषित कर रचनात्मक सहयोग देने की कृपा करें।

निरुत्तर

राजनीतिक व्यवस्था के पतन की पराकाष्ठा

✍ डॉ. कमलेश कुमार सिंह

धर्म, दर्शन, कला, संगीत और विज्ञान के क्षेत्र में भारत शताब्दियों तक विश्व के मानचित्र पर चमकता रहा है। आज भी वह दुनिया के उन समृद्धतम और महानतम देशों में से एक है, जिसके पास प्राकृतिक संसाधनों और मानवीय शक्ति की कमी नहीं है। दुनिया भर में फैले भारतीय नागरिक व्यापार, चिकित्सा, इंजीनियरिंग तथा अन्य विभिन्न क्षेत्रों में सफलता के उच्चतम शिखर को छू रहे हैं। दुनियाभर के 70 प्रतिशत सिलीकान वैली पर भारतीयों का कब्जा है। भारत एक सुप्त महाशक्ति है, अगर वह जाग जाए तो विश्व की अर्थव्यवस्था पर जबरदस्त प्रभाव डाल सकता है, मगर आज हमारी राजनीतिक और आर्थिक व्यवस्था गहरे संकट से गुजर रही है। राजनीति का अपराधीकरण हो चुका है, और अब हमारी गिनती दुनिया के भ्रष्टतम देशों में होने लगी है। आजादी के 60 सालों में जैसी धोखाधड़ी भारतीय जनता के साथ की जा रही है, वैसी मिसाल शायद ही दुनिया के किसी अन्य देशों में देखने को मिले। जनता के धन को लूटने में राजनेता और नौकरशाह दोनों कोई कसर नहीं छोड़ रहे हैं। स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरांत वर्ष 1949 के जीप घोटाले से लेकर, यूरिया घोटाला, वोफोर्स घोटाला, चारा घोटाला, ताबुत घोटाला, टीवी घोटाला, अनाज घोटाला, सैन्य सुविधाओं में घोटालों इत्यादि का अपना अलग इतिहास है। कुल मिलाकर भारत की राजनीतिक व्यवस्था का घोर पतन हो रहा है। यहाँ चुनाव होते हैं, पर लोकतंत्र नही हैं क्योंकि जनता के प्रतिनिधि स्वार्थवश बिक जाते हैं। यहाँ कानून व्यवस्था लागू करने वाली मशीनरी है, पर व्यवस्था नहीं। अपराधीकरण, भ्रष्टाचार, साम्प्रदायिकता, जातिवाद और क्षेत्रवाद व्यवस्था पर हावी है।

राजनीति के अपराधीकरण का मुख्य कारण समाज के बुद्धिजीवियों की राजनीति के प्रति उदासीनता है, जिस पर राष्ट्रपति भी चिंता व्यक्त कर चुके हैं। न्यायालय ने भी चुनाव आयोग को आदेश दिया कि मतदाताओं के समक्ष उम्मीदवारों का आपराधिक रिकार्ड और सम्पत्ति का लेखा-जोखा प्रस्तुत करें। देश के हालात पर भारत के गृह सचिव, एन. एन. बोहरा ने 1995 ई. में जो रिपोर्ट सरकार को दी थी, उसमें राजनीति के अपराधीकरण पर पर्याप्त रोशनी डाली गयी। रिपोर्ट में कहा गया है कि 'माफिया संगठनों' का एक तंत्र देश में समानान्तर सरकार चला रहा है। जिसने राज्य के उपकरणों को अप्रासंगिक बना दिया है। इस रिपोर्ट में यह भी कहा गया है कि इन माफियां संगठनों का पिछले कुछ वर्षों में तेजी से विस्तार और विकास हुआ है, और कुछ ही सालों में इन्होंने नौकरशाहियों, स्थानीय स्तर पर कार्य करने वाले सरकारी कर्मचारियों, राजनीतिवाजों, मीडिया से जुड़े कुछ लोगों और गैर सरकारी क्षेत्रों में महत्वपूर्ण स्थानों पर मौजूद लोगों से गहरे सम्पर्क बना लिये हैं। इनमें से कुछ संगठनों के अन्तर्राष्ट्रीय सम्पर्क भी हैं, जिनके सम्बन्ध विदेशी गुप्तचर एजेंसियों से है। अन्तर्राष्ट्रीय सम्पर्क रखने वाले ये संगठन तस्करी, हवाला, कबूतरवाजी, जाली मुद्रा और अन्य घातक समानान्तर अर्थव्यवस्था से सम्बन्धित गतिविधियों में लगे हुये हैं।

इन संगठनों ने पर्याप्त आर्थिक शक्ति,

✍ विभागाध्यक्ष, राजनीति विज्ञान, के. ए. (पी. जी.) कालेज, कासगंज, कांशीरामनगर (उ. प्र.)

बाहुबल और सामाजिक प्रतिष्ठा अर्जित कर ली है। इन्होंने सरलतापूर्वक सरकारी मशीनरी को भ्रष्ट बना दिया है। इनका प्रभाव इतना बढ़ जाता है कि जांच एजेन्सियों का महत्व ही समाप्त हो जाता है। न्याय व्यवस्था के सदस्य भी इसके शिकंजे से बचे नहीं हैं। राजनीति और समाज के अपराधीकरण के बारे में की गयी, भयानक टिप्पणी पर किसी भी राजनीतिक दल ने कोई सक्रियता नहीं दिखाई। मानों सभी एक ही थाली के चट्टे-बट्टे हैं और अपने-अपने ढंग से सत्ता के सुख भोगने में लगे हुये हैं। पारदर्शी व भ्रष्टाचारमुक्त शासन का दावा करने वाले सभी राजनैतिक दलों में अपराधियों का प्रभाव दिनों-दिन बढ़ता जा रहा है, क्योंकि अपराधी राजनीतिक प्रभाव से अपने मुकदमों को प्रभावित करने लगते हैं, विधायकों और सांसदों के विशेषाधिकारों के कारण पुलिस और प्रशासन के भय से वे मुक्त हो जाते हैं, साथ ही अपराधियों को राजनीतिक नेताओं की प्रतिस्पर्धा से बड़े पैमाने पर धन भी मिलने लगता है। आज तो राजनीतिक पार्टियां आपराधिक पृष्ठभूमि के लोगों को मंत्रिमण्डल में भी स्थान देने लगी हैं।

सत्ता की इस बंदरबांट में सभी राजनीतिक दल समान रूप से भागीदार हैं। अपराधी जिनके हाथ खून से रंगे हुये हैं, या घोटालों में संलिप्त रहे हैं, वे आज सभी राजनीतिक दलों में महत्वपूर्ण स्थान पर पहुँच चुके हैं। सवाल यह उठता है कि जिन लोगों पर गम्भीर आरोप हैं, वे चुनाव कैसे जीत जाते हैं ? जब तक कोई व्यक्ति अदालत द्वारा दोषी न ठहरा दिया जाये, तब तक कानून उसे चुनाव लड़ने से रोक नहीं सकता। इसी कानून का फायदा उठाकर ये प्रभावशाली आपराधिक पृष्ठभूमि के लोग कानून व्यवस्था को भी पंगु बनाकर चुनाव लड़ते रहते हैं। अचरज और हैरानी की बात तो यह है कि सभी प्रमुख राजनीतिक पार्टियां भी आपराधिक पृष्ठभूमि वाले प्रत्याशियों की तलाश में रहते हैं, क्योंकि इनकी चुनाव जीतने की क्षमता को वे जानते हैं। इस राजनीतिक भ्रष्टाचार के विस्तार से ही राजनीति के अपराधीकरण की समस्या पैदा हुई है, स्थिति इतनी अधिक निराशाजनक हो गयी है कि यहां हर व्यक्ति का अपना निजी एजेण्डा है, जिसे बस उसे लागू करने का फिक्र है। नैतिक पतन अपनी पराकाष्ठा पर पहुंच चुका है और सामाजिक जीवन का शायद ही कोई क्षेत्र प्रदूषित होने से बचा हो। जो इस तंत्र से जुड़े हुये हैं, उन्होंने परस्पर स्वीकार्य ऐसे उपाय निकाल लिये हैं, जिनसे यह सुनिश्चित हो जाये कि राजनीतिक ढांचे, प्रशासनिक सेल और जांच करने वाली एजेन्सियों का कार्य कहीं रूके नहीं। वास्तव में आज समाज में हम जो देख रहे हैं वह एक नरभक्षी समाज है जिसमें भ्रष्ट और कानून के भक्षक निराश और अभागे लोगों का शिकार कर रहे हैं।

इस व्यवस्थागत प्रशासनिक पतन के लिये सबसे अधिक कांग्रेस पार्टी ही जिम्मेदार है, क्योंकि सबसे अधिक समय तक वही सत्ता पर काबिज रही हैं, परन्तु अफसोस की बात तो यह है कि अन्य राजनीतिक पार्टियां भी कुछ नया नहीं कर पा रही है। उसने तमाम परिस्थितियों से समझौता कर लिया है। भ्रष्टाचार और लूट-खसोट की होड़ में सभी राजनैतिक दलों के नेताओं ने अपनी तिजोरियां भरीं, विदेशी बैंकों के खातों में भारी रकमें जमा कीं, घोटाले पर घोटाले किये और अब जब देश दिवालियेपन के कगार पर आ गया तो, अपने संसाधनों पर कोई नीति बनाने के बजाय, देश को आर्थिक सुधार के नाम पर बहुराष्ट्रीय कम्पनियों, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष, विश्वबैंक और अमेरिका नीति निर्माताओं के हाथ गिरवी रख दिया है। अपने विशाल बाजार को विदेशी कम्पनियों द्वारा उपभोग की सामग्री बेचने और शोषण करने के लिये मुक्त

कर दिया है, और देश को विदेशी दया पर आश्रित कर दिया है, जो अपनी कमाई का एक छोटा सा हिस्सा इन भ्रष्ट राजनेताओं और अधिकारियों की ओर फेंककर देश की पूंजी को अपने-अपने देशों में ले जा रही हैं। कोई यह देखने वाला नहीं है कि कहाँ क्या हो रहा हैं ? और आर्थिक उदारवाद का आखिर लक्ष्य क्या है ? कुल मिलाकर इन परिस्थितियों में दो ही नतीजे निकलते हैं। पहला यह कि सभी राजनीतिक दल केवल अपने राजनीतिक भविष्य के प्रति समर्पित हैं। उन्हें सार्वजनिक हितों से कोई लेना-देना नहीं है। दूसरा यह कि कोई भी राजनीतिक दल जनता के हित के लिये तैयार किये गये नीतिगत कार्यक्रम को लागू करने के लिये खुद में सुधार लाने के लिये गम्भीर नहीं है। आज सभी पार्टियों के सांसद और विधायक सत्ता की बंदरबांट में लगे हुये हैं, सरकारी विभागों के बंटवारे को लेकर खींचतान चल रही है सभी मलाईदार विभाग को प्राप्त करना चाहते हैं और जो पद नहीं प्राप्त कर पाते वे तैनाती व स्थानान्तरण में लाखों का लेन-देन करने लगते है।

अब राजनेताओं की मांगे इस कदर बढ़ गयी हैं कि छोटे मोटे तबादलों से वे खुश नहीं होते। उन्हें अपने जिले में मनपसन्द डी. एम., एस. एस. पी. और इंजीनियर चाहिये होता है। कभी-कभी एक राजनेता तबादला करवाता है तो दूसरा उसे रोकवाने का प्रयास करता है। इतना ही नहीं जरूरत पड़ने पर वे अपनी कीमत भी वसूलने में कोई संकोच नहीं करते। यही कारण है कि तमाम विकास योजनाओं का लाभ राजनेता, अधिकारी, इंजीनियर, बैंक मैनेजर और दलाल उठा रहे हैं। यही कारण है कि सभी राजनीतिक पार्टियाँ अपना औचित्य आज खो चुके हैं, जहां जनता अपने चुने हुये प्रतिनिधियों को घृणा और तिरस्कार से देखने लगे, भ्रष्टाचार, तस्करी, हिंसा, अपराधों के लिये नेताओं, माफियाओं, पुलिस और उच्चाधिकारियों के सम्बन्धी चर्चा के विषय बन गये हों, वहाँ इस संकट का समाधान बिना व्यवस्था के बदले कैसे हो सकता है। यह विचार का विषय है। अब यदि कोई राजनीतिक पार्टी सचमुच में दूसरी पार्टियों से भिन्न है और उसे इस राष्ट्र से प्रेम है तो इस स्थिति को बदलना होगा, हमें कोई न कोई निगरानी व्यवस्था उसी में बनानी होगी, जो भ्रष्टाचार, अनुशासनहीनता, जातिवाद, क्षेत्रवाद जैसी विभक्तकारी प्रवृत्तियों का मुकाबला कर सके ताकि सरकारी योजनाओं का लाभ आम जनता और अन्तिम व्यक्ति को मिल सके। इसके लिये जरूरी है कि भ्रष्टाचार के खिलाफ केन्द्रीय सर्तकता आयोग ने जो अभियान शुरू किया है उसे ईमानदारी से लागू किया जाये। लोकपाल विधेयक को मंजूरी देकर लागू किया जाना चाहिये। राज्यों में भी ऐसी कारगर व्यवस्था बनायी जाये जिससे भ्रष्टाचारी दण्डित हो सके, भ्रष्टाचार के खिलाफ कार्यवाही ही नहीं होनी चाहिये, वरन् जनता को लगना चाहिये कि भ्रष्टाचारी सचमुच में दण्डित किये गये हैं। यह कोई मुश्किल कार्य नहीं है यदि हमारे शीर्ष राजनेताओं की नीयत साफ है, तो इस भ्रष्टाचार के कुचक्र को तोड़ा जा सकता है। इसके लिये स्पष्ट व कठोर नियम, पारदर्शिता और कठोर सजा की जरूरत है।

आज सभी राजनीतिक पार्टियों के विधायकों, सांसदों और मंत्रियों को अपनी सम्पत्ति घोषित करने के साथ-साथ अपनी जांच करवाने के लिये तैयार रहना चाहिये, तभी वह सरकारी अधिकारियों और कर्मचारियों के भ्रष्टाचार पर प्रभावी रोक लगा सकेंगे। भ्रष्ट तरीके से अर्जित की गयी सम्पत्तियों को जब्त करने के लिये बनाये गये कानून का उपयोग सख्ती और शीघ्रता के साथ किया जाना चाहिये। इससे बड़े अधिकारियों और

ठेकेदारों के भ्रष्टाचार पर रोक लगायी जा सकती है और हमारे शासक जिस दिन से भ्रष्टाचार पर रोक लगाने में सफल होंगे, उसी दिन से राजनीति से अपराधियों का सफाया होने लगेगा। यदि प्रस्तावित संघीय व्यवस्था के अन्तर्गत सरकार हुकुमत कम, निगरानी अधिक करें तो यह काम हो सकता है। सरकार का काम कानूनों के उल्लंघन को रोकना होना चाहिये।

पृथ्वी पर संतुलित जीवन के लिए, वायु, भूमि, जल, वनस्पति, पेड़-पौधों, मानव सब मिलकर पर्यावरण बनाते हैं। पृथ्वी पर जबसे मनुष्य, पशु-पक्षी और जीव तथा जीवाणु उपभोक्ता के रूप में प्रकट हुए तब से लेकर आज तक यह चक्र निरन्तर अवाधि गति से चला आ रहा है। यहाँ पर जिन्हें जितनी आवश्यकता होती है वह उन्हें प्राप्त हो जाता है शेष जो बच रहता है वह प्रकृति आगे के लिए अपने पास संरक्षित कर लेती है। अथर्ववेद के पृथ्वी सूक्त में लिखा गया है- ''हे धरती माँ, जो कुछ मैं तुझसे लूंगा, वह उतना ही होगा, जिसे तू पुनः पैदा कर सके। तेरे मर्मस्थल पर या तेरी जीवन शक्ति पर कभी आघात नहीं करूंगा। यही नहीं ऋग्वेद की ऋचाओं में भी पर्यावरण के तत्वों - पृथ्वी, जल, आकाश, वायु के प्रति सभी ऋषि नतमस्तक होकर प्रणाम करते हैं अर्थात् भारत में नदियों को माँ तुल्य स्थान एवं सम्मान दिया गया है। आज संसाधानों के अंधाधुंध के कारण यह पूजन अर्चन की परम्परा कोरी कल्पना सी लगती है। भूमण्डलीकरण एवं बाजारीकरण के इस भौतिक युग में मानव ने प्रकृति पर विजय प्राप्त करने के लिए अनेक सुख सुविधाएं एवं वैज्ञानिक उपलब्धियां अर्जित कीं साथ ही बढ़ती आबादी की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु औद्योगिक क्रान्ति का सहारा लिया गया, यह वह निर्णायक समय था जब हमारी प्रकृति का सामान्य सा रूप विखण्डित होने लगा। हम औद्योगिक क्रान्ति और हरित क्रान्ति के योद्धा तो कहलाये परन्तु इसके पीछे हमारा आकाश एवं जमीन दोनों क्षतिग्रस्त हो गये और पंच तत्व का यह भैरव मिश्रण अपनी स्वच्छता खोने लगा। इससे हमारे परितंत्र एवं पारिस्थितिकी असन्तुलित हो गये। वन कटने लगे, उपजाऊ भूमि पर आवास बनने लगे, बड़े-बड़े जंगल साफकर बांधों की योजना बनी और न जाने कितने ऐसे प्रयोग शुरू हो गये जो मानव और प्रकृति के अनुकूल नहीं थे जिससे सामान्य जीवन में अनेक परिवर्तन परिलक्षित होने लगे। पर्यावरण हितैषी जीव-जन्तुओं की बहुत सी प्रजातियाँ विलुप्त होती गयीं और जो शेष बची हैं वे विलुप्त होने के कगार पर खड़ी हैं। सफाईकर्मी गिद्ध विलुप्त होते जा रहे हैं। समुद्र, नदी, तालाब, जंगल और घास के मैदान का परितंत्र विनाश की ओर अग्रसर है यही नहीं वैश्विक स्तर पर प्राकृतिक असंतुलन के स्पष्ट नजारे दिखने लगे हैं क्योंकि वैश्विक उष्णता से ऋतु चक्रों के सन्तुलित परिचालन में व्यवधान उत्पन्न होने लगा है। हिमखण्ड पिघलने लगे हैं। समुद्र अपनी वर्जनाएं तोड़ रहा है उसका जल स्तर उछाल मार कर संकट की ओर सीधा संवाद कर रहा है अर्थात जल प्रलय का आमंत्रण-पत्र तैयार हो गया है आकाश में ओजोन परत अपना धैर्य खो रही है। साथ ही अन्य प्राकृतिक आपदाएं (सुनामी) कहर ढाहने लगी हैं। पर्यावरण के इस प्रदूषण ने हमारे जनमानस के ऊपर अनेक असाध्य रोगों का आक्रमण शुरू कर दिया है। युद्ध की रणभेरी बज चुकी है। यदि इन परिस्थितियों से मनुष्य प्रकृति के प्रति सचेत और सावधान नहीं हुआ तो भयंकर से भयंकर परिणाम उसके दहलीज पर दस्तक देते नजर आयेंगे। आज पर्यावरण की समस्या व इसके संरक्षण, प्रबन्धन की दिशा में चिंतन व सार्वभौमिक सोच का होना लाजिमी हो गया है। कृपया उपरोक्त विषयों पर अपने सामाजिक ज्ञान, अनुभव की सीमाओं को ध्यान में रखते हुये शोधपूर्ण, तथ्यपरक एवं वैज्ञानिक तर्कों से युक्त शोध आलेख/लेख प्रेषित कर रचनात्मक सहयोग देने की कृपा करें।

समाजवादी अवधारणा : एक वैचारिक आयाम

✍ डॉ. अजय सिंह

समाजवाद (Socialism) शब्द 'Socius' से लिया गया है, तात्पर्य यह है कि अधिक से अधिक व्यक्तियों के हित से सम्बन्धित आचरण करना है। इस प्रकार समाजवाद का सम्बन्ध समाज के सुधार, हित अधिक व्यक्तियों के कल्याण के साथ व्यक्तिगत हित करना है।

समाजवाद व्यक्तिगत सम्पत्ति, अधिकार एवं वर्ग वैशिष्ट्य के विरूद्ध एक आन्दोलन है। समाजवाद का जन्म राजतंत्र एवं व्यक्तितंत्र के कुशासन के कुप्रभावों के विरूद्ध आक्रोश के परिणामस्वरूप प्रत्येक सामाजिक नागरिक को समान अधिकारपूर्वक जीने के पक्ष में एक प्रतिक्रिया है।

गार्नर ने समाजवाद को स्पष्ट करने के लिये निम्नांकित तर्क दिये -

1. आर्थिक संगठन की वर्तमान व्यवस्था में श्रम करने वाला व्यक्ति अपने परिश्रम का पर्याप्त फल प्राप्त नहीं करता। उसका अधिकांश भाग पूँजी को बढ़ाने अथवा उनकी सेवाओं के लिये भुगतान में चला जाता है, जो श्रम के नियोजन का निर्देशन तथा निरीक्षण करते हैं अथवा यह सट्टाबाजों या बिचौलियों के जेब में चला जाता है, किन्तु श्रमिकों को बहुत कम भाग मिलता है, जो वास्तविक उत्पादक है। संक्षेप में, वर्तमान व्यवस्था के अधीन धनवानों के हितों में सामंजस्य (समाज) का संगठन किया जाता है तथा इससे धन व अवसर की गंभीर असमानताएँ पैदा होती हैं।

2. उत्पादन के साधनों पर उन थोड़े से लोगों का एकाधिकार कायम होता जा रहा है, जो जनता का शोषण करते हैं। अतः राज्य को सम्पूर्ण भूमि तथा पूँजी अथवा उत्पादन के साधनों को अपने नियंत्रण में लेना चाहिये, जिनका प्रयोग इस समय केवल स्वामित्वधारी वर्ग के लाभ के लिये किया जा रहा है।

3. समाजवाद का सिद्धान्त न्याय तथा अधिकार के सिद्धान्तों पर आधारित है। भूमि तथा उसमें छिपी खनिज सम्पत्ति पर सबका अधिकार होना चाहिये, कुछ का नहीं ये सब मानवजाति की प्रकृति की देन है तथा उनका उपभोग थोड़े से लोगों द्वारा नहीं होना चाहिये, जिस तरह लोग सूर्य की धूप, वायु तथा जल का असमान प्रयोग नहीं कर सकते, यही बात उत्पादन के उपकरणों के सन्दर्भ में भी सत्य है।

4. वर्तमान व्यवस्था के अधीन प्रतियोगिता न केवल अन्याय तथा छोटे प्रतियोगी को कुचलने में प्रतिफलित होती है, बल्कि इसमें सेवाओं के दोहरेपन के कारण विशाल आर्थिक अपव्यय तथा फिजूलखर्ची भी सन्निहित है। प्रतिबन्धहीन प्रतियोगिता की व्यवस्था के कारण कम वेतन, अधिक उत्पादन, सस्ते माल तथा बेरोजगार मजदूरों की दशाएं पैदा होती है। इस प्रकार की स्थिति का एकमात्र उपचार प्रतियोगिता का निराकरण तथा इसके स्थान पर सहकारिता के सिद्धान्त की स्थापना जिसमें अवसर व पुरस्कार की समानता व उत्पादन की मितव्ययिता के गुण उपलब्ध होंगे।

✍ रीडर, राजनीति शास्त्र, हंडिया (पी. जी.) कालेज, हंडिया

5. समाजवाद का सिद्धान्त राज्य की प्रकृति के सावयव सिद्धान्त के अनुकूल है, जो यह बताता है कि समाज केवल व्यक्तियों की भीड़ नहीं, बल्कि प्राणवान शरीर के समान है, कुछ की उपेक्षा सबका कल्याण प्रधान है तथा अधिकतम लोगों के हित साधन के लिये, व्यक्ति विशेष के कल्याण को अनेकों के कल्याण के अधीन होना चाहिये।

6. कुछ क्षेत्रों में राज्य ने प्रतियोगिता को समाप्त करके उसके स्थान पर सहकारिता के सिद्धान्तों को शुरू किया है तथा एक औद्योगिक प्रबन्धक के रूप में इसकी सफलता प्रदर्शित की है, जिसमें सभी निष्ठावान तथा विचारशील लोग पूरी तरह संतुष्ट हैं।

7. सामूहिक स्वामित्व तथा प्रबंध व्यवस्था पूरी तरह प्रजातांत्रिक है। वास्तव में, समाजवाद प्रजातन्त्र का आर्थिक अनुपूरक भाग है, यह नैतिक तथा उपकारी दोनों सिद्धान्तों पर आधारित है तथा यही एकमात्र व्यवस्था है जिसके अन्तर्गत उत्पादन में कुशलता व न्याय की प्राप्ति हो सकती है और व्यक्तिगत चरित्र के समग्र सामंजस्यपूर्ण विकास के ध्येय को साकार किया जा सकता है।

समाजवाद के विषय पर एलेक्जेण्डर ग्रे ने इसकी निम्नांकित विशेषताएं बतायीं हैं -

1. शब्दों के सामान्य तथा विदित अर्थ के रूप में समाजवाद को साधारणतया व्यक्तिवाद के विरोधी रूप में जाना जाता है।

2. समाजवाद अधिकांश सम्पत्ति (यदि सारी न सही) पर निजी स्वामित्व की समाप्ति की मांग करता है तथा यह चाहता है कि इस प्रकार से हस्तान्तरित सम्पत्ति किसी ढंग से समग्र रूप में समाज के हाथों में समहित तथा उसी के द्वारा संचालित हो। यह व्यक्तिगत निजी सम्पत्ति को अस्वीकार करता है तथा इस बात की पुष्टि करता है कि राज्य के रूप में संगठित समाज सम्पूर्ण सम्पत्ति का स्वामी हो, सम्पूर्ण श्रम का निर्देशन करें तथा सभी उत्पादों के समान वितरण को अनिवार्य बना दें।

3. समाजवाद साध्यों को अपना लक्ष्य बनाता है तथा ऐसे उत्प्रेरकों से क्रियाशील होता है जो अन्ततः सामंजस्यपूर्ण नहीं हो सकते। मोटे तौर पर यह कहना अधिक गलत नहीं होगा कि समाजवाद के दो प्रमुख प्रेरणा स्रोत हैं। पहले यह विश्व में अन्याय के विरूद्ध प्रतिरोध है, निर्धनों के चेहरे को पिसते हुये तथा लोगों की दशाओं की भयानक असमानताओं को देखते हुये यह इस घृणापूर्ण यथार्थ की बजाए एक बेहतर विश्व की कामना करता है, जहाँ न्याय की विजय होगी, परन्तु समाजवाद वर्तमान प्रतियोगी विश्व की अकुशलता अव्यवस्था तथा अक्षमता के विरूद्ध भी प्रतिरोध है।

4. निर्विवाद रूप में समाजवाद स्वयं को एक मुक्तकारी शक्ति के रूप में प्रस्तुत करता है, इसका ध्येय सर्वहारा को उसकी जंजीरों से मुक्त करना है, तथा उन अधिकारों को सार्थक बनाना है जो वर्तमान स्थिति में प्रभावहीन तथा नाममात्र के हो सकते हैं।

इस प्रकार के तर्कों तथा कथनों का सार यह है कि समाजवाद ''व्यक्ति को उत्पादन के साधनों पर निजी स्वामित्व के रूप में स्वेच्छाचारी व सनकभरी आर्थिक शक्ति से प्राथमिक रूप में अपनी स्वतन्त्रता को पूर्ण साकार करने की चिन्ता में लीन समझता है। जैसा समाजवादी देखते हैं, व्यवहारिक समस्या यह है कि इस शक्ति को कैसे नष्ट अथवा उसे संशोधित किया जाये। उनका

विश्वास है कि उन्होंने उत्पादन व विनिमय के साधनों पर सामान्य स्वामित्व ने इसका समाधान ढूँढ लिया है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. जौहरी, जे. सी., 'आधुनिक राजनीति विज्ञान के सिद्धान्त' स्टर्लिंग पब्लिकेशन्स।
2. ग्रे, अलेक्जेण्डर, 'सोशलिस्टिक ट्रेडीशन' आक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस।
3. कोल, जी. डी. एच., 'सेल्फ गर्वनमेण्ट इन इण्डस्ट्री', आक्सफोर्ड युनि. प्रेस।
4. शुम्पीटर, जोसेफ, 'कैपिटलिज्म, सोशलिज्म एण्ड डेमोक्रेसी', आक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस।
5. जोड, सी. ई. एम., 'इन्ट्रोडक्शन टू मॉडर्न पोलिटिक्स थ्योरी, आक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस।
6. हैलोवेल, जे. एच., 'मेन करेन्ट्स इन मॉडर्न पोलिटिकल थॉट' मयूर पेपर वैक्स दिल्ली।
7. गार्नर, पोलिटिकल साइन्स एण्ड गर्वनमेन्ट' आक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस।
8. किर्कुप, 'सोशलिज्म इन थ्योरी एण्ड प्रैक्टिस', आक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस।

मानव जाति ने अपनी आवश्यकताओं एवं आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए अपनी पहुँच तक के समस्त प्राकृतिक संसाधनों का अधिकतम उपयोग किया है। वायु, जल, भूमि, वातावरण, जैव मंडल आदि मानव जीवन में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। आज की वैज्ञानिक प्रगति, प्रौद्योगिक उन्नति, आनुवांशिकी, कृषि, उद्योग आदि की उपलब्धता प्रकृति से ही संभव हो पायी है, किंतु मानव ने प्रकृति के अप्राकृतिक दोहन से इसके अस्तित्व पर ही प्रश्न चिन्ह खड़ा कर दिया है। यह सर्वविदित है कि जैवविविधता के उचित संरक्षण के लिए स्वच्छ पर्यावरण का होना अतिआवश्यक है, किन्तु वर्तमान में बढ़ते प्रदूषण के चलते कई प्राकृतिक जैव वनस्पतियों का अस्तित्व खतरे में पड़ गया है। संसाधनों के दोहन में सबसे बड़ी भागीदारी मनुष्य की ही रही है। अधिकाधिक भौतिक साधन प्राप्ति की प्रत्याशा में प्राकृतिक तौर पर उपलब्ध संसाधनों का मनमाना दोहन किया गया, जिसके परिणामस्वरूप सूखा, बाढ़, महामारी, भूकंप, भूस्खलन, ओजोन परत का नष्ट होना, ग्लोबल वार्मिंग, अकाल जैसी प्राकृतिक आपदायें नित्य विकराल रूप धारण करती जा रहीं हैं। अगर प्राकृतिक संसाधनों का दोहन इसी क्रम में चलता रहा तो पर्यावरण का मनुष्य पर से आवरण उठ जायेगा। ऐसे में पर्यावरण संरक्षण ही एकमात्र उपाय बचता है। पर्यावरण संरक्षण वर्तमान में विश्व के सम्मुख एक ज्वलंत समस्या बनता जा रहा है। वास्तव में देखा जाये तो पर्यावरण के संरक्षण का प्रश्न तभी से प्रारंभ हो चुका था जब मनुष्य ने प्रकृति का दोहन उसकी वहन क्षमता से अधिक मात्र में करना प्रारंभ किया और इसकी शुरूआत औद्योगिक क्रांति के साथ हो गयी। प्रकृति से करोड़ों वर्षों में निर्मित सौगातें हमने कुछ सौ वर्षों में ही निकालकर उसकी छाती को क्षतविक्षत कर दिया है। आज मनुष्य के सम्मुख अस्तित्व का प्रश्न सुरसा की तरह मुंह बाए खड़ा है। धरती के कवच ओजोन से लेकर पशु-पक्षी और पेड़-पौधों, सभी मानव की उपभोक्तावादी संस्कृति का शिकार होते जा रहे हैं। कटते पेड़, उजड़ते जंगल, धुंआ उगलती चिमनियां, धुएं का गुबार उड़ाते वाहन और विकास की इस अंधी दौड़ में आपके, हमारे और सबके द्वारा बढ़ती जा रही प्रकृति के प्रति उपेक्षा पर्यावरण संरक्षण की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करती है। संरक्षण की इसी चिंता में हमने कभी 'विश्व पर्यावरण दिवस' मनाया तो कभी 'पृथ्वी दिवस'। आज पर्यावरण की समस्या व इसके संरक्षण, प्रबन्धन की दिशा में चिंतन व सार्वभौमिक सोच का होना लाजिमी हो गया है। कृपया उपरोक्त विषयों पर अपने सामाजिक ज्ञान, अनुभव की सीमाओं को ध्यान में रखते हुये शोधपूर्ण, तथ्यपरक एवं वैज्ञानिक तर्कों से युक्त शोध आलेख/लेख प्रेषित कर रचनात्मक सहयोग देने की कृपा करें।

महिला सशक्तिकरण में स्त्री की भूमिका

✍ डॉ. शोभा पवार निंबालकर

भारत को आजाद हुए पचास वर्ष हो गये हैं। स्वातंत्र्योत्तर काल के बाद समाज और साहित्य दोनों में तीव्रता से परिवर्तन हुआ है। बीसवीं सदी का उत्तरार्द्ध इन विभिन्न आयामी परिवर्तित विचारधाराओं को लेकर चलता है। इन विचारधाराओं में महिला जीवन और दलित जीवन पर अधिक लेखन और चर्चा होती हैं। 1975 का वर्ष अन्तर्राष्ट्रीय महिला वर्ष के रूप में मनाया गया। विभिन्न सरकारी, गैर सरकारी नारी-मुक्ति संस्थानों में 1976-86 को 'अंतर्राष्ट्रीय महिला दशक' के रूप में चर्चा हुई। तेजी से बदल रहे परिवेश के फलस्वरूप साहित्य में इनका दखल हो रहा है। कई महिला संगठन क्रियाशील हुई हैं। 1989 में महिला-संगठनों में कुछ जागृति आई है। इन्होंने दहेज, बलात्कार तथा कामकाजी महिलाओं की समस्याओं पर ध्यान देना शुरू किया। इन संगठनों के द्वारा संघर्ष की कुछ नई नीतियाँ अपनाई गई थीं। इन संगठनों में 'स्वायत महिला संगठन' अधिक गतिशील और सक्रिय रहा। कहना आवश्यक नहीं है कि महिला आंदोलन का नेतृत्व शहर में अधिक होता है जबकि अन्य आंदोलनों में गरीब किसानों का योगदान होता है। आज देहात की अनपढ़ और अशिक्षित महिलाएँ भिन्न-भिन्न प्रकार के व्यवसाय करके, अन्य लोगों को कर्ज देकर अपनी स्थिति मजबूत कर रही हैं। आज उनमें आत्मविश्वास है कि वे भी किसी से कम नहीं हैं। 1975 के बाद वैश्विक धरातल पर स्त्रियों के आंदोलन में एक नया मोड़ आया वे अपनी जरूरते स्वयं पूरा करने में समर्थ बन रही हैं। पंचायत राज संस्थाओं में एक तिहाई सीट महिलाओं के लिए हैं। संसद में एक तिहाई सीटों के लिए 'महिला-आरक्षण' अभी चर्चा में है। सदी के उत्तरार्द्ध का साहित्य परिवेश से प्रभावित रहा है। कई प्रगतिशील विचारधाराओं, संस्थानों, मंचों तथा पत्र-पत्रिकाओं द्वारा इन विषयों को रखा जाने लगा। महिला के जीवन पर चिंतन इन अंतिम दशकों में पूरी ताकत के साथ किया गया है। इतिहास पर नजर डालें तो पाएंगे कि बाह्मणवाद का प्रभाव भारतीय समाज व्यवस्था पर होने के कारण सत्ता सम्पत्ति और समाज पर आधिपत्य बनाए रखने के लिए वेद ग्रंथों, स्मृतियों तथा शास्त्रों की रचना की गई जिसमें शूद्रों तथा महिलाओं को सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक सांस्कृतिक तथा आर्थिक स्तर पर गुलाम बना दिया गया है। वेदग्रंथ, मनुस्मृति, रामायण और महाभारत के हवाले से हम कह सकते हैं कि स्त्री को कभी अग्नि परीक्षा देनी पड़ी, कभी उसे जुएं में हार दिया गया, भरी दरबार में नंगी किया गया, पाँच पतियों को वह संतुष्ट करती रही, उसे नरक का द्वार कहा गया, वह बुद्धिहीन है, वह परावलम्बी है - पिता, पति और पुत्र ही उसका सहारा है आदि आदि। वस्तु से बढ़कर उसे कुछ नहीं माना गया। सारे अधिकारों से वंचित रखा गया, उसे तलाक का अधिकार नहीं है, वह स्वयं निर्णय नहीं ले सकती है, उसका धर्म पति धर्म एवं सति धर्म होना चाहिए अर्थात् सांस्कृतिक एवं सामाजिक संरचना इस प्रकार की बनाई गई कि स्त्री निरंतर हाशिए पर ढकेल दी जाने लगी। गुलाम बनने की प्रवृत्ति इतनी अधिक रही कि लाख परिवेश के बदलने के बावजूद इस मानसिकता से पूर्णत: छुटकारा वह नहीं कर पाती है। उसे गुलाम जीवन की आदत पड़ गई।

✍ अधिव्याख्याता, हिन्दी विभाग, शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर-416004 (महाराष्ट्र)

फलस्वरूप उसी में जन्मा, जीवन जिया और मरी भी गुलामी में ही।

यह सच है कि शारीरिक तौर पर स्त्री जन्मतः पुरुषों से कमजोर होती है वैसे यह विधान भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में करने वाली हर स्त्री के लिए लागू नहीं होता क्योंकि अगर पुरुष हवाई जहाज, रेलगाड़ी, ट्रक, ट्रैक्टर, बस, कार और ऑटो चलाता है तो स्त्री भी यह सब कुछ चलाती है। यहाँ शारीरिक क्षमता-विशेष की तुलनात्मक रूप से नहीं देख सकते हैं। किन्तु ग्रामों, देहातों, कस्बों और अंचलों में जहाँ स्त्री जगत का एक बड़ा हिस्सा रहता है वहाँ हम पाते हैं कि शारीरिक रूप से उतना ही काम करने के बावजूद मानसिक रूप से उसे कमजोर रखा जाता है। उसे धीमे बोलना चाहिए, नजर नीची रखनी चाहिए, वह पुरूषों के बाद खाना खाए, अपना दुःख, अपनी पीड़ा, व्यथा को न जतलाए, पुरुषों की शर्तों पर जीती रहे। यह सही है कि सभ्यता और संस्कृति के विकास के बाद यह स्थिति इतनी अधिक दृष्टिगोचर नहीं होती है। वैश्वीकरण के प्रभाव स्वरूप पाश्चात्य संस्कृति और जीवन-शैली का प्रभाव सब पर पड़ रहा है। महिला जगत भी इससे वंचित नहीं है। इसी का परिणाम यह है कि महिला मुक्ति आन्दोलन, महिला सशक्तीकरण, महिला वर्ष, महिला दशक आदि के जरिए विश्व मंच पर उनके अधिकार, आत्मनिर्भरता, पुरुष प्रधान समाज से समान अधिकार माँगने की ...त, हिम्मत, साहस एवं 'स्व' को लेकर जोर-शोर से खुलकर बोला और लिखा जाने लगा। नारी की मुखरता आज चारों तरफ दिखाई देती है। साहित्य ने भी इसमें अपनी अग्रणी भूमिका निभाई है। वर्तमान समय का साहित्य स्त्री के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और पारिवारिक अधिकार की मांग करता हैं। जब तक अर्थ पर स्त्री की ...त्मनिर्भरता नहीं हो जाती तब तक सही अर्थ में स्त्री स्वतंत्र नहीं हो सकती। उसकी सारी स्वतंत्रता फिर बेमानी माने जाएंगे। किन्तु हम पाते हैं कि अर्थ पर अधिकार प्राप्त हो जाने के बाद भी स्त्री स्वयं निर्णय नहीं ले पाती है। यह सच है कि अठराहवीं सदी तक औरतों को शिक्षा प्राप्त करने का कोई अधिकार नहीं था। कई समाज सुधारकों ने इसके लिए अथक प्रयत्न किए हैं। मा. फूले औरत को आदमी से श्रेष्ठ मानते थे क्योंकि वह जन्मदाता होती है। उसका प्रदेय चुकाया नहीं जा सकता है। बाबा साहेब आंबेडकर तो भारतीय नारी के लिए मसीहा बनकर आए। उन्होंने स्त्रियों की स्थिति में सुधार लाने के लिए उसका शिक्षित होना आवश्यक माना है। कहना न होगा कि भारतीय सामाजिक संरचना में स्त्रियों की स्थिति शुरू से ही हाशिये पर थी। हाशिये से केन्द्र में आने के लिए उसे कई प्रकार के संघर्ष करने पड़े जो सभी धरातल भी दिखाई देते हैं। फ्रांस की नारीवादी चिंतक सिमोन द बोउवार ने कहा है कि 'स्त्री पैदा नहीं होती उसे बना दिया जाता है' बनने की उसकी यह प्रक्रिया अत्यन्त जटिल है। इसके एक-एक धागों को अलग करना तथा पुनः नई रचना करना सरल नहीं है। समकालीन परिवेश इसके लिए अनुकूल रहा है। नौकरी से लेकर व्यवसाय के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में वह कार्यरत हो रही है। बंधन से मुक्ति की तीव्रता उसमें दिखाई दे रही है। किन्तु यह आवश्यक है कि उसका यह दृष्टिकोण स्वस्थ रहे। उसके साथ-साथ समाज के लिए भी उपयोगी रहे। कहना सही होगा कि किसी विचारधारा के पोषित होने में सामाजिक परिवेश के साथ-साथ साहित्य का योगदान भी महत्वपूर्ण होता है। समकालीन साहित्य में नारी-जीवन को लेकर स्थूल से सूक्ष्म चिंतन हो रहे हैं पश्चिम का मुक्ति-आंदोलन का प्रभाव इन साहित्यकारों पर पड़ा है किन्तु भारतीय संस्कृति विभिन्न तंतुओं से बनी है। यहाँ पाश्चात्य विचारों को अपने सांस्कृतिक परिवेश के अनुकूल बनाकर प्रस्तुत किया जाना चाहिए। हम पाते हैं कि स्वतंत्रता का आग्रह, बंधन से मुक्ति, आत्मनिर्भरता का भाव,

समान अधिकार, स्व की स्थापना, पुरुष समाज के प्रति स्पर्धा अथवा विद्रोह का भाव तथा एक कदम आगे चलकर अपनी देह के बारे में निर्णय लेना आदि बातें इसमें उठाई जाती हैं। समकालीन हिन्दी महिला रचनाकारों में नारी-केन्द्रित विपुल मात्रा में रचनाएं लिखी हैं जिससे महिला सशक्तीकरण को बल मिलता है। परिवर्तन अगर होना है तो मन के धरातल से होना जरूरी है। लाख आर्थिक, सामाजिक रूप से महिला आत्मनिर्भर बन जाए किन्तु जब तक अपने मन और विचारों में परिवर्तन नहीं लाएगी तब तब उससे संबंधित सारे प्रयास असफल माने जाएंगे। वर्तमान परिवेश में महिलाओं में आर्थिक सक्षमता के साथ-साथ मानसिक सक्षमता मिलती है। हिन्दी साहित्य में चित्रा मुदगल एक सशक्त नारी-चिंतक के रूप में जानी जाती हैं जिन्होंने अपने व्यक्तिगत जीवन में भी अपनी क्षमता, सशक्ता का परिचय सामंतीय परिवेश को तोड़कर एक विजातीय व्यक्ति से विवाह करके दिया है। कर्म के धरातल पर वे मुंबई के 'जागरण' जैसी समाज सेवी संस्था, 'स्वाधार' जैसी समाज कल्याण संस्था एवं भांडुप के कामगार यूनियन से जुड़ी रही हैं। नारी सशक्तीकरण की इस प्रक्रिया में उनका साहित्य का भी अनमोल योगदान रहा है। यहाँ उदाहरण के रूप में उन विशिष्ट कहानियों को लिया गया है, जिसमें उनके नारी-पात्र वैचारिक दृष्टि से सक्षम पाए जाते हैं। 'जब तक बिमालाएँ हैं' कहानी की बिमला अपनी किशोर बेटी सुरसती पर हुए अत्याचार का मुँहतोड़ जवाब देती है। सुरसती प्रातःकाल खुले में शौच के लिए जाती है और वापस नहीं आती है। चारों तरफ ढूँढ़ने के बाद वह वहीं पर अचेत पड़ी मिलती है। उसकी हालत दयनीय थी, उस पर बलात्कार किया गया था। बिमला बिना संकोच किए या डरे सीधे पुलिस में जाकर रिपोर्ट दर्ज करती है। पति और गाँव वालों के विरोध की परवाह किए बिना साहस और विश्वास के साथ यह कदम उठाती है। उसके इस साहस के लिए 'उत्तर प्रदेशीय महिला मंच' उसे सम्मानित करना चाहता है। निम्न वर्ग की ऐसी कर्मठ, जुझारू और चेतना सम्पन्न महिला को सम्मानित करके संस्था स्वयं सम्मानित महसूस करना चाहता है साथ ही उस जैसी हजारों उत्पीड़ित महिलाओं के लिए एक मिसाल बनाना चाहता है। लेखिका लिखती हैं, 'जब भी उससे मिलती हूँ, नई शक्ति और स्फूर्ति से भर उठती हूँ, कहना न होगा कि जब तक समाज में इस तरह की बिमला है तब तक स्त्री को अस्मिता अपने अधिकार से वंचित नहीं रह सकती है। यह जरूरी नहीं कि स्त्री की आवाज को हमेशा सम्मानित ही किया जाता है, उसे दंडित भी किया जाता है। इनकी 'लकड़बग्घा' कहानी की स्त्री देहाती और अनपढ़ है। पति की मृत्यु के बाद अपनी इकलौती बेटी को वह पढ़ाना चाहती है किन्तु उसके पढ़ाने की इस ललक को त्रिया चरित कहकर लांछित किया जाता है। जेठ के सामने अपनी इच्छा को वह रखती है तो वे इसके लिए इंकार कर देते हैं। तब वह अपने खेती के बँटवारे की बात करती है, अलग घर की मांग करती है। उसका यह साहस तथा अधिकार की मांग को उद्यंडता मान लिया जाता है जिसको समय रहते कुचला जाना आवश्यक है नहीं तो गलत रीति का सूत्रपात हो जाएगा। घर की इस चिंगारी को दबाने के लिए जेठ बंदूक से मार देने की धमकी देते हैं। किंतु इस नारी का साहस इतना अधिक है वह इन बातों से नहीं डरती है और कहती है कि 'बहुत गीदड़ भभकी सुन ली अब नहीं सहेगी' उसका यह रूप जेठ की नींद को हराम कर देता है और फिर सुबह लोगों ने यह समाचार सुना कि शौच के लिए गई इस नारी पात्र को लकड़बग्घा उठा ले गया है। कहना आवश्यक होगा कि परंपरा और रीति का विद्रोह करने वाली अपने अधिकार की मांग करने वाली नारियों को इस तरह से मौत

के घाट उतार दिए जाता है। गाँवों में अनपढ़ अज्ञानी महिला जब पढ़ी लिखी महिला की तरह बोलने लग जाती है तो परिवार वाले उसके इस हिम्मत को समय रहते कुचल देते हैं। कहना सही होगा कि भारतीय सामाजिक व्यवस्था में स्त्री की स्थिति समान रूप से नहीं मिलती है। कहीं शहरों में परिवर्तन सीधे और तीव्रता से होता है पर गाँवों में धीरे-धीरे और मुश्किल से होता है। बेटी को पढ़ाने जैसी छोटी-सी इच्छा भी मृत्यु का कारण बन जाती है अर्थात् सक्षमता का प्रश्न चेतना से है, विचार से है। जब तक पुरूष और स्त्री दोनों के विचारों में परिवर्तन नहीं होगा तब तक बड़ी-बड़ी बातें बेमानी हो जाती हैं। गाँव की समस्या, परिवेश एवं मानसिकता शहरों से भिन्न प्रकार की होती हैं। वहाँ, छोटे-छोटे परिवर्तन भी प्रमुख भूमिका निभाते हैं। इनकी 'दुलहिन' कहानी की अनी घर की पढ़ी लिखी बहू है वह आगे पढ़ रही है इसलिए उसने परिवार नियोजन कर रखा है। किंतु घर में उसकी सास और दादी सास भी हैं। सास गर्भ से है और उसे बेटी पैदा होती है। बेटी को खिलाने-पिलाने, सुलाने का काम बहू और बेटा दोनों करते हैं। बेटे को इस बात की चिढ़ है कि बहू के घर आने के बाद भी माँ बच्चे जन रही है। माँ स्वयं को अब भी दुलहन ही मानती है क्योंकि उसकी सास अभी जीवित है। माँ को फिर से गर्भ रह जाता है जिसे गिराने की बात उठाई जाती है पर दादी कहती हैं कि 'किसी चोर का गर्भ है जो गिरा दें' किंतु इसी दादी की मृत्यु के बाद माँ चुपचाप अस्पताल में जाकर गर्भ गिरा आती हैं। बहू और बेटे को इस बात की खुशी होती है कि उसकी माँ में एक चेतना का भाव जाग गया है। कहना सही होगा कि आज गाँव-गाँव में मीडिया का फैलाव हो चुका है। प्रसार माध्यम के प्रभावस्वरूप परिवर्तन हो रहा है किंतु कई ऐसी समस्याएँ हैं जिस पर रूढ़ि और परंपरा का अभाव अब भी है। स्त्री चाहे जवान हो या बालिका, प्रौढ़ा हो या बूढ़ी अपने परिवर्तित विचार को लेकर उसे चलना होगा। वैसे एकाएक यह संभव नहीं हो पाता है किंतु एक-दो मिसाल भी इस तरह के बन गए तो भी पूरे स्त्री-वर्ग के लिए एक सहारा बन जाता है। नेशनल दूरदर्शन पर शनिवार को दिखाया जाने वाला धारावाहिक 'कब, क्यों, कैसे' इन्हीं प्रश्नों को लेकर आता है। स्त्री-जीवन के कई रूप हैं बेटी, पत्नी, माँ के साथ-साथ भिन्न-भिन्न स्वरूपों में बँटकर वह जीवन जीती है। इस बँटे रूप में वह भोग्या अथवा वस्तु रूप अधिक है, मानव रूप कम है। संसार की आधी आबादी होने के बावजूद उसे परे ढकेला जाता है। जबकि स्त्री के बिना न तो सृष्टि संभव है, न ही जीवन जीना संभव है। स्त्री की इसी अस्मिता को बचाये रखने का एक सफल प्रयास इस धारावाहिक में मिलता है। चित्रा मुद्गल की 'प्रेत योनि' की नायिका नीतू एक कॉलेज की छात्रा है। अपनी बड़ी बहन के घर ग्वालियर जाने के लिए ट्रेन से निकलती है पर ट्रेन की दुर्घटना हो जाने के कारण काफी देर बाद टैक्सी से घर वापस आने लगती है। सुनसान जगह पर टैक्सी ड्राइवर उस पर बलात्कार करना चाहता है अपनी ताकत का पूरा प्रयोग कर उसके चंगुल से भाग आती है और पुलिस में जाकर रिपोर्ट दर्ज कराती है। थाना प्रभारी इस बहादुर लड़की की बहुत प्रशंसा करते हैं और अन्य लड़कियों के लिए अनुकरणीय बतलाते हैं किंतु घर में माँ और पिता उसे प्रताड़ित करते हैं, उसकी बुरी तरह पिटाई की जाती है छिनाझपटी में उसके सलवार का नाड़ा टूट गया था। इस बात पर माँ शंका करती है कि हाथ आई शिकार को पुरूष छोड़ देता है क्या ? इतना अविश्वास, इतना तिरस्कार और इतनी मार खाने के बाद वह आत्महत्या करने की कोशिश करती है परंतु समाचार पत्र में 'छात्र संघ' का आंदोलन तथा ड्राइवर को दंडित करने की बात को पढ़कर वह

अपना विचार त्याग देती है। दिल्ली विश्वविद्यालय के लड़के और लड़कियाँ उसे न्याय दिलाने के लिए सड़क पर उतर गए हैं, लड़ रहे हैं यह सोचकर अपनी कायरता को मन से निकाल देती है। स्पष्ट करना आवश्यक है कि राह चलते लड़कियों के साथ छेड़खानी करना, लम्बे प्रवास में गलत फायदा उठाना, दुर्घटनाग्रस्त लड़कियों की मदद करने के बजाय उसका लाभ उठाना आदि कई ऐसे पुरूष समाज के व्यवहार हमें रोज दिखाई देते हैं कि जिसके कारण भी लड़कियाँ अपना विकास नहीं कर पाती हैं। नीतू जैसी हिम्मती और साहसी लड़की जो उस प्रसंग में भी कमजोर नहीं पड़ी बल्कि अपनी अस्मिता को बचाए रखने में सफल रही है। ऐसे समय में इसके लिए उन्हें परिवार की तरफ से प्रशंसा अथवा प्रोत्साहन मिलना आवश्यक हो जाता है जबकि दकियानूसी विचार वाले कुछ परिवार ऐसे होते हैं कि उनकी कोई गलती न होने के बावजूद लड़की को अपनी जान गँवानी पड़ती है। यह सही है कि लड़की अगर साक्षर होती है तो पूरे परिवार के प्रति उसके देखने का दृष्टिकोण भिन्न होता है। काम करने के कारण उसमें एक आत्मनिर्भरता का भाव दिखाई देता है। स्त्री चाहे शहर की हो या ग्राम की पढ़ी-लिखी हो या अनपढ़ अगर कर्म के प्रति निष्ठा, आस्था का भाव उसमें है तो स्वयं निर्णय की क्षमता का निर्माण भी उसमें हो जाता है इनकी 'केंचुल' कहानी स्त्री के केंचुल बदलने की आवश्यकता पर बल देता है। साँप जिस तरह अपना पुराना केंचुल छोड़ता है और पहले से अधिक तेज, चपल और शक्ति को प्राप्त करता है। उसी प्रकार केंचुल का त्याग नारी के लिए भी जरूरी है। कमला ने शराबी विष्णु से शादी करके अपने जीवन को बर्बाद कर लिया था। उसकी बेटी सरना सब्जी बेचने का काम करती, दिन भर खटती, शाम को पाटी लगाती थी। अपनी मेहनत के प्रति पूरा विश्वास उसे था, उसे सिद्धू नामक भैया से प्रेम हो जाता है। कमला इसका कठोर प्रतिकार करती है। उसे मारा-पीटा जाता है, गाली बकी जाती हैं। किंतु अपने कर्म से अगाध श्रद्धा रखने वाली सरना विवाह जैसा अनमोल निर्णय स्वयं लेती है। जिसके आगे कमला को भी झुकना पड़ता है। कमला का अंत में अपनी बेटी के प्रति परिवर्तित विचार इस बात का सूचक है कि स्त्रियों के जीवन में अगर बदलाव लाना है तो इसकी सोच पुरानी पीढ़ी की स्त्री में भी होनी चाहिए। परिवार में माँ, बहन, सास, सहेली या अन्य क्षेत्र में अधिकार पद पर काम करने वाली व्यवसाय और नौकरी में काम करने वाली महिलाओं का दृष्टिकोण अगर आपस में एक-दूसरे के प्रति नहीं बदलेगा तो समाज में भी इस प्रकार का परिवर्तन संभव नहीं हो सकता है। बहनापे का बोध प्रत्येक स्त्री में होना अनिवार्य है। अन्यथा पुरूष-समाज के प्रति मात्र स्पर्धा अथवा तुलना का भाव रखकर समानता की लड़ाई हम लड़ेंगे और स्त्री-समाज के प्रति प्रतिबद्ध नहीं रहेंगे तो किसी परिवर्तन की आशा करना बेकार है। वर्तमान समय में वैश्वीकरण के प्रभाव स्वरूप दुनियाँ की सारी स्त्रियों की समस्याएँ, दिक्कतें और स्थितियों को एक मंच पर समझने-समझाने का प्रयास जारी है। चिंतन और चेतन का भाव उनमें धीरे-धीरे विकसित होता है। स्त्री-जीवन को बेहतर बनाने के लिए स्त्री-पुरूष संबंध का विश्लेषण एक अह्म प्रश्न के रूप में प्रस्तुत होता है। यह संबंध पति-पत्नी और स्वतंत्र रूप में होते हैं। भारतीय समाज में विवाह-संस्था को अनिवार्य माना गया है। फलस्वरूप स्त्री-पुरूष संबंध यहाँ पति-पत्नी के रूप में ही होने आवश्यक हैं। कुछ महीने पहले महाराष्ट्र में 'लीव इन रिलेशनशीप' पर चर्चा जोर-शोर से हुई। यह प्रस्ताव राज्य सरकार ने केन्द्र सरकार के सामने रखा किंतु उसे मान्यता नहीं मिली। कहना आवश्यक नहीं है कि इस प्रकार के बिना विवाह किए स्त्री-पुरूष

संबंध बनने लगे तो विवाह से लोगों की आस्था और विश्वास उठ जायेगा। समाज में अंतर्जातीय, अंतधर्मीय संबंध स्थापित होने लगेंगे। यह सही है कि मानवतावादी दृष्टिकोण से यह ठीक है किंतु इससे समाज में अराजकता और अव्यवस्था निर्माण हो जाएगा। अनियंत्रित, असंतुलित संबंध से भावी पीढ़ी स्वस्थ और निरोगी नहीं बन पाएगी, अर्थात् भारतीय संस्कृति इस बात को पचा नहीं सकती है। समाज में वैवाहिक संबंध स्त्री जीवन को कई अर्थों में प्रभावित करते हैं। उसके जीवन का संपूर्ण स्वरूप इस पर निर्भर रहता है। कई प्रकार की समस्याओं से उसे गुजरना पड़ता है। गृहिणी एवं नौकरानीपेशा दोनों प्रकार की स्त्रियों की समस्या भिन्न होती है किंतु जो अविवाहित होती हैं। उन्हें भी साहस और क्षमता के साथ अपना कर्म करते हुए व्यक्तित्व का निर्माण करना पड़ता है। इनकी कहानी 'बावजूद इसके' की स्त्री नौकरी करती है उसका पति उसकी नौकरी के पैसे उड़ाता था। वह जिस होटल में काम करती थी वह पति को पंसद नहीं था। अत: वह हॉटेल के मालिक को गाली बकता है। पत्नी को वेश्या कहकर अपमानित करता है। जिसके कारण वह नौकरी की जगह पर काम कर नहीं पाती मानसिक अशांति से गुजरने के कारण अलग रहती है और तलाक के पेपर भेजती है। जिस पर वह हस्ताक्षर करने से इंकार कर देता है। वह उसे न पत्नी बनाकर रख रहा था न उसे मुक्त रख रहा था इस अंर्तद्वन्द्व से वह छुटकारा चाहती है। कहना सही होगा कि पति का व्यवहार उसे पीड़ित, प्रताड़ित और अपमानित करता था। जिससे मुक्त होना वह चाहती थी किंतु इसके लिए उसे पहले अपने पैर मजबूत करने पड़ते हैं। वह सोचती है जीवन की यह लड़ाई उसकी है जिसका कोई अंत नहीं है। जूझना और चुनौती का सामना उसे करना ही होगा। जिस होटल में वह काम करती थी पति के कारण उसे छोड़ने के उद्देश्य से त्यागपत्र लिखती है। किंतु जब अपने ऊपर विश्वास की भावना उसमें दृढ़ हो जाती है तो वह त्यागपत्र को फाड़ देती है।

समकालीन परिवेश में जिस प्रकार का नारी-जीवन का चित्र हमें दिखाई देता है। उसमें छोटे-छोटे कई कोण हैं। वैसे स्त्री-जीवन ही अपने-आप में अथाह है उसके स्वरूप का कोई अंत नहीं है वह आदि सृष्टि है और अंत भी उसमें ही है। पुरूष के वासना का शमन करके उसे पशु से मानव बनाती है। हर रूप में उसका संस्कार करती है किंतु भारतीय सामाजिक संरचना में फिर भी उसके लिए विशिष्ट स्थान नहीं है। वस्तु से मानव बनने की उसकी प्रक्रिया चालू है। सकारात्मक दृष्टिकोण से देखें तो कल की स्त्री भिन्न थी, आज की स्त्री भिन्न है और आने वाले कल की भिन्न होगी। उसे अगर विश्वास रखना है तो अपने दो हाथ पर ! ये हाथ ही उसके व्यक्तित्व को उसकी काया को बदलेंगे। साहित्यकार कर्मशील नारी को सजगता से चित्रित कर रहा है। समाज में भी इस प्रगतिशील, विचारप्रधान नारी के प्रति देखने का दृष्टिकोण बदल गया है। अब यह उस स्त्री पर निर्भर है कि परिवार का बिना त्याग किए, पति और संतान के प्रति समन्वय की भावना बनाए रखकर वह स्वयं के व्यक्तित्व का विकास कर सकती है या नहीं। महिला सशक्तीकरण तभी संभव है जब स्वयं स्त्री में चेतना हो, सजगता हो। उसके नैतिक, कानूनी, राजनैतिक, आर्थिक सारे अधिकार प्राप्त करवाने और जानने के लिए उसका स्वयं चेतनशील होना आवश्यक है। शिक्षित होकर, अन्य स्त्रियों को शिक्षित करके अपना ज्ञान, अपनी भावनाओं को संप्रेषित करें। चुप्पी को तोड़ना आवश्यक है क्योंकि मौन रहकर अगर चुपचाप अत्याचार को सहते रहेंगे तो अत्याचार और अनाचार का अंत तो नहीं होगा बल्कि उस अत्याचार का

बलि स्त्री को बनना पड़ जाऐगा। समाज में कई स्त्रियाँ ऐसी हैं कि पति की मनमानी और तानाशाही को चुपचाप सहती हैं। फलस्वरूप पति अपने रास्ते का कांटा समझकर या तो उसे निकाल देता है, हत्या कर देता है या फिर स्त्री ही तंग आकर आत्महत्या कर लेती है। कुल मिलाकर नतीजा यही कि जीवन को समाप्त कर दिया जाता है। इसी मंच से हमें वैज्ञानिक दृष्टिकोण से सोच लेना है कि या तो समन्वय का रास्ता निकालें जहाँ संभवत: स्त्री का अपना व्यक्तित्व, पति, परिवार और संतान के प्रति भावनात्मक और विकासात्मक दृष्टिकोण हो अथवा इस दृष्टि को पति या पुरूष समाज नहीं समझाता या समझना ही नहीं चाहता तो फिर विरोध एवं विद्रोह की आवाज मुखर होनी चाहिए। पिछले महीने मुंबई के आतंकी हमले में हेमंत करकरे जैसे कई वीर शहीद हुए। उनकी पत्नी कविता करकरे के सामने अपने जीवन को लेकर कई सवाल हैं। उनके ये सवाल अपने दो बेटी और एक बेटा के लिये हैं। उनके सवाल इस पूरे भारतीय समाज और राष्ट्र से हैं। आज वे इन प्रश्नों को लेकर मुखर हो रही हैं। आगे का पूरा जीवन उन्हें अकेले के दम पर जीना है। अत: स्वाभाविक है कि उनके जीवन में घटित हुई उस घटना का जो प्रभाव पड़ा उससे जीवन का पूरा स्वरूप ही बदल गया। अत: उन्हें इन सारे प्रश्नों के उत्तर समाज से और सरकार से मांगने का अधिकार है। कहना केवल इतना है कि स्त्रियाँ कई स्थितियों और परिस्थितियों से गुजरती हैं। जिसका उसके जीवन पर सीधे प्रभाव पड़ता है।

अंत में कहना आवश्यक है कि स्त्री चाहे घर में हो या बाहर, हर तरफ उसे पुरूष समाज से टकराना पड़ता है। आज आवश्यकता है कि स्त्री आँसू बहाते न बैठकर अपनी स्वतंत्र सत्ता को पहचाने। कर्म और कर्तव्य के प्रति सजग रहकर अपना सम्मान बनाए रखें। 'टूट कर फिर से जुड़ना', 'उखड़कर फिर से पनपना' उसकी प्राकृतिक विशेषता है। भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में अपनी पहचान बनाए और इस संघर्ष को जारी रखें। तन-मन और धन से अपने-आप को झोक दे फिर आप देखेंगे कि इस संपूर्ण रूप से जाग जाने के बाद स्त्री की गति को रोक पाना संभव नहीं हो सकता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सीमोन द बोउवार, द सेकंड सेक्स अनु. प्रभा खेतान, स्त्री : उपेक्षिता, सं. 2004
2. चित्रा मुद्गल, चर्चित कहानियाँ, सं. 1994
3. वही, केंचुल, सं. 2001
4. वही, लपटें, सं. 2003
5. दै. लोकमत समाचार दि. 05.01.2009

वाद-विवाद एवं संवाद

आतंकवाद और साम्प्रदायिक सौहार्द

✍ डॉ. अमित शुक्ल

आतंकवाद का घिनौना खेल वर्तमान समय की प्रमुख समस्या है, आतंकवाद के बीच साम्प्रदायिक सौहार्द को बिगाड़ना देश और समाज के विकास में रोड़े अटकाना जैसा है। सामाजिक अंतर्विरोधों के अध्येता अक्सर इस अवधारणा पर जोर देते हैं कि जब किसी समाज का अल्पसंख्यक समुदाय बेबस और लाचार हो जाता है, तब वह आतंकवाद की ओर मुड़ जाता है। इस सिद्धान्त में कुछ सच्चाई जरूर है, लेकिन आतंकवाद का जो रूप आज सामने है वह बहुआयामी और जटिल है कि उसे मापने के लिये सिद्धान्त नाकाफी है। कम से कम भारत जैसे विविधताओं से भरे हुये बहुधर्मी देश में जो लोग आतंकवाद के जरिये दूसरों की जान लेने और अपनी जान देने की खतरनाक मुहिम में लगे हुये हैं, उन्हें इस बात से किसने रोका है, कि वे चुनाव के जरिये पसंद न आने वाली सत्ता व्यवस्था को बदल दे ? आखिर जिस ऊर्जा और 'शहीदी' प्रतिबद्धता का इस्तेमाल वे, बेगुनाह लोगों को मौत के घाट उतारने में कर रहे हैं, और ऐसा करके नर्क में ढकेलने का प्रयास कर रहे हैं, उसकी तुलना में राजनीतिक संगठन बनाकर चुनावी लोकतंत्र के सम्माननीय माध्यम से सत्ता पर कब्जा करना या उसे अपने अनुकूल बनाना ज्यादा आसान था। अगर देश में तानाशाही हुकूमतें चल रही होती और बहुसंख्यक हिन्दुओं के फासीवादी व्यवहार से अल्पसंख्यकों का जीना दुश्वार हो गया होता तो भी बात कुछ हद तक समझ में आने वाली होती, लेकिन यहाँ तो पूरा मामला ही उल्टा है। सच्चाई यह है कि आज भी हिन्दुओं का बहुसंख्यक तबका अपने अल्पसंख्यक सहयात्रियों के साथ शांति और सौहार्द के साथ रहना चाहता है।

आतंकवादियों का असली निशाना यह सामाजिक चाहत और सौहार्द ही है। वे यह साबित करने पर आमादा हैं कि देश का मुस्लिम समुदाय यहाँ के हिन्दुओं का दुश्मन है, और उसे चैन से जीने नहीं देगा।

आतंकवादियों के इस षड्यंत्र से सबसे ज्यादा आशंकित और भयभीत खुद मुस्लिम समुदाय हुआ है। हर आतंकवादी वारदात के बाद वह इस डर से कांपने लगता है कि कहीं इसकी हिंसक प्रतिक्रिया में बहुसंख्यक घृणा और गुस्से का शिकार न बन जाए, यह महज संयोग नहीं है कि देश के किसी भी कोने में होने वाले आतंकी बम विस्फोट के बाद उसके विरूद्ध अपना प्रतिरोध और प्रदर्शन दर्ज करवाने की होड़ मुस्लिम धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक संगठनों में शुरू हो जाती है। आतंकवादी की इन करतूतों से उसी समुदाय की बेचारगी और असुरक्षा सबसे ज्यादा बढ़ रही है, उनका सार्वजनिक अकेलापन और संत्रास बढ़ता जा रहा है। उन्हें रोकने के लिये कोई किराये पर मकान नहीं देना चाहता, मुस्लिम युवक-युवतियों को नौकरी पर रखने से लोग कतराने और घबराने लगे हैं, और अगर इसी तरह चलता रहा तो वह दिन दूर नहीं जब शैक्षणिक संस्थाओं में पढ़ने के लिये प्रवेश देने में लोग हिचचिकाने लगेंगे। आतंकवादी तो यही चाहते हैं कि हिन्दुस्तानी समाज की साझी विरासत जल्दी ही नष्ट हो, और यहाँ के मुसलमान को संदेह की नजर से देखा जाने लगे, जिससे मजबूर होकर इस समुदाय के अधिक से अधिक लोग आतंकवाद की खाई में छलांग लगा दें। इसलिये तथाकथित इण्डियन

✍ सहायक प्राध्यापक, हिन्दी, ठा. रणमत सिंह महाविद्यालय, रीवा (म. प्र.)

मुजाहिदीन बनाम सिमी बनाम अलकायदा बनाम तालिवान के फैल रहे भारतीय तंत्र को तहस-नहस और नाकाम करने की पहली जिम्मेदारी भारतीय मुस्लिम समुदाय की है, इसलिये नहीं कि आतंकवादी वारदातों में उन्हीं के बच्चे शामिल हैं, और यह सब कुछ इस्लाम और जेहाद के नाम पर किया जा रहा है, बल्कि इसलिये कि सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक रूप से वे इसे नाकाम करने की बेहतर स्थिति में हैं। पंजाब का सिख समुदाय ने धर्म के नाम पर अपने गुमराह लोगों की पहचान करने और उन्हें अलग-अलग करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी, वैसे ही आज देश के मुसलमानों के सामने एक ऐतिहासिक अवसर और चुनौती उपस्थित हुई है, जिसमें चूकने का जोखिम नहीं लिया जा सकता है। मुस्लिम समुदाय अपनी इस जरूरी भूमिका के साथ न्याय करके सिर्फ अपनी गरिमा और सम्मान की ही रक्षा नहीं करेगा, बल्कि देश उदार सामुदायिक सहिष्णुता की गौरवशाली परंपरा और राष्ट्र की वैविध्यपूर्ण अखंडता की भी हिफाजत कर रहा होगा। सांस्कृतिक, धार्मिक और क्षेत्रीय विविधता के अनोखे ताने-बाने की वजह से भारतीय समाज दुनिया के किसी भी दूसरे समाज के मुकाबले आतंकवाद से निपटने और उसे परास्त करने के लिये बेहतर स्थिति में है। कुछ लोग इस बहुलतावाद को भारतीय समाज की कमजोरी के रूप में भी देखते हैं, लेकिन उसकी असली ताकत यही है, जिसका फायदा उठाते हुए अब मुस्लिम समाज को पहल अपने हाथ में लेनी होगी। भारत की तुलना ईराक, अफगानिस्तान, पाकिस्तान, श्रीलंका और बांग्लादेश जैसे बदहाल और लाचार राष्ट्रों से नहीं की जा सकती है। यह एक आर्थिक, सांस्कृतिक और सामरिक महाशक्ति है जिस पर उसे तोड़ना असंभव है। वैसे भी दुनिया का भौगोलिक इतिहास इस बात का गवाह है कि आज तक आतंकवाद के जरिये किसी धर्मराज्य का गठन नहीं किया जा सकता। फिर एक हारी हुई लड़ाई के प्रति किसी गुप्त समर्थन या सहानुभूति का कोई अर्थ नहीं रह जाता।

निष्कर्ष यह है कि पिछले तीन सालों में दिल्ली, उत्तर प्रदेश, आंध्र प्रदेश, महाराष्ट्र, राजस्थान, कर्नाटक और अब गुजरात जैसे राज्यों के महत्वपूर्ण शहरों में करीब दर्जन भर आतंकवादी वारदातों में जितने निर्दोष नागरिक मारे गये और अपंग हुये उसकी कोई मिसाल दुनिया में नहीं मिलती। इन्हें रोकने के उपाय राजनीतिक स्तर पर होनी चाहिये। लेकिन दुर्भाग्य की बात यह है कि आतंकवाद जैसे जघन्य और मानवता विरोधी प्रवृत्ति पर भी देश में किसी व्यापक राजनीतिक सर्वानुमति का अभाव ही दिखाई देता है। राजनीतिक दलों को आतंकवादी की आड़ में राजनीतिक लाभ नहीं उठाना चाहिये, क्योंकि राजनीतिक दल उसका लाभ उठाने को उतावले रहते हैं, इसलिये जब तक वोट बैंक की राजनीति ध्वस्त नहीं होती तब तक आतंकवाद और साम्प्रदायिकता से निर्णायक लड़ाई नहीं लड़ी जा सकती।

फिलहाल आतंकवादी जलजले ने साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण को नई हवा दी है, जिसे मुस्लिम समुदाय राजमीतिक वोट बैंक बनाने से मना करके निरस्त कर सकता है, वरना यह दुष्चक्र चलता रहेगा, और भारतीय समाज की बेचारगी बढ़ती रहेगी।

संदर्भ सूची

1. दैनिक भास्कर समाचार पत्र रीवा 29 जुलाई 08, पृ.-8
2. दैनिक समाचार पत्र रीवा 23 सितम्बर 08, पृ. -8
3. नव भारत समाचार पत्र जबलपुर 28 जनवरी 09
4. दूरदर्शन एवं आज तक से प्रसारित समाचारों के आधार पर
5. स्वयं का सर्वेक्षण एवं निष्कर्ष

अवधी लोकगीतों में नारी संवेदना

✍ डॉ. शशि बाला गुप्ता

लोक जीवन की जड़ों का रस निरन्तर लोकगीतों से नारी मन को सिंचित करता रहता है। लोकगीतों का सृजन स्रोत अज्ञात होते हुए भी नारी मन का उन्मोचन, आनन्द, उल्लास, वेदना-संवेदना और नूतन चेतना का मूल सूत्र है। यह सूत्र भारत भूमि की तरह पुरातन होते हुए भी नित्य नव्य है। लोकगीतों में नारी मन के स्वच्छन्द उद्‌गारों की लहर आलोड़ित होती है साथ ही आनन्द और उल्लास में मंगल का भाव भी समाहित रहता है। नारी मन पारिवारिक व सामाजिक सम्बन्धों के लिए संवेदनशील है। लोकगीतों का सीधा सम्बन्ध स्वतंत्र सृजन और आनन्द से है, लोकगीतों का ध्येय भी जीवन के महामंगल की भावना से परिलिप्त है। लोक चेतना की अभिव्यक्ति सुन्दर सुरूप और आनन्दमयी होती है और सत्य भी। मन की गहराइयों से इनका उदय होता है, वे सहज भाव से अभिभूत होते हैं। लोकगीतों का महत्व मात्र मनोविनोद नहीं, मन को स्फूर्ति और प्रेरणा भी देता है। वे मन का निर्माण भी करते हैं उनमें नव-नव उन्मेष भी भरते हैं।

लोक द्वारा रचित गीतों में गीति स्वर करूण और मार्मिक होता है जिनमें हृदय स्पर्शी मर्म निहित है। अवधी लोकगीतों में नारी भावों के उद्‌गार उमड़ते हैं और वे लोकगीत लोक द्वारा तब तक स्वीकृत नहीं होते जब तक उनमें पपीहे की प्यास, चातक की लालसा, मयूर की चाहभरी कूह, कोकिल की तान सुनाई न पड़े। तभी जन समाज के अन्तस्तल के द्वार पानी संवेदना से पूरित हो अवधी लोकगीतों में मुखरित होते हैं। अवध जीवन के सुख-दुःख लोकगीतों में बीज बनकर पल्लवित और पुष्पित होते हैं। नारी जीवन के समग्र पक्षों की उद्‌भावना संवेदना की अभिव्यक्ति है। उनमें वात्सल्य प्रेम भक्ति की गमक, महक सुरमित होती है।

सावन मास में पुष्पित चमेली पर भ्रमर के माध्यम से बहन भाई को संदेश भेजने के उल्लास में हिन्डोला गीत गाती है -

नदिया के ई-रे-तीरे फुलली चमेलरी तेहि पै भँवर मडराय।
भँवरा के हथवा में भेजल्यू समेशवा
भोर वीरन मोहि लै जाय।। हिडोलवा ?
भोर वीरेन मोहि लै जाय।
प्रेम-स्नेह से पगा रक्षा बन्धन पवित्र उदात्त
भाई बहन के के प्रेम-स्नेह का उच्छास है।
नारी मन की संवेदना कठोर हृदय को भी झंकृत कर देती है।

मोतिया का हार लइहै मैया हो भइया
जे कर बहिनी दुलारी-हिण्डोलवा

सावन आ गया 'बहन सासुरी में है' दुःखी मन से माँ बाप को कठोर कहती, भाई को निर्मोही कहती है। जब भाई को आता देखती है तो उल्लास से चहक उठती है। संवेदनशील मन परिवर्तित होता है माँ को गंगा और पिता को यमुना और भाई को चाँद सूर्य कहने लगती है प्रेम की उमंगित लहर से सब मन का क्षोम बह जाता है शेष जाता है उछाह-आनन्द।

✍ रीडर, हिन्दी विभाग, विवेकानन्द ग्रामोद्योग महाविद्यालय, दिबियापुर-औरैया

ससुरे में सावन होय,
कौन निमोंहिया की धिरिया।
कौन बरन तोरी मैया
कौन बरन तोरे बाप ?
कौन बरन तोरे भेइया
जिन सुधि न लीन्ही तुम्हार
कांकर यसि मोरी मैया
पथरा यसि मोरे बाप
लोहे-बंजर यस भइया
जिन सुधि लीन्ही न हमारि

भाई को आता देख बहन के मुखमण्डल की आभा ही बदल जाती है संवेदना जागती है। शब्दों में स्वत: ही उदात्तता समाहित हो गयी - प्रेम पगे-प्यार से सने स्नेहिल शब्दों में नारी मन प्रसन्नता से उद्‌बोधित होता है -

आई गये डोलिया कहरवा।
आई गये वीरन हमार।
गंगा यसि मोरी मैया।
जमुना यस मोरा बाप।
चाँद-सुरज यस भइया।
जिन सुधि लई है हमार॥

बहन का सम्वेदनशील मन अपने पिता और भाई को आता देखकर प्रफुल्लता से लहलहा उठता है। यही है अवधी लोक जीवन के सम्बन्धों की जीवन्तता जो नारी मन के संवेदना की अभिव्यक्ति हो जाती है -

आगिले के घोडवा ववैया मोरा
जेकरि बिटिया दुलारी
पिछवा के विरना हमार।
भला रे भयरिया - भल भपईरे
अब मोरी सुधिया जे लीन

बहन भाई से अपने घर आने के लिए कहती है। भाई की न आ पाने की विवशता को झकझोरती हुई उसे बुलाने के लिए, सभी व्यवधानों के लिए अकाट्य तर्क रखती हुई कहती है -

एक दैयाँ अउता भैया हमरेउ के देसवा रे ना।
भइया हमरिउ खवरिया लई जैतेउ रेना
तेहरे के देसवाँ बहिनी ढाक-ढकुलिया रे ना।
बहिनी रहिया में वाघ बधिनियाँ रे ना।
हलवा में लेन्या भइया ढाल-
तरूवरिया रे ना।
भइया काउ करतै वाघ वधिनिया रे ना।

बहन-भाई के शाश्वत सम्बन्धों की कोमलता, कठोरता, स्निगधता के अटूट तन्तुओं के गर्व का स्वरूप भी सम्वेदना बनकर नारी मन से झांकता है जो उसके अनूठे मन की सृष्टि करता है।

सावन गीत में बहन भाई के यहाँ भी बादलों से बरसने का आग्रह करती है जिससे भाई द्रवित हो सावन में बहन को लेने आ जाय -

बदरिया रानी बरसो बिरन के देश
कौने के विरना लुवावन आए,
कौन घुडल असवार,
बिजुरी के बिरन लुवावन आए,
बादल घुडल असवार॥

प्रकृति का परिवर्तन भी लोकगीतों को अधिक संवेदनशील बना देता है ऋतुगीतों में वर्षागीत, ग्रीष्मगीत, शीतगीत, बसन्तगीत आदि में प्रकृति की वही उच्छवास है परन्तु वर्षा गीतों में हिन्डोला गीत तो नारी मन की झंकार और तरंग है यह लोकगीत सह लोकगीतों की अभिव्यक्ति देते हुए समीष्ट की संवेदन अभिव्यक्ति करते हैं। नारी मन का हृदय रस लोकगीतों में प्लावित हो झलकता रहता है। अवधी लोकगीतों में गहराई रहती है। लोक मानस और नारी मन का अन्तर्नाद लोक संस्कृति के मूल तत्व हैं। सत्य यह है कि लोकगीतों में प्रेम की पीड़ा अधिकांश में जुड़ी रहती है। लोक जीवन का आधार विश्वास है। विश्वास में

दृढ़ता होती है। यही दृढ़ विश्वास नकारात्मक को स्वीकारात्मक बना देती है। वे सहयोग, सहानुभूति सहज सौहार्द भाव से अभिभूत होते हैं। लोक जीवन का यही विधान है भरपूर जीवन जीना यह भरपूर जीवन अर्थात् रस, राग रूचि मोद मदक माधुर्य स्नेह समर्पण के भावों को झलकाना। यही भरपूर जीवन अवधी लोकगीतों में झलकता है यदि पूर्ण विश्वास है तो मंगल, मोद प्रमोह भी।

बेटी स्वयं को चिड़िया मानती है और ससुराल जाने से पहले नीम के पेड़ को न काटने का आग्रह करती है और भाई की सारी वलैयें अपने ऊपर ले लेना चाहती है। भाई के प्रति ऐसी सम्वेदना अवधी लोकगीतों में ही मिलती है –

बाबा निमिया कै पेड़ जिनि काटेउ
निमिया चिरइय्या के बसेर
बलैया लेउ बीरन कै।।
बाबा सिगिरी चिरइय्या उडि डाइ है
रह जइहैं निमिया अकेल वलैया लेऊ वीरन कै।।
बाब सबही विरइय्या जइहँ सासु कै
रहि जइहँ भाई अकेल वलैया लेउ वीरन कै

अवधी लोकगीतों में रामकथा की समष्टि की अभिव्यक्ति उसकी उपादेयता को बढ़ा देती है। कन्याएँ राम जैसे वर की कामना करती हैं। भाई भरत और लखन जैसे भाइयों का संग चाहते हैं। उनके वन गमन, राज्याभिषेक, सीता की मृदुता, कोमलता सौन्दर्य व क्रियाकलापों आदि को लोकगीतों की लड़ियों में गूंथा गया है –

राम चले मधुवन को सीता ठाड़ी रोवै हो
राम बारह वरस की अवधिया अवधि कै वितिहै हो
सभवा से उठे हैं लक्षिमण देवरा झपटि महल आये हो
भउजी कौन संकट तोर जिमरा लै आधी रात रावै हो।।

माता कौशल्या पुत्र वियोग में दुःखी है। सूना मन, सूनी अयोध्या, सूना महल सब सूना सूना लगता है इसलिए ममता भरा माँ हृदय आस-पास के बच्चों को इकट्ठा करके पुत्र वियोग को मूल उनमें घुल मिल जाना चाहती है –

घर-घर फिरहि कउसिला तलरिका बटोरहि हो राम
लरिकौ छन एक रचहु छमारि राम विसरब्हु हो राम।

अवधी लोकगीतों में राममय अभिव्यक्ति जीवन्तता को प्रमाणित करती है क्योंकि परोक्ष में सद्गति का भाव भी छिपा हुआ है –

रामै राम रहै मोरी जिभिया
गोडवा कहै हम तीरथ करवै
हथवा कहै हम देवै दान हो
अखियाँ कहै हम दरशन करवै हो
रामै राम रटै मोरी जिभिया हो राम।

सीता का मन भी नारी सम्वेदना से परपूर्ण है। अग्नि परीक्षा देने के बाद भी जब उसे बनवास मिलता है तो उसका नारी मन विद्रोह करने लगता है। अकारण बनवास से क्षत-विक्षत हो जाती है और अवसाद ग्रस्त होकर जीने की लालसा ही खो बैठती है –

अइसने पुरूषवा के मुंह नहीं देखब
जिन राम दे हलें बनवास
फटि जइही धरती अलोप होई जाइब
अब न देखब सनसार।

वन जाते सीता अयोध्या की सीमा पार करते ही लक्ष्मण से अपनी व्यथा कहती है –

धीरे चलउ, मोरे प्यारे हो लछिमन
एक तौ सीता अगवां के पातरि
दुसरे गरभवा के भार हो लछिमन

अवधी लोकगीतों में राम-सीता आदि को ही आदर्श और मर्यादा का विराट स्वरूप में समाज को प्रतिविम्बित करता है। विषमता को मिटाकर समता लाने में सहयोग भी करता है और मानवता

विकास भी तभी सम्भव है। सीता की रावण से मुक्ति समस्त नारी समाज की मुक्ति है वन देवी राम से कहती है -

जोगिया मेष धइके आया रवनवां
लइगा सीता रथा बैठाई।
यतना वचन जब सुने राम लछिमन
नयना ललित होइ जाइ।
सोनवां की लंका गरद कइ डरवई
सीता को लेबई छोड़ाइ।

अवधी लोकगीत परिवार बिन्दु के भावनाओं के स्वरमय वितान है। परिवार जीवन की अमर कोशिका है। अतः अवधी लोकगीत भी अमर है। लोकगीतों में पारिवारिक भावनाओं का उदात्तीकरण होता है। परिवार रस रंग में स्रोत होते हैं। परिवार में अवसर नहीं रागात्मकता होती है जिनसे अंचल की आत्मीयता उभरती है। राम-सीता आंचलिकता में अपने बनकर लोकगीतों की लड़ियों में गुंथ जाते हैं और वे नारी सम्वेदनाओं से ओत-प्रोत हो सबको अपना बनाते जाते हैं। लोक मंगल की कामना सबकी प्रेरक ऊर्जा बनती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. लोक-धारा-हीरामणि सिंह साथी
2. कश्मीरी और हिन्दी के लोकगीत - डॉ. जवाहर लाल हण्डू
3. लोक वार्ता विज्ञान - खण्ड प्रथम, डॉ. हरद्वारी लाल शर्मा
4. अवध के लोक मानस से संग्रहीत लोकगीत

पर्यावरण की वर्तमान समस्या को देखते हुए आज सम्पूर्ण विश्व के लोग चिंतित हैं इस चिंता के लक्ष्य एवं कारण भी आज चारों तरफ स्पष्ट दिखने लगे हैं। भारतीय उपमहाद्वीप के उत्तरी भाग में पिछले कुछ वर्षों से बेमौसम बरसात, आँधी, चक्रवात, ओलावृष्टि, बिजली और अक्सर सूखे की स्थिति ने अचानक लोगों को परेशान कर दिया है। मौसम का यह बदलता मिजाज मध्य एशियाई क्षेत्र में वातावरण अत्यधिक गर्म हो जाने के कारण माना जाता है। क्योंकि ताजिकिस्तान, उजबेकिस्तान, कजाकिस्तान, किर्गिस्तान, अफगानिस्तान, पाकिस्तान और आस-पास के इलाकों में आतंकी गतिविधियाँ चल रही हैं और उसके कारण स्थिति युद्ध जैसी है। इस अफगान युद्ध ने वातावरण में बारूद के बारीक कण बिखेर दिए हैं। इनकी वजह से वातावरण अत्यधिक गर्म हो उठा है इसके साथ ही अफगान-पाक सीमा पर कम दबाव का क्षेत्र बन गया है। इस वर्ष से इस इलाके में बमबारी हो रही है और उच्च शक्ति के हथियार इस्तेमाल होने के कारण इन सबसे पैदा हुई गर्मी का असर दिख रहा है। ईरान, इराक और अफगानिस्तान के बिगड़े मौसम का असर भी विश्व के अन्य देशों में पड़ा है। अपने निजी फायदे की वजह से पश्चिमी देश वातावरण में जहर घोल रहे हैं और इससे सबसे अधिक प्रभावित एशियाई देश हो रहे हैं जिसने यहाँ की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक विकास की गाड़ी को उल्टी तरफ मोड़ दिया है। पर्यावरण के इस त्रासद खतरे को देखते हुए संयुक्त राष्ट्र के पर्यावरण कार्यक्रम ने पिछले दिनों जिस रिपोर्ट को प्रकाशित किया है, उसमें इन्हीं समस्याओं को रखा गया है जिसके लिए पर्यावरणविद् काफी समय से संर्घषरत थे। आज पर्यावरण की समस्या व इसके संरक्षण, प्रबन्धन की दिशा में चिंतन व सार्वभौमिक सोच का होना लाजिमी हो गया है। कृपया उपरोक्त विषयों पर अपने सामाजिक ज्ञान, अनुभव की सीमाओं को ध्यान में रखते हुये शोधपूर्ण, तथ्यपरक एवं वैज्ञानिक तर्कों से युक्त शोध आलेख/लेख प्रेषित कर रचनात्मक सहयोग देने की कृपा करें।

लोक कला/लोक संस्कृति

गाजीपुर, बनारस की लोक संस्कृति : गोड़ऊ तथा धोबियऊ नाँच

✍ डॉ. महेश सिंह यादव

संस्कृति शब्द सम् + कृ + क्तिन (प्रत्यय) के योग से बना है, जिसका अर्थ परिष्कार, तैयारी, मनोविकास अथवा पूर्णता होता है। संस्कृति शब्द का अर्थ है - संस्कारिता अथवा संस्कार किया हुआ, पालिस किया हुआ, दोष अथवा त्रुटियों को निकालकर शुद्ध किया हुआ।''(1) संस्कृति के अन्तर्गत जीवन के सम्पूर्ण क्रिया-कलाप समाहित हैं, कुछ लोग संस्कृति का तात्पर्य नृत्य-गीत से ही समझते हैं पर ''संस्कृति नृत्य-गीत वाद्य या शिल्प नहीं है, ये सब बातें तो संस्कृति की अभिव्यक्ति हैं। संस्कृति जीवन का सहज छन्द है। हम कैसे दूसरे के साथ समंजस होते हैं, हम कैसे दूसरे के ध्यान से अपने ऊपर संयम करते हैं। कैसे हम विशाल परिवार की आत्मीयता को आचरण की भाषा देते हैं। यह सब संस्कृति है।''(2) संस्कृति अनेकान्त नहीं है, न ही वह एकान्त है, संस्कृति विभिन्न प्रकार के स्वभावों के लोगों के आपस में मिलने-जुलने के विचारों के लेन-देन से रचनात्मक क्रियाओं के तनाव की एक सतत् प्रक्रिया है, जो जोड़ती-तोड़ती, दबाती एक दबाव के रूप में बराबर दिखायी पड़ती है। उसकी एकता स्थिरता में नहीं पहचानी जाती, गतिशीलता में पहचानी जाती है। सामाजिक संस्कृति की बात जो की जाने लगी है, उसमें खोट यह है कि लोग संस्कृति को मिश्रण समझने लगते हैं, जबकि मिश्रण है नहीं, यहाँ रचाव प्रधान है।''(3) संस्कृति मानव उपलब्धियों भौतिकता तथा अभौतिकता का सम्पूर्ण योग है, जो समाज शास्त्रीय रूप से अर्थात परम्परा एवं संचारण द्वारा क्षितिज एवं लम्ब रूप से हस्तान्तरणीय है।''(4) "Culture is the man made part of Environment"(5) अर्थात संस्कृति पर्यावरण का मानव-निर्मित भाग है। ''संस्कृति व्यक्ति की भाँति विचार और क्रिया का सुस्थिर प्रतिमान है।''(6) ''संस्कृति एक ऐसा जटिल समग्र है, जिससे ज्ञान, विश्वास, कला, नैतिकता, कानून, प्रथा तथा समाज के सदस्य के रूप में मनुष्य द्वारा अर्जित अन्य दूसरी समताएँ सम्मिलित हैं।''(7) संस्कृत ऐसे परम्परागत विश्वासों के समूह को कहते हैं, जो कला एवं कला-कृतियों में प्रतिबिम्बित होते हैं तथा जो परम्परा द्वारा चलते हैं और किसी मानव समूह की विशेषता को चित्रित करते हैं।''(8) संस्कृति संसार की सभी भौतिक वस्तुओं तथा उन उपहारों एवं गुणों का सार है, जो मनुष्य की सम्पत्ति होते हुए भी उसकी आवश्यकताओं एवं इच्छाओं के तात्कालिक क्षेत्र से परे है।''(9) ''संस्कृति विचार एवं ज्ञान दोनों, व्यवहारिक एवं सैद्धान्तिक का समूह है, जो केवल मनुष्यों के पास हो सकता है।''(10) ''संस्कृति पीढ़ियों से प्राप्त किसी सामाजिक समूह की शिक्षा, जो रीति-रिवाजों, परम्पराओं आदि में अभिव्यक्त होती है, का नाम है।''(11) संस्कृति हमारे जीवन क्रमों, चिन्तन पद्धतियों, दैनिक सम्पर्कों, कला, साहित्य, धर्म, मनोरंजन, विनोद आदि में हमारी प्रकृति की ही अभिव्यक्ति है।''(12) ''संस्कृति मनुष्यों द्वारा स्वयं को अपने पर्यावरण के साथ अनुकूलित करने एवं अपने जीवन के ढंगों को उन्नत करने के प्रयत्नों का सम्पूर्ण योग है।''(13) संस्कृति व्यवहार की सामाजिक प्रणालियों तथा इन व्यवहारों की भौतिक एवं प्रतीकात्मक कृतियों को निर्दिष्ट करती है।''(14) संस्कृति सीखे हुए एकीकृत

✍ प्रवक्ता-हिन्दी, आर. जी. एन. पी. कालेज, राजा का ताजपुर, बिजनौर (उ. प्र.)

व्यवहार, प्रतिमानों का सम्पूर्ण योग है, जो किसी समाज के सदस्यों की विशेषताओं को बतलाता है।''(15) ''संस्कृति मानव द्वारा उत्पन्न भौतिक, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक, सार्वभौमिकताओं तथा सामाजिक रूप से निर्मित प्रणालियों, जिसके माध्यम से ये सामाजिक कृतियाँ क्रियाशील होती हैं, की सम्पूर्ण अन्तर्वस्तु है।''(16) ''संस्कृति उन सब वस्तुओं की जटिल प्रक्रिया है, जिसमें वह सब निहीत है, जो कुछ हम समाज का सदस्य होने के नाते सोचते और कहते हैं।''(17) ''संस्कृति में वे सामान्य मनोवृत्तियाँ, जीवन-दृष्टिकोण तथा सभ्यता की विशिष्ट अभिव्यक्तियाँ सम्मिलित हैं। जो संसार में किसी विशेष समूह को विशिष्ट स्थान प्रदान करती है।''(18) संस्कृति कृत्रिम वस्तुओं, दशाओं, यन्त्रों, प्रविधियों, विचारों, प्रतीकों एवं व्यवहार प्रतिमानों का सम्पूर्ण संग्रह है, जो मानव समूह के सम्प्रति होते हैं, जिसमें कुछ स्थिरता पायी जाती है।''(19) संस्कृति जीवन की कसौटी है। यह व्यवहार एवं सदाचार की आधारशिला है। यह जीवन जीने की एक कला है।

लोक शब्द को अंग्रेजी में 'फोक (Folk)' कहा जाता है। लोक शब्द का अर्थ अत्यन्त विस्तृत है, इसे संसार, दुनिया तथा विश्व से भी सम्बोधित किया जाता है। लोक का तात्पर्य भुवन भी लगाया जाता है, भुवन 14 माने जाते हैं। आजकल लोक शब्द सामान्य जनता के लिए प्रचलित हो गया है। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने भी लोक का तात्पर्य सामान्य जनता बताया है। लोक सामान्य जनता से सम्पूर्ण पक्षों को समाहित करता है।

लोक संस्कृति का तात्पर्य सामान्य जनता की संस्कृति से है। सामान्य जनता का रहन-सहन, खान-पान, सोना-जागना, उठना-बैठना, गाना-बजाना, नाचना-हँसना, रोना-मुस्कुराना, पढ़ना-ओढ़ना, बात-चीत, उत्सव-त्योहार, पूजा-पाठ करना, तीर्थ-व्रत, पति-पत्नी की रसीली बातें आदि लोक संस्कृति के अंग हैं।

हमारे देश में मुख्यत: दो संस्कृतियाँ दिखायी देती हैं, लोक संस्कृति और नागर संस्कृति। लोक संस्कृति आर्थिक तथा शैक्षिक रूप से पिछड़ों की संस्कृति है तथा नागर संस्कृति सभ्य, शहरी लोगों की संस्कृति है। लोक संस्कृति में हृदय की प्रधानता होती है, जबकि नागर संस्कृति में बुद्धि की प्रधानता होती है, लोक संस्कृति में वास्तविकता की पुकार होती है, जबकि नागर संस्कृति में बनावटीपन होता है। लोक संस्कृति में देशी गन्ध आती है, जबकि नागर संस्कृति में अन्य संस्कृतियों का प्रभाव होता है, इसमें विदेशी गन्ध आती है। लोक संस्कृति में देवी-देवता का पूजन किया जाता है, उन्हें कड़ाही चढ़ायी जाती है, जबकि नागर संस्कृति में हीरो और हिरोइन की पूजा की जाती है। लोक संस्कृति के गाने भी सामान्य होते हैं। प्राय: पति-पत्नी के बीच के विनोद ही लोक संस्कृति के लोग गाने के रूप में प्रयुक्त करते हैं। इसी संदर्भ में गाजीपुर, बनारस, गोरखपुर, आजमगढ़, मऊनाथभंजन, बलिया तथा बस्ती में धोबियऊ तथा गोड़ऊ नाच प्रसिद्ध है, जिसे प्राय: धोबी तथा गोंड़ ही प्रस्तुत करते हैं, जो उनकी जीविका का साधन भी बनता है।

धोबियऊ नाच में छ: या सात लोग होते हैं एक हारमोनियम बजाता है, एक करताल बजाता है, एक ढ़ोलक बजाता है, एक शहनाई बजाता है, एक झांझ बजाता है। साथ ही दो या तीन लोग टेरी भरने का काम करते हैं। दो एक धाबी और एक धोबिन गाने वाले होते हैं। एक-दूसरे से सवाल-जबाव या पति-पत्नी का विनोद करते रहते हैं, एक या दो नाचने वाले होते हैं, जिन्हें लवण्डा कहा जाता है। धोबी और धोबिन भी मौके से नाचते हैं। इस नाच से जनता का अच्छा मनोविनोद होता

है। भोजपुरी का यह बहुत ही प्रसिद्ध नाच रहा, पर आजकल इसकी न्यूनता हो रही है, फिल्म के सामने अब ये नृत्य फीके पड़ रहे हैं और इससे भी बेरोजगारी का सिलसिला बढ़ रहा है।

धोबी और धोबिन गाते हुए कहते हैं –

''तोरे करनवा ना रे धोबिनिया, तोरे करनवा ना
छोड़ि के घरवा चललीं बहरवाँ, धोबिनिया तोरे करनवा ना''

सिड़की चढ़ाइब ना रे धोबिया, ताला लगाईब ना।
हमके छोड़ि के जईबा बहरवाँ हम नईहरवा जाईब ना॥
जाये से पहिले कुल खर्चा तू जइहा लौटाय के
सुनला कहनवा हो मोरा, सुन ला कहनवा मोरा ना
छोड़ि के घरवाँ चललीं बहरवाँ धोबिनिया तोरे करनवा ना

एक ही शरत पर सईया कुल खर्चा लौटाईब
अइलीं जईसन बाबा के घर से, ओईसन मुँहवाँ बनावा ना
सब लौटाईब ना रे बलमूआ, सब लौटाइब ना
हमके छोड़ि के जइबा बहरवाँ, हम नइहरवाँ जइबैं ना।''[20]

पहले धोबिन गा रही है –

''कलाई मोर छोड़ि दा, कलाई मोरे छोड़ि दा, मारे लागी माई हो कलाई मोर छोड़ि दा।

फिर धोबी गा रहा है –

नजरिया के तीर से, नजरिया के तीर से, घाही कइलू गोरी हो नजरिया के तीर से।''

धोबिन गा रही है –

लाज लागे आवत जात सब जानि जाई।
फाटि जाई चोलिया, परि जाई खटाई।
घाटा, नाफा, सोचि के सनेहिया के जोरि ला।
मारे लागि माई हो कलाई मोर छोड़ि दा।

धोबी गा रहा है –

अपना दिवाना के जनि बहकावा
सुलगत आगि के जनि भड़कावा।
असल में बानी हम तोहरे फतीर से
घाही कइलू गोरी हो नजरिया के तीर से॥

धोबिन गा रही है –

जमाना खराब बाटे बनि जईबा बागी
चहली जवनिया में लागी जाई दागी।
मनवा में पाप वाला खटका के छोड़ि दा
मारे लागी माई हो, कलाई मोर छोड़ि दा॥

धोबी गा रहा है –

रोके केहू जाई नाहीं दरिया क पानी,
का करिहैं गंगा सागर बतिया के जानी।
हमार-तोहरा प्यार जइसे राधा के हीर से,
घाही कइलू गोरी हो नजरिया के तीर से।
मारे लागि भाई हो कलाई मोर छोड़ि दा,
घाही कइलू गोरी हो नजरिया के तीर से।''[21]

धोबिन गा रही है –

जबसे सईया लिहले बाड़यँ मोबाइल
मन बउराईल बा हो राम।

धोबी गा रहा है –

जबसे गोरी मारै लू हो इस्टाईल,
हमहूँ मोबाईल लेहलीं हो राम।

धोबिन गा रही है –

घर से बहराँ निकली के बतियावे
नाहीं पूछले पर हमके बतावे
उल्टा हमरा पर रहेला गोसाईल
मन बउराईल बाटे हो राम
एक दिन हमरा तर छोड़ले रहला हो मोबाईल
आई लव यू के बतिया सुनाइल

कवनों सवतिन क फोटो देखाईल
मन बउराईल बाटे हो राम।

धोबी गा रहा है –

झूठे शंका में जारे लू देहियाँ
नाहीं केहू से लगवले बाड़ी नेहियाँ
तोहरे दिलवा में चोरवा समाईल
हमहूँ मोबाईल लेहलीं हो राम।
गोरिया आवा लगाके देखायीं
आई लव यू बतिया बतायीं
काहें भागै लू देख के सरमालू
हमहूँ मोबाईल ले ह लीं हो राम
जबसे गोरी मारै लू हो इस्टाइल
हमहूँ मोबाईल लेहलीं हो राम।'(22)

धोबी गा रहा है –

माल हउअै देशी विदेशी अईसन चाल बा
राज भोगा कंचन तोहार ऊमर सोलह साल बा

धोबिन गा रही है –

बोलत ताड़य बोली, इनका बोलियै में जान बा
हाड़ मास इनखे बाकी वनत पहलवान बा
बोलत ताड़य बोली, इनका बोलियै में जान बा

धोबी गा रहा है –

जिन्स वाली मैडम, आधा तोपे, आधा खुला
धन इन्सान करे दूधवै क कूला
आवै जाय केहू तनिको ना खियाल बा
माल हऊअै देशी, विदेशी अइसन चाल बा

धोबिन गा रही है –

पीछे हमरे परल बा करेजवा के मथत ता
धन त हमार बा तोहार काहें बथत ता
पलई के पात पर, टँगारी जस परान बा
बोलत ताड़य बोली, इनका बोलियै में जान बा

धोबी गा रहा है –

कब्बों रस मलाई खाले, महुआ क लपसी
घूमि के बजरिया में पीयत ताड़ी पेपसी
गोरे-गोरे गाल इनका ओठ लाले-लाल बा
माल हऊअै देशी, 'विदेशी अइसन चाल बा।'(23)

गोड़ऊ नाच भी प्रसिद्ध था, पर आजकल इसकी पूछ कम होती जा रही है, अब तरह-तरह के नये-नये नृत्य विकसित हो रहे हैं तथा फिल्मी गाना एवं स्टाइल ने सबको मात कर दिया, अब ये बेचारे बेरोजगार हो रहे हैं। गोड़ऊ नाच में एक लवण्डा होता है, जो नाचता है तथा एक गाने वाला होता है एक हुडुक बजाने वाला, एक मृदंग बजाने वाला तथा एक झाँझ बजाने वाला होता है, दो-तीन टेरी भरने वाले होते हैं, गाने वाला घूम-घूम कर गाता और नाचता है, तथा बजाने वाले और टेरी भरने वाले भी साथ-साथ घूमकर नाचते हैं, ये कभी बैठते नहीं हैं, हमेशा नाचते ही रहते हैं, और गाते हैं, इनके गाने अश्लील होते हैं –

भऊजी तोहार बहिन हो भईल बा देशी कट्टा
भऊजी अपने बहिन क चलिया सुधारा
नाहीं त कहियो कवनों लगाय देई बारा
पीछे पछतइबू, जब बईठी जाई भट्टा
भऊजी तोहार बहिन हो भईल बा देशी कट्टा

गऊआँ में मारे ले शहरी इस्टाइल
रहिया में चलै जइसे आगिनि मिसाइल
घूमि-घूमि खोजै ले जवान हट्टा-कट्टा
भऊजी तोहार बहिन हो भईल बा देशी कट्टा
पीछे पछतइबू जब बईठी जाई भट्टा।
देखले में लागत ताड़े गुड़िया
लेकिन महुरावल बाड़े भऊजी इहो छूड़िया
कहिलो ले समान ओकर होई जाई खट्टा
भऊजी तोहार बहिन हो भईल बा देशी कट्टा
घूमि-घूमि खोजै ले जवान हट्टा-कट्टा
पीछे पछतइबू जब बईठी जाई भट्टा

जईहा से आईल बाड़े तोहरी बहिनिया
गाँव के लवण्डन के बदलल रहनिया

बूढ़वों लगावत ताड़य एकरा पर सट्टा
भऊजी तोहार बहिन हो भईल बा देशी कट्टा

कमवा विगरले से पहिले बनावा
माना हमार बात एके चलिया सिखावा
देवरा विशाल से करा दा एकर पट्टा
भऊजी तोहार बहिन हो भईल बा देशी कट्टा।''[23]

पति और पत्नी दोनों गा रहे हैं तथा साथ ही साथ नाच भी रहे हैं -

सूतही के रहय राजा खेत खरिहनधा
काहे के करवला, राजा मोर गवनवा

गोड़ गा रहा है -

गर्मी के दिन बहे ना पवनवा
आवा चलीं गोरी सूते खरिहनवा
आवा चलीं गोरी सूते खरिहनवा

गोड़िन गा रही है -

लागत ताकि भावै नाहीं हमरी सूरतिया
रात मिलि गईलीं कवनों सूधरी सवतिया
एहि से बनाव ताड़ा, हमसे बहनवा
काहे के करवला, राजा मोर गवनवा।।
काहें करत ताड़ू गोरी लागे वाली बतिया
अँखिया में धँसत ताड़े तोहरी सूरतिया
तोहरे में बसत ताड़े हमरो परनवा
आवा चलीं गोरी सूते खरिहनवा।।

गोड़िन गा रही है -

सूतबा खरिहनवा में, होइहैं अफतिया।
जानि इहहैं लोग सईंया माना मोरि बतिया।
पॉव क पयलिया बाजी, खनकी कंगनवा।
काहे के करवला, राजा मोर गवनवा।

गोड़ गा रहा है -

सब लोग सूतल रही, केहू नाहिं जानी
जनबो करी त कवन चोरी करत बाड़ी
दुनिया के गोली मार
आवा चलीं गोरी सूते खरिहनवा।।

गोड़िन गा रही है -

रात भर बइठल हम, बेनिया डोलइबैं
लेकिन खरिहनवा में सूतै नाहिं जइबैं
घरवा दुवार वनल, बाबा कवने करनवा
काहे के करवला, राजा मोर गवनवा।

गोड़ गा रहा है -

काके उठइबू गोरी एतना ससतिया
पंखा लगवाय देबैं माना मोरि बतिया
हमरी कमाई कामे आई कवने दिनवा
आवा चलीं गोरी सूते खरिहनवा
आवा चलीं गोरी सूते खरिहनवा
सूतही के रहै राजा खेत खरिहनवा
काहे के करवला राजा मोर गवनवा।।''[24]

वुढ़वा में दम बा, बुढ़िया कहाँ कम बा।
वुढ़वा मिसाइल बा, तं बुढ़िया में बम बा।
लिमका पियला वुढ़वा, बुढ़िया पिये पानी।
खोजै ले बुढ़िया रोज पुलाव विरयानी।
दुन्हुन के टेंशन में पतोहिया पियत रम्म बा।
बुढ़वा के भाँजी तरकारी रोज चाही
दाल-रोटी बुढ़िया के भावत ताड़े नाहीं।
देख के फूटानी माथा त गरम बा।
बुढ़वा में दम बा त बुढ़ियाँ कहाँ कम बा।
बुढ़वा सिगरेट पिये बुढ़ियो ना लजाते।
दिन भर में चार बीरा पान रोज चबाले।
बेटा-बेटी भीख मांगे कवनो नाहीं गम बा।
बुढ़वा में दम बा त बुढ़िया कहाँ कम बा।
बुढ़वा देखे समाचार, बुढ़िया पढ़े पेपर
नतिया नतिनिया रोवैं फेंकर फेंकर
हाथ ना लगावैं दुनों कइसन करम बा
बुढ़वा में दम बा, बुढ़िया कहाँ कम बा।
बुढ़वा मिसाईल बा, त बुढ़िया में बम बा।
दुनहुन के टेंशन में पतोहिया पियत रम्म बा।''[25]

अगले में गोड़ और गोड़िन दोनों गा रहे हैं, पहले

गोड़िन गा रही है -

सईया तनी दाबा ना कमरिया हो, रहि-रहि उठे ले लहरिया।

गोड़ गा रहा है -

अबहीं त बाटे गोरी दुपहरिया हो तनी होखे दा अन्हरिया।

गोड़िन गा रही है -

गाड़ी उतरी छोड़ि के पटरिया हो, रहि-रहि उठै ले लहरिया।
तब ले सईया कइसे रहब, एतना दरद कइसे सहब।
रहि-रहि उठै ले लहरिया हो, सईया तनी दाबा न कमरिया।''(26)

आगे केवल गोड़ ही गा रहा है -

सोरहों सिंगार के हो रूपवा सँवारि के
बड़ी नीक लागे, तोहरे टिकुली लिलार के
गरदा वन्हले गाडू हो
सोरहों सिंगार के हो रूपवा सँवारि के।
बड़ी नीक लागे, तोहरे रिकुसी लिलार के
मरदा वन्हले गाडू हो
देशवा विदेश में चरचा तोहार बा
यूपी से यूपी फिदा तोहरे पर बिहार बा
सबहीं से तू मिलल्‌ू होई के बेपरदा
गरदा वन्हले बाडू हो
तोहरे सूरतिया में भरल काला जादू
बोला-बोला चिरई अबहीं के तनन के खावू
काली-काली अँखिया में नाहीं कबनों परदा
गरदा बन्हले बाडू हो।
मोहनी देखा के मोहलू बुडवा जवान के,
पुलिस दरोगा मोहलू कलक्टर कप्तान के,
नाहीं चिन्हलू सार, नाहीं चिन्हलू वरधा,
गरदा बन्हले बाडू ना।''(27)

गोड़ अगला गाना गा रहा है -

''देईके आँखी में कजरवा
गइलू बुढ़वा के पजरवा।
हो नखड़वा कइलू ना,
चिरई लूटा अब लहरवा
हो नखड़वा कइलू ना।''(28)

इस प्रकार निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि लोक संस्कृति की माधुरी सूरत है। यह सबको मोह लेती है। लोक-सांस्कृतिक नृत्य एवं गाने हृदय की उपज हैं। इनका स्वर बड़ा ही सुरीला होता है। इनमें बनावटीपन के लिए तनिक भी स्थान नहीं होता है। बुद्धि को लोक-संस्कृति दूर रखती है। गोड़ऊ तथा धोबियऊ नाच पहले सामान्य लोग ही करते थे और बीच-बीच में लोगों को हँसाने के लिए नाटक भी करते थे। गोड़ऊ नाच गोड़ तथा धोबियऊ नाच धोबी करते थे पर आज फैशन के जमाने में, फिल्म के दास्ताने में इनकी न्यूनता हो रही है। अब इसे करने और सुनने, देखने वाले कम हो गये हैं, फिर भी इसे प्रोत्साहित करना चाहिए ताकि ये मिट न सके। यह भी काफी आकर्षक होता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. मोनियर विलियम्स : संस्कृत इग्लिश डिक्सीनरी : पृष्ठ-1120
2. नदी, नारी और संस्कृति : विद्यानिवास मिश्र : पृष्ठ-44
3. वही : पृष्ठ-27
4. एच. टी. मजूमदार : ग्रामर आफ सोसियोलोजी : पृष्ठ-510
5. एम. जे. हर्ट्स कोविट्स - हिज वर्क्स : पृष्ठ-17
6. रूस वेनेटिक्स : पैटर्न आफ कल्चर : पृष्ठ-46
7. Primilive Culture : F. B. Taylor पृष्ठ-07
8. रैडफील्ड, कोटेक बाई आगवर्न, ए हैण्ड वुक ऑफ सोशियोलाजी : पृष्ठ-15
9. जोसेफ पाईपर : द वोसिस आफ कल्चर :

: पृष्ठ-20

10. E.V.dc-Roberty
11. लापीयर, सोसियोलोजी : पृष्ठ-68
12. मैकाइबर, द सोसाइटी : पृष्ठ-499
13. क्योनिंग, सोसियोलोजी : पृष्ठ-43
14. लुण्डवर्ग – सोसियोलोजी : पृष्ठ-299
15. हाबेल : मैन इन द प्रीमिटिव वर्ल्ड : पृष्ठ-07
16. एणरसन एवं पार्कर : सोसायटी : पृष्ठ-40
17. वीरस्टेड : द सोसल आर्डर : पृष्ठ-06
18. इ. सपीर, कल्चर, जनून एण्ड स्परियस : पृष्ठ-405
19. कुले आर्गल : इएडोइक्ट्री सोसियोलोजी : पृष्ठ-8
20. कविता तथा ओमप्रकाश यादव ने गाया था
21. वही
22. वही
23. स्मृति पर आधारित
24. स्मृति पर आधारित
25. वही : स्मृति पर आधारित
26. वही : स्मृति पर आधारित
27. वही : स्मृति पर आधारित
28. जगदीश गोड़ के द्वारा पता चला, जो बड़ागाँव, गाजीपुर के रहने वाले हैं।

जब मनुष्य ने सभ्यता एवं संस्कृति का पाठ सीखकर अपने को सभ्य समाज के साथ जोड़ा तब उसके साथ एक दूसरा कुनबा भी था। इस कुनबे में मनुष्य के साथ पेंड़-पौधों-जल स्रोत, पशु, पक्षी, कीट पतंगों के साथ पूरी प्रकृति खड़ी थी। मनुष्य ने अपनी बौद्धिक क्षमता एवं शिष्टता के बल पर इन सबसे दोस्ती कर ली साथ ही कुछ पशु-पक्षियों से भी तालमेल बैठा लिया। और जिन जीवों एवं तत्वों से वह सामंजस्य स्थापित नहीं कर सका उनके साथ समायोजन करते हुये अपने विकास के पथ पर उत्तरोत्तर अग्रसर होता चला गया। मनुष्य ने जब अपनी कबीलाई एवं आदिवासी संस्कृति छोड़ी तब उसने अपने लिये कुछ नैतिक सिद्धान्त एवं मूल्यों की स्थापना की। जो पारस्परिक सहयोग, उपभोग में आने वाली दैनिक वस्तुओं का न्यायोचित रूप से विभाजन, सहअस्तित्व, परस्पर पूरकता, प्रेम भ्रातत्व तथा सामूहिक सुरक्षा के आधार पर टिकी थी। इस सामाजिक सम्बन्धों एवं नैतिक नियमों के बल से मानव ने अपनी विशिष्ट पहचान विश्व के देशों के बीच बनाई। भारत ने यहाँ अपने को सर्वोच्य पाया क्योंकि भारतीय संस्कृति, संस्कार एवं समाज का जो ढाँचा उसके पूर्वज खड़ा कर गये थे वह अन्य समाजों की तुलना में टिकाऊ और मजबूत था। वर्तमान समय में उपभोक्तावादी प्रवृत्ति तथा भौतिकता ने मनुष्य को ऐसे चौराहे पर खड़ा कर दिया है जहाँ वह अपना अस्तित्व (सामाजिक, सांस्कृतिक) ही भूलता चला जा रहा है। आधुनिकता की अंधी दौड़ में मनुष्य अपनी जड़ों से कटता जा रहा है और ''भारतीय समाज अपनी विशेषताओं को खोता जा रहा है, आदर्श स्वरूप की तिलांजलि दी जा रही है, संस्कृति की मूल एवं समाज की श्रेष्ठता के मानक प्रेम बन्धुत्व, नैतिकता चरित्र एवं कर्म सब लुप्तप्राय से हो रहे हैं, परिवार बिखरते जा रहे हैं, मर्यादायें नष्ट होती जा रही हैं, यानि पर्यावरण के साथ-साथ हमारा समाज भी प्रदूषित हो चुका है। क्या कारण है कि दिनों-दिन सामाजिकता घटती जा रही है। अपने 'नैतिक' मूल्यों को खोती जा रही है ?'' आज पर्यावरण की समस्या व इसके संरक्षण, प्रबन्धन की दिशा में चिंतन व सार्वभौमिक सोच का होना लाजिमी हो गया है। कृपया उपरोक्त विषयों पर अपने सामाजिक ज्ञान, अनुभव की सीमाओं को ध्यान में रखते हुये शोधपूर्ण, तथ्यपरक एवं वैज्ञानिक तर्कों से युक्त शोध आलेख/लेख प्रेषित कर रचनात्मक सहयोग देने की कृपा करें।

सुलगते सवाल

आतंकवाद की समस्या और समाधान

✍ अशोक कुमार प्रसाद

आतंकवाद विघटनकारी तत्वों का एक सामूहिक हिंसात्मक अभियान है। आज प्रत्येक देश विघटनकारी तत्वों की हिंसात्मक प्रवृत्तियों से चिन्तित और आतंकित है। आज सभी देशों को एकजुट होकर अपने-अपने राष्ट्रों में अमन चैन कायम करने के लिए सामूहिक प्रयास करना चाहिए।

"किसी बड़े स्वार्थ से प्रेरित होकर राष्ट्र और समाज के विरूद्ध किया गया अनैतिक व घृणित कृत्य ही आतंकवाद है। आतंकवाद ऐसी विचारधारा है। जिसका न कोई राष्ट्र होता है और न कोई समाज और न कोई धर्म, वह महज एक पाशविक प्रवृत्ति है। आतंकवाद एक घिनौना राष्ट्रद्रोह है। जो अक्षम्य है।"

जिस तरह पड़ोसी की प्रगति दूसरों को फूटी आँखों नहीं सुहाती उसी प्रकार विकास करते हुए देश को देखकर पड़ोसी देश उसको नीचा दिखाने का षड़यंत्र करते है। उनका यही षड़यंत्र आतंकवाद को जन्म देता है। महत्वाकांक्षी व्यक्तियों की महत्वाकांक्षा जब विकृत और हिंसात्मक रूप लेती है। ऐसी स्थिति में ही आतंकवाद पनपता है। भाषा, धर्म, क्षेत्रवाद को लेकर भी असफल राजनीतिज्ञ आतंकवाद को बढ़ावा देता है।

आतंकवाद का उद्देश्य समाज में भय आतंक और दशहत फैलाकर असुरक्षा की भावना पैदा करना और शासन तथा प्रशासन को चुनौती देकर देश में अस्थिरता पैदा करना तथा लूटमार करके अपना उल्लू सीधा करना।

आतंकवाद से देश की सर्वतोमुखी प्रगति अवरूद्ध हो गई है। असुरक्षा की भावना पैदा होती है। पलायन बढ़ता है और उद्योगों पर बुरा प्रभाव पड़ता है। जातीय और धार्मिक भेद-भाव बढ़ता है। तनाव पैदा होता है हिंसा जन्म लेती है। आपसी कटुता से हत्या, डकैती जैसी घटनाएं होती है। देश पर बाहरी ताकतें हावी होने लगती हैं। बाहरी आक्रमण का खतरा बढ़ जाता है। अतः आतंकवाद का चतुर्दिक दुष्परिणाम देश को तबाह कर सकते हैं। आतंकवाद देश की आजादी का सबसे बड़ा खतरा है। आतंकवाद के पीछे तुच्छ राजनीतिक का दाँव पेंच होता है। यह राजनीतिक अन्तर्देशीय और अन्तर्राष्ट्रीय होती है। समुन्नत और विकसित देश अपने प्रभुत्व को बनाये रखने के लिये विकासशील देशों के विरूद्ध इस तरह की राजनीति खेलते हैं। भारत में व्याप्त आतंकवाद इसी अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का परिणाम है। देश में धन प्राप्ति के लालच में दिशा भ्रमित युवक बाहरी देशों के इशारों पर हत्याकाण्ड, आतंक, डकैती आदि जैसे जघन्य कृत्य करते रहते हैं। फूट डालो राज करो की राजनीति आज भी कारगर दिख रही है। धर्मान्धता और अन्धविश्वास से गुमराह युवक इस जघन्य कृत्य में संलग्न हो जाते हैं। जो देश के भविष्य के लिए हानिकारक सिद्ध होते हैं।

भारत विभिन्न धर्मों एवं जातियों का देश है। यही इसकी मूल समन्वयक विशेषता है और बाहरी लोगों के लिए आश्चर्य है। दुनिया का इतना विशाल जनतांत्रिक समाजवादी देश लोगों की आँखों में खटक रहा है। अतः वे धर्म, जाति और क्षेत्रवाद

✍ प्रवक्ता, हिन्दी विभाग, चौधरी हनुमान प्रसाद कृषक महाविद्यालय, रूद्रपुर, भगाही अम्बेडकर (उ. प्र.)

का जहर बोकर इसे नष्ट कर डालना चाहते हैं। आज धार्मिक अन्धवाद के शिकार धर्मान्ध आतंकवादी रोज हत्याएँ कर रहे हैं। बेकसूर बाल, वृद्ध, युवा सबको मौत के घाट उतार रहे हैं। उन धार्मिक हत्याओं के पीछे यही मंशा है कि एक वर्ग के लोग दूसरे वर्ग के लोगों से नफरत घृणा करने लगे हैं और बदले की भावना तथा खूनखराबा ही आतंकवादियों का काम है।

वर्तमान में धर्म भी उन सवालों पर जो फैसला दे रहा है उसके पीछे आतंकवादियों की बंदूके हैं। राजनीति में हस्तक्षेप करके धर्म ने इन्हें अपनी पावन स्वायत्तता खो दी है और जनमानस में भी अपनी निर्दोष तथा सर्वोपरि सत्ता को कलंकित कर दिया है। देश में आतंकवादियों के पीछे निश्चित रूप से विदेशियों का हाथ है। एक चालक विदेशी मस्तिष्क नियोजित ढंग से हत्या और डकैती करवा रहा है। ताकि देश विभाजन की उनकी साजिश पूरी हो सके। पड़ोसी और विकसित देश पानी की तरह पैसा बहा रहे हैं। अपने यहाँ आतंकवादियों को शोषण और प्रशिक्षण अस्त्र, शस्त्र तथा धन का लालच देकर देश में आतंकवाद और विघटनकारी ताकतों को बढ़ावा दे रहे हैं। भारत सरकार के पास इसके ठोस प्रमाण मौजूद हैं। देश के गुमराह युवक एक बार यदि आतंकवादी गिरोह में शामिल हो जाते हैं। तथा वे किसी भी तरह उनसे मुक्त नहीं हो सकते। बाद में सहयोग न करने पर कठोर यातनाएँ देकर उनकी हत्या कर दी जाती है। विदेशियों का यह कृत्य किसी एक जाति या राष्ट्र के विरूद्ध नहीं अपितु अपनी पूरी मानवता के विरूद्ध है। भारत सरकार देश में फैल रहे अलगाववाद और आतंकवाद के विरूद्ध कठोर कार्यवाही कर रही है।

आतंकवाद को खत्म करने के अनेक उपाय किये जा सकते हैं। दिग्भ्रमित युवकों को विश्वास में लाया जाये तथा उनमें परिश्रम के प्रति सम्मान की भावना उत्पन्न करनी चाहिये देशद्रोहियों को कठोर दण्ड देना चाहिये अधिकारियों को व्यापक अधिकार दिये जायें जिससे वे स्वत: निर्णय ले सकें तथा सभी वर्गों के प्रतिनिधियों, समाजसेवियों को शिक्षकों द्वारा सभा एवं गोष्ठियों का आयोजन किया जाये, सद्भाव यात्राओं का आयोजन किया जाये। धर्म को दलगत राजनीति से अलग किया जाये, सभी वर्गों द्वारा आतंकवादियों की निन्दा की जाये। अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग लेकर उन देशों के विरूद्ध जनमत तैयार किया जाये जो आतंकवाद को बढ़ावा दे रहे हैं। नैतिक बलों को सुदृढ़ और आधुनिक बनाया जाये। आतंकवादियों को शरण देने वाले व्यक्तियों के खिलाफ भी देशद्रोह का अभियोग लगाकर दण्डित किया जा सके यदि राजनैतिक स्तर पर आतंकवाद की समस्या को सुलझाया जा सके तो भारत सरकार को इससे विमुख नहीं होना चाहिये।

उद्योगशालाएं स्थापित कर नौकरी की ओर प्रोत्साहित करना चाहिये। देश प्रेम एवं राष्ट्र भक्ति के भावों से आतंकवाद को मिटाया जा सकता है। किसी कमजोर देश में अशान्ति और आतंक फैला रहता है तथा आन्तरिक विद्रोह बना रहता है।

परिवेश-विस्तार

समसामयिक सन्दर्भ में शिक्षा, मनुष्य और समाज

✍ कुमार यशवन्त

शिक्षा, मनुष्य और समाज में गहरा सम्बन्ध हैं एक के अभाव में दूसरे की कल्पना नहीं की जा सकती है। यदि गम्भीरता से विचार किया जाय तो हमें इस तीन आयामों- शिक्षा, मनुष्य और समाज - के परस्पर सम्बन्धों के बारे में समसामयिक सामाजिक यथार्थ का आभास होगा। शिक्षा मानव समाज की सर्वाधिक महत्वपूर्ण संस्थागत प्रक्रिया मानी गई है जो मनुष्य विविध रूपों में प्रभावित करती है। इसने मनुष्य को श्रेष्ठ सामाजिक - सांस्कृतिक प्राणी बनाने में बड़ा योगदान दिया है। इसने ज्ञान-विज्ञान व समाज को प्रगतिशील बनाया है।

शिक्षा मानव समाज के मौलिक क्रियाओं को जिलाए रखने का एक साधन माना गया है। शिक्षा भिन्न-2 लोगों की नजरों में भिन्न-भिन्न अर्थ रखती है। ''जहां प्लेटों ने इसे मानसिक रोग कों मानसिक चिकित्सा के द्वारा दूर करने के माध्यम के रूप में माना है। वहीं अरस्तु का विचार है कि शिक्षा समाज में वैसा नागरिक पैदा करती है जो इसके विचारों एवं नैतिक मूल्यों को आगे बढ़ाए। कुछ लोगों के लिए यह खास किस्म की सूचनाएं, ज्ञान व तकनीकी जानकारियां हासिल करने का स्रोत है। कुछ लोग इसे एक सम्पूर्ण प्रक्रिया के रूप में देखते है, जिसके द्वारा कोई भी पीढ़ी को सौंपती है। कुछ ऐसे भी लोग हैं जो इसे ज्ञानार्जन के रूप में परिभाषित करते हैं। ऐसे लोगों की भी कमी नहीं जो इसे गहरे मानवी मूल्यों के रचयिता के रूप में मानते हैं। सर्वसत्तावादी शिक्षा को युवाओं में नई विचारधाराओं एवं आदर्शों को पैदा कर एक नया मानव निर्माण करने की शक्ति के रूप में मानते हैं।

प्रजातन्त्रवादी शिक्षा को युवाओं में नई विचारधाराओं एवं आदर्शों को पैदा कर एक नया मानव निर्माण करने की शक्ति के रूप में मानता है। प्रजातन्त्रवादियों की नजर में यह सत्य की तलाश का साधन है। एमिल दुर्कहैम ने शिक्षा की प्रकृति और इसके उद्देश्यों को स्पष्ट करते हुए लिखा है शिक्षा अधिक आयु के लोगों के द्वारा ऐसे लोगों के प्रति की जाने वाली क्रिया है जो अभी सामाजिक जीवन में प्रवेश करने के योग्य नहीं है। इसका उद्देश्य शिशु में इन भौतिक, बौद्विक और नैतिक विशेषताओं का विकास करना है जो उसके लिए सम्पूर्ण समाज और पर्यावरण से अनुकूलन करने के लिए आवश्यक है। इस प्रकार दुर्कहैम शिक्षा को मानव के भौतिक, बौद्विक और नैतिक विकास तथा पर्यावरण से अनुकूलन का एक साधन मानते हैं। लगभग इन्हीं अर्थों में महात्मा गांधी ने कहा है शिक्षा से मेरा अभिप्राय बच्चे के शरीर, मन और आत्मा में विद्यमान सर्वोत्तम गुणों का सर्वांगीण विकास करना है। के डेविस एण्ड डब्ल्यू ई0 मुरे ने शिक्षा को कर्तव्य निर्धारण के साधन के रूप में देखते हैं।

वर्तमान में, विशेषकर विकासशील देशों में, शिक्षा आधुनिकीकरण के एक सुदृढ़, माध्यम के रूप में सामने आई है। जेक्स0एस0कोलमैन के अनुसार ''अतीत में शिक्षा जहां रूढ़िवादिता, संस्कृति-रक्षक एवं संस्कृति-प्रसारक के रूप में काम आती थी, वहीं आज यह समाज में परिवर्तन पहलुओं के निर्धारक के रूप में प्रयुक्त होती है।

✍ शोध छात्र, समाज शास्त्र, महात्मा गाँधी विद्यापीठ विश्वविद्यालय, वाराणसी

शिक्षा विकास के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण तत्व है। अधिकांश शिक्षा-शास्त्रियों के अनुसार शिक्षा का चरम लक्ष्य मानव-व्यक्तित्व का बहुमुखी विकास ही रहा है।

इस तथ्यों के आलोक में शिक्षा का सामाजिक औचित्य दूसरे आयाम मनुष्य से तीन रूपों में सम्बन्धित है। पहला, यह योग्य मानव तैयार करती है जिसके माध्यम में व्यक्ति में नैतिक गुणों (सहयोग, प्रेम, बन्धुत्व, ईमानदारी, त्याग, अनुशासन और दायित्व ग्रहण करने आदि) का विकास करता है। ये ऐसे गुण हैं जो एक ओर व्यक्ति को उसके कर्तव्य का बोध कराते हैं और दूसरी ओर उसमें सामाजिक व्यवस्था के प्रति निष्ठा उत्पन्न करते हैं। दूसरा, शिक्षा समाजीकरण का सुदृढ़ माध्यम है। समाजीकरण की प्रक्रिया के द्वारा व्यक्ति सामाजिक व्यवस्था के प्रति अपनी आस्था, मूल्य, विचारों एवं भावनाओं को निर्धारित करता है तथा समाज को अपना योगदान देता है। शिक्षा समाजीकरण का एक प्रमुख साधन के रूप में औपचारिक व अनौपचारिक दोनों तरह की व्यवस्था के माध्यम से मनुष्य के जन्म से शुरू होकर व्यस्कता की ओर कार्यशील रहती है। तीसरा, शिक्षा का सम्बन्ध आर्थिक विकास से है। इसे शिक्षा का विकासपरक स्वरूप कहा जा सकता है। वर्तमान शिक्षा को अधिकाधिक व्यवसायोन्मुख बनाया जा रहा है आज की शिक्षा व्यक्ति को व्यावसायिक ज्ञान एवं प्रशिक्षण देकर अपने व अपने आश्रितों का भरण-पोषण करने योग्य बनाती है। इस रूप में शिक्षा-दर्शन और शिक्षा सिद्वान्त का केन्द्र मनुष्य ही है।

इस पत्र का तीसरा आयाम समाज है। शिक्षा का संचालन शून्य में नहीं होता। यह समाज की संस्कृति और समाज पर पड़ने वाले बाह्य प्रभावों से अनुप्रेरित होती है। शिक्षा व्यवस्था स्वायत नहीं, वह तो सामाजिक व्यवस्था का अंग है। एस0सी0दुबे ने के0जी0 सैयदेन एवं जाकिर हुसैन के कथन के माध्यम से शिक्षा के सन्दर्भ में समाज की महत्ता को उजागर किया है। अच्छी शिक्षा एक अच्छे समाज में ही दी जा सकती है और बच्चे पर पड़ने वाला स्कूली प्रभाव उन शक्तियों द्वारा प्रतिबन्धित होता है जो राष्ट्र के व्यापक जीवन और स्कूल की चारदीवारी के बाहर की दुनिया में क्रियाशील है। स्कूल शून्य में नहीं रहता। वह समाज का एक अभिन्न और संवेदनशील अंग है। स्कूल अपने आस पास के समाज के जीवन से उदाहरण खोजता है उनको अपना लेता है। इसलिए ऐसी कोई शिक्षा सामाजिक मान्यता के बिना नहीं चल सकती। इस प्रकार शिक्षा व्यवस्था, व्यक्तित्व व्यवस्था और समाज व्यवस्था एक दूसरे के पूरक दिखाई पड़ते हैं। परन्तु वर्तमान शिक्षा अपने सामाजिक औचित्य को प्रमाणित करने में असमर्थ है। इसे इस रूप में देखा व समझा जा सकता है। यदि शिक्षा योग्य मानव तैयार करती है, तो फिर स्त्री व पुरूष में शिक्षा के इस महत्व उद्देश्य की पूर्ति की दृष्टि से कोई भी भेद किस प्रकार से माना जा सकता है। आज 21 वीं सदी के समाज में शिक्षित समाज में भी इस तरह के भेद हैं। भारतीय समाज में भूमिका निर्धारण इस सन्दर्भ में पुरुष के कार्य और स्त्रियों के कार्य में भेद किया गया है। ग्रहस्थी के प्रबन्ध का काम निरपवाद रूप से स्त्री के क्षेत्र में आता है। यदि वे घरेलू कामकाज में हाथ बढाने के लिए कोई सेवक नहीं रख सकती हैं'- कुछ ही लोग घरेलू सेवक रख पाते हैं - तो स्त्रियों को घर के सारे काम-काज खुद ही करने पड़ते हैं जैसे पानी भरना, खाना पकवाना, घर की सफाई, अपने घर के पुरूषों और बच्चों के कपड़े धोना तथा बच्चों की देखभाल। पुरूष यदि इनमें से कोई काम करते दिख जाये तो उनका उपहास किया जाता है। यह धारणा इतने गहरे जमी हुई है कि व्यवसायों मे कार्यरत तथा पूर्णकालिक सेवारत स्त्रियों से अपेक्षा की जाती है कि वे इसके

अतिरिक्त गृहस्थी के काम-काज भी देखती रहें। दूसरी ओर, पुरूषों से घर के बाहर की दुनिया के काम-काज देखने की अपेक्षा की जाती है। फिर यह शिक्षा कैसी है। शिक्षित व्यक्ति कैसा योग्य मानव तैयार हो रहा है। जाति के आधार पर आज भी ऊच-नीच व संस्कार की बात की जाती है। शिक्षा का अर्थ व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास से है, फिर यह प्रश्न क्यों कि लड़की को अधिक पढ़ाना व्यर्थ है या किसी खास तरह की शिक्षा देना उचित है लड़कों की तुलना में लड़कियों को अधिक पढ़ाना व्यर्थ है या किसी खास तरह की शिक्षा देना ही उचित है, लड़कों की तुलना में उनके जीवन के ढंग अलग तय किये जाते हैं ? यह कौन सी शिक्षा है ? शिक्षा का एक प्रमुख उद्देश्य मनुष्य को सुखी करना है। सुखी जीवन के लिए यह आवश्यक है कि शिक्षा और मनुष्य का पारस्परिक घनिष्ट सम्बन्ध हो। परन्तु आज की शिक्षा दुखी मानव तैयार कर रही है, लिंग बाद, भाषावाद, जातिवाद, धर्मवाद, क्षेत्रवाद, संघवाद, आतंकवाद आदि इसके महत्वपूर्ण उदाहरण हैं। यह धारणा बलबती बनती जा रही हैं कि शिक्षित मनुष्य इन तथ्यों को ज्यादा महत्व प्रदान करते देखे गये हैं।

चाहे उसका कारण जो हो ? इन आधारों पर हत्या, अत्याचार, बलात्कार, वैमनस्य आदि की घटनाएं आम बात बन चुकी है। मानव मानव से त्रस्त हैं सामाजिक व्यवस्था कमजोर व शिथिल होती जा रही हैं। यह कैसी सुखदायी शिक्षा है। शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति का सर्वांगीण विकास करना होता है। सर्वांगीण विकास में शारीरिक, मानसिक विकास, बौद्विक और चारित्रिक विकास आते हैं। इस प्रकार का आम मनुष्य बन पाना सरल कार्य नहीं जिसका व्यक्तित्व पूर्णतया सुशक्ति, मानसिक दृष्टि से सन्तुलित, बौद्विक दृष्टि से से पूर्णतः विकसित और चारित्रिक दृष्टि से आदर्श है आज की वर्तमान शिक्षा डिग्री धारक होना या बहुत सी बातों को जानना बन गया है। मनसा, वाचा व कर्मणा तीनों ही रूपों में सही नहीं देखा जाता है। आज के शिक्षार्थी और शिक्षित में संतुलित व्यक्तित्व का अभाव आम तौर पर देखा जा सकता हैं। विद्यालय की गुणवत्ता भी परिवार के व्यवहार तथा बच्चों की शिक्षा प्राप्त करने के प्रति रूचि को प्रभावित करती है। शिक्षण की गुणवत्ता इतनी खराब हो कि बच्चे बहुत थोड़ा सा ज्ञान प्राप्त कर सके तो निर्धन अभिभावक अपने बच्चों की पढ़ाई छुड़वाने को प्राथमिकता देते हैं। शिक्षित व्यक्तियों के चरित्र का इससे अच्छा दृष्टान्त क्या होगा कि बड़े आफीसर के अधीन कार्यशील स्त्रियों का यौन -शोषण आम घटना के रूप में पत्र-पत्रिकाओं में देखने को मिलते हैं। चिकित्सक के द्वारा मरीज का यौन-शोषण, शिक्षक के द्वारा छात्राओं का यौन-शोषण, पुलिस अधिकारी से रक्षा की गुहार में जाने वाली स्त्रियों का यौन शोषण आदि कैसी शिक्षा व शिक्षित का उदाहरण प्रस्तुत करता है। भारत में लगभग 50 प्रतिशत महिलायें किसी न किसी हिंसा का शिकार हैं।

शिक्षा का एक खास उद्देश्य जीविकोपार्जन का साधन जुटाना के सन्दर्भ में बतलाया जाता है परन्तु आज की वर्तमान शिक्षा का सम्बन्ध मूलतः सफेदपोश नौकरी पाना व बाबू बनना रह गया है। नौकरी मिली तो शिक्षा का महत्व स्पष्ट हुआ, अन्यथा नहीं यह कैसी शिक्षा है जो मनुष्य को अपने पैरों पर खड़ा न कर सके। महात्मा गांधी ने अपने लेखों व भाषणों में कई बार इस बात पर आश्चर्य प्रकट किया है कि हजारों - लाखों युवक स्नातक व स्नातकोत्तर तक पढ़ - लिख कर भी यह नहीं जान पाते कि संसार में उन्हें क्या करना है। कारण यही है कि आरम्भ से ही उनकी शिक्षा क्रियात्मक व ठोस जीवन से विच्छिन्न रही है। दूसरी ओर जिन्हें नौकरी मिल जाती है वे अपनी जिम्मेदारी से दूर होत देखे जाते हैं। डॉक्टर

का अस्पताल में न होना या समय से कम सेवा प्रदान करना, अधिकारी का समय पर न आना आदि जो सामान्य घटना बन चुके हैं। व्यक्ति की प्रास्थिति और भूमिका में सामंजस्य का अभाव है। जहां स्त्री-पुरूष साथ-साथ काम करते हैं, मानसिक गिरावट को देखा जा सकता हैं स्कूल -कॉलेज, जहां सह-शिक्षा हैं, रोमांस की घटनाऐं आम हैं। आम कामकाजी स्त्रियों की संख्या दिनोदिन बढ़ती जा रही है निर्द्वन्द भाव से सहकर्मी पुरूषों से उसका सम्पर्क जिज्ञासा का विषय है। कई बार वो सहकर्मी पुरूषों से उसका सम्पर्क जिज्ञासा का विषय है। कई बार वो सहकर्मी पुरूष सहकर्मी महिला को शारीरिक रूप से न छू पाने की अपनी विवशता के कारण अश्लील मजाकों और नजरों द्वारा बलात्कार करने की चेष्टा करते हैं। इसी तरह से आज के इस खुले परिवेश में अविवाहित स्त्री का सुकून से रहना मुश्किल है। बिना कुछ कहे ही तथाकथित शुभचिन्तकों का प्रश्न-बाधक नजरिया, पुरूषों की लोलुप दृष्टि, क्षण-प्रतिक्षण के उसके चैन को छीन लेती है।

वर्तमान शिक्षा व्यावहारिक धरातल पर मनुष्य तैयार नहीं कर पा रही है। मैं यहां नैतिकता-अनैतिकता की बात नहीं कह रहा हूँ। यह सवाल किसी भी मनुष्य समाज में निरन्तर चलने वाली बहस है। जितने धर्म उतनी नैतिकताऐं। जितने पंथ, सम्प्रदाय उतनी आचरण संहिताऐं। जितनी राज्यव्यवस्थायें, जितनी तरह की राष्ट्रीयताएं, उतनी ही विधियां और उतना ही मनुष्य व्यवहार की अपेक्षाऐं। मैं तो उस शिक्षा की बात करता हूँ जहां पढ़े-लिखे या साक्षर या अनपढ़ में अन्तर किया जा सकें। वह मनुष्य जो अपने परिवार का एक अच्छा सदस्य नहीं है। यथा अच्छा पुत्र व पुत्री, अच्छा भाई व बहिन, अच्छा पति व पत्नी, अच्छा पिता व माता आदि नहीं हैं) तो भला पड़ोस, समाज, राष्ट्र और विश्व का अच्छा सदस्य कैसे हो पायेगा? वह शिक्षा जो व्यक्ति को अक्षर-ज्ञान भले ही करा देती है, किन्तु जीवन की रंगशाला में अपना ठीक-ठीक स्थान प्राप्त करना नहीं सिखाती, अपना उद्देश्य किसी प्रकार भी पूरा नहीं कर पाती।

मेरी राय में, शिक्षा वह है जो भयमुक्त सही जीवन-शैली (उठना-बैठना, अभिवादन, वार्तालाप, आदर, प्रेम, जीने के ढंग आदि) के सहयोगात्मक व्यवहार दे, उचित निर्णय व सुझाव की क्षमता दे, दायित्व बोध व अनुशासित रखें, जीविकोपार्जन के लायक बनाये, परिवार, समाज, राष्ट्र और विश्व का अच्छा मनुष्य बनने की क्षमता दे। मनुष्य में ऐसी क्षमता है जो शिक्षा के इस भूमिका के अनुरूप व्यवहार करे। मानव में ऐसे सुशुप्त-अभिलक्षण हैं कि वह आने वाले संकटों को पहचान सके, उनके कारणों का अध्ययन कर सके और उनसे बचने के सार्थक उपाय कर सके। वह उपयुक्त विकल्प भी खोज सकता है और उन्हें परिवर्तित करने की प्रविधि भी विकसित कर सकता हैं। आवश्यकता है इन अभिलक्षणों को दिशा, गति और तीक्ष्णता देने की। इक्कीसवीं सदी के लिए यही शिक्षा की सार्थक भूमिका हो सकती है।

अतः शिक्षा की इस महान उद्देश्य की पूर्ति के लिए शिक्षा, मनुष्य और समाज में आन्योन्याश्रय सम्बन्ध हो। शिक्षा सत्य है। सत्य की सतत् खोज शिव की कामना व साधना है। कामना व साधना सुन्दर है। इसलिए शिक्षा व उसकी साधना सुन्दर होनी है। यही मेरी हार्दिक कामना है।

परिवेश-विस्तार

साहित्य की प्रगतिशीलता

✍ डॉ. रमेश प्रसाद

अपने जीवन काल में बहुत कुछ देखा-सुना, समझा-पाया है, मुखौटों की अनेक 'फैक्ट्रियां' बनते और बिगड़ते देखी हैं, परिवर्तन की कितनी ही बैसाखियों का ऊंची और सस्ती दरों पर क्रय-विक्रय होते पाया है।

आचार-जगत की छुआछूत, सवर्णों की अवर्णों के प्रति अस्पृश्यता से अधिक अस्पृश्यता आज विचार-जगत में फैली है। वैचारिक एकरूपता, मान्यताओं का मेल और भावनाओं की भैयाचारी समझ में आती है। समानधर्मीजनों के पारस्परिक अनुराग की अपेक्षाकृत अधिकता भी अपनी जगह पर ठीक है पर जब यह शिविरबद्धता, कुछ कुछ पारस्परिक संघर्ष और युद्ध स्तर के से विरोध और वैपरीत्य का रूप ले ले तो यही लगने लगता है कि जैसे साहित्य के आकाश का अनेक अशुभ ग्रहों के साथ संयोग हो गया है। परिणामस्वरूप साहित्याकारों में आपसी आत्मीयता का लोप हो गया है।

साहित्यकारों की, रचनाधर्मी वाणीसाधकों की पिछली सीढ़ियों ने पारस्परिक स्पर्धा और प्रतियोगी यशैषण न जानी हो, ऐसा नही है पर पूर्वाग्रहयुक्त लेखनगत और विचारणागत योजनाबद्ध अनुकृतिवाद तब नहीं था। एक विशेष ढंग से लिखने, सोचने, समझने, समझाने और व्यक्ति-विशेष या विधा विशेष का प्रचार करने से ही साहित्य का प्रेय और श्रेय सिद्ध होता हो, ऐसा तब नहीं माना जाता था। दलबद्ध प्रयत्नवाद लेकर चलने वाली आज की सी आचरण-संहिता साहित्य जगत में पहले नहीं देखी गयी। साहित्य किसी विधा विशेष और जीवन-दृष्टि विशेष का 'माइक' नहीं है। यह वैचारिक जगत की पृथकतावादी छूतछात सतही है जिसका साहित्य की ध्येयनिष्ठता के साथ कोई संबंध नहीं।

साहित्यकार की किसी भी प्रकार की राजनैतिक या सामुदायिक (सांप्रदायिक नहीं) प्रतिबद्धता में मुझे कोई हानि नहीं दीखती। वह अपने विचारों, निष्ठाओं और भावनाओं के चयन और समायोजन के लिए स्वतंत्र है। यह उसका मौलिक और बुमियादी जीवन-आधार और अधिकार है जो प्रत्येक को स्वाधीन बनाने और बनाये रखने वाली शासन-व्यवस्था में सुरक्षित है। आशंका वहां होती है जहां राजनैतिक प्रतिबद्धता या पक्षधरता किसी प्रकार का बौद्धिक बौनापन, कायरपन पैदा करे और इस प्रकार सुविधावाद का पर्याय बन जाये। जब राजनैतिक प्रतिबद्धता पद, पुरस्कार और पोषण प्रदान और प्राप्त करने के लिए अपनायी जाती है तब वह आंतरिक विश्वास और अंतर्भूत आस्था की शक्ति खो देती है, वह पग-पग पर अपने अस्तित्व के लिए जैसे खिसियाहट भरी माफी मांगती चलती है।

पुराने विश्वासगत और प्रेरणाप्रद रचना-मूल्यों को एकनिष्ठ सच्चाई से पकड़े उस अनवीनतावादी का मैं चरित्र, मनुष्यता और मानवीय चारूता की दृष्टि से ऊंचा मानता हूँ जो सारे प्रलोभनों और प्राप्तियों से दूर रहकर भौतिक और मानसिक अभावों से लड़ता है और अपनी जुझारू नियति से कोई शिकायत नहीं करता। इसके विपरीत सामाजिक न्याय, व्यवस्था-परिवर्तन और विश्वमानवता की मुक्ति की बातें करने वाला,

✍ ग्राम सोनहर, शिवसागर, रोहतास (बिहार)

रचनागत चतुराई और शक्ति के साथ नवीनतावाद या समकालीन आधुनिकता के प्रचार में लीन वह बुद्धिवादी मुझे घटिया किस्म का लगता है जो पग-पग पर अपने समाजवादी लेखक को शासन, सत्ता, विदेशी-संरक्षण या स्वदेशी सरकार की संवेदनशीलता से भुनाता है। उसके लिए राजनैतिक प्रगतिशीलता और साहित्यिक अगुआगिरी का अर्थ केवल उस सत्ता के 'ग्लेमर' का समर्थन और उसकी उस प्रत्येक क्रिया का अनुमोदन रह जाता है।

समकालीन साहित्य जन-भावनाओं और जन-स्थितियों का प्रतिनिधित्व कहां तक कर रहा है, इसे भी इसी-विचार-बिन्दु के संदर्भ में देखा जा सकता है। साहित्य में नयी जीवनानु-भूतियों, नये विचार, नये दृष्टिकोण और रचनाधर्मिता के नये प्रतिमान आ रहे हैं। यह सब का सब नया अनर्गल और सारहीन नहीं, जिस प्रकार सबका सब पुराना जीवन की ऊर्जा के उद्दीप्त और सार्थक है। पुराना नयी प्रतिभा की प्रगति का मार्ग अवरूद्ध करता है, प्राय: करता आया है पर शिल्प की प्रयोगशीलता और कथ्य की निर्भीकता में जो लिखा जाता है उसकी सार्थकता और शक्ति असंदिग्ध होती है। सामाजिक सरोकारों के नये नये तेवर, नये नये फैलाव और घुमाव आज साहित्य को तीक्ष्ण संवेदनशीलता और जीवंतता प्रदान कर रहे हैं। परन्तु समकालीन साहित्य जन भावनाओं का वैसा विशद और प्राणवान प्रतिनिधित्व क्यों नहीं कर पाता जैसा पराधीनता से इतने लंबे अरसे से उबरे और निर्माण पथ पर बढ़ते राष्ट्र से अपेक्षित है।

युगबोध और जन-जीवन की विशेषता, सामाजिक अन्याय, आर्थिक शोषण, जीवन-मूल्यों के पराभव के प्रति जैसा तीव्र और बेधक अंतद्रोह गद्य की विधाओं में होना चाहिए वैसा भी नहीं मिलता। लगता है अधिकांश गद्य रचनाएं यथा-कहानी, नाटक, उपन्यास आदि जीवन की यथार्थता न होकर जैसे लेखक के मन में ऊबती विलास की तृष्णा और राजधानियों के रम्य अफसरी जीवन का ब्यामोह हो जिन्हें पढ़कर लिखने वालों के भीतर कुंडली मारकर बैठी दमित आकांक्षाएँ ही मूर्त होती हैं। दहेज के अग्निकुंड में नित्य नव-विवाहिताओं की आहुति होती हो, भाग्यदग्धाओं के समाचार प्रतिदिन आते हों, सामूहिक बलात्कार और शीलहरण की दुर्घटनाएं नगरों और गांवों में लगातार होती रहती हों, हरिजनों और बंधुआ मजदूरों के घर के घर जलाये जाते हों, चारों ओर एक भयावह असुरक्षा की भावना बढ़ती जा रही हो और हम यथार्थवाद के नाम पर गिनी चुनी दूषित यथार्थताओं का ही रसीला चित्रण करते रह जायें यह कहां का लेखन-धर्म है ?

साहित्य के जन प्रतिनिधित्व की सच्ची कसौटी उसके भीतर निहित कर्म करने की प्रेरणा और ऊर्जा है। साहित्य वर्तमान सामाजिक व्यवस्था, भ्रष्टाचार, छलछद्म, मुखौटेबाजी, जीवन मूल्यों के विघटन का, व्यक्ति पर व्यक्ति के, जाति पर जाति के, वर्ग पर वर्ग के अत्याचारों का चित्रण करके ही न रह जाये वरन् उससे आगे बढ़कर इन विकृतियों और विंडबनाओं से जूझने की प्रेरक शक्ति भी प्रदान करे। जातिवाद, सवर्ण अभिजात्यवाद, सामंतवाद और स्वाधीन भारत की देन स्वदेशी अफसरवाद आज चारों ओर त्राहि-त्राहि मचाये है। जमींदारी चली गयी, राजे-रजवाड़े अतीत की वस्तु बन गये, पर उनका आतंक, उनका अभिशाप, ज्यों-का-त्यों है। बड़े-बड़े 'कुलक', हजारों-सैकड़ों एकड़ के भूमिपति किसान गांवों की अर्थ-व्यवस्था और समाजप्रणाली के अलंबरदार बने हुए गांवों की सुख-समृद्धि अपनी मुट्ठी में दबाये चुनावों के कर्त्ता-धर्त्ता और सत्तादल की नाक के बेशकीमती बाल बने हुए हैं। इन सबसे संघर्ष करने की प्रदाहक

प्रेरणा जिस साहित्य में नहीं है उसका लेखन केवल रूचिगत आनंद भले दे दे पर वह जन-प्रतिनिधित्व नहीं कर सकता। साहित्य में भी जनता के सच्चे और मुलम्मेबाज झूठे प्रतिनिधित्व के भेद की बात उतनी और वैसी ही है जैसी शासन और राजनीति में आवश्यक नहीं कि जिसके लिबास की सफेदी में कभी कोई कमी न आती हो, वही सच्चा जन-प्रतिनिधि हो। आवश्यक नहीं कि जो साहित्य चौखटेबद्ध, फारमूलाबद्ध शिविरनिष्ठा से लिखा जाता हो वही जनता का सच्चा प्रतिनिधित्व करता हो।

यहां मैं किसी भी लेखक संघ या साहित्यिक मंच की प्रासंगिकता पर किसी प्रकार का प्रश्नचिन्ह लगाये बिना इसके कारण उत्पन्न रचनागत द्विधा, द्वैत और एक गलत किस्म की प्रतिद्वंदिता की ओर अपने रचनाधर्मी विचारकों का ध्यान दिलाना चाहता हूँ। बंटवारे की भावना से राजनीति का गठन भले बनता हो पर साहित्य में यह प्रवृत्ति प्राय: बिगाड़ने वाली ही पायी गयी है। जीवन कोई 'कमोडिटी' नहीं है जिसे इस प्रकार बांटकर साहित्य में उसके समग्र आंकलन और प्रतिफलन की आशा की जाये। किसी भी गतिशील जीवनधर्म और समाजदर्शन को राजनीति की उस मुहावरेबाजी और मौसमी प्रशासनिक परिवर्तनों के अनुसरण और अनुकरण में नहीं बांधा जा सकता। राजनीति के बदलाव और अलगाव पर यदि लेखन भी शिविरों में बंटने लगेगा तो जनता उसके पथप्रदर्शक रूप और मूल्यगत नैतिकता के प्रति उसकी अविवादास्पद आस्था को कैसे पहचान सकेगी ?

शासन और राजनीति द्वारा साहित्यकार की बिक्री और उसके अधिकाधिक सत्ता का संरक्षण तलाश करने की बात भी बराबर सुनी जाती है और इस खरीदी के पीछे दलबद्ध योजना का अनुभव भी किया जाता है। इसी संदर्भ में यह प्रश्न उठ खड़ा होता है कि सत्ता और संस्कृति का (जिसमें साहित्य-प्रणयन और उसका प्रकाशन भी आता है) क्या-कैसा संबंध हो। यदि एक ओर सत्ता की संरक्षण और संपोषण वृत्ति की प्रशंसा होती है और उसे शासकीय संवेदनशीलता का नाम दिया जाता है तो दूसरी ओर अवहेलित साहित्यकार वर्ग इसके पीछे साहित्य और साहित्यकारों के प्रति सत्ता की सीमित, अनुदार दृष्टि का अनुभव करते हैं और इसके व्यक्ति विशेष या विचारधारा-विशेष द्वारा की गयी अवज्ञा और बेसरोकारी का परिचायक मानते हैं।

यदि शासन या राज्य सरकार द्वारा साहित्य-रचनाकारों, अध्येताओं और विविध बुद्धिजीवियों को संपोषण, आर्थिक वृत्तियां, पुरस्कार और मानद धनराशियां दी जाती हैं तो यह उन पर किसी प्रकार का अहसान या उपकार नहीं है। यह करदाता द्वारा प्रदत्त धन का सही दिशा में उपयोग और व्यय है जिसकी परिधि और प्रसार अन्य जीवनीपयोगी और लोककल्याणकारी मदों और बजट की तरह उनके साथ समवेत रूप से बढ़ते रहना चाहिए। छपने-छपाने की समस्या आज विकराल हो उठी है। प्रकाशन-व्यय आज इतना बढ़ गया है कि सामान्यत: पुस्तक का प्रकाश में आना संभव नहीं हो पाता। संयुक्त प्रकाशन, छोटी, कम खर्चीली पत्रिकाओं का 'मिनि' युग आया है। स्थापित लेखक भी जितना लिखते हैं वह सब का सब पत्रिकाओं में छप नहीं पाता, श्रेष्ठ प्रकाशनों के रूप में निकल नहीं पाता। आज सहकारी प्रकाशन-संस्थाओं के निर्माण और उनके अधिक कर्मठतापूर्ण फैलाव का समय आ गया है। कम अच्छे से सदैव यह आशा भी नहीं की जा सकती कि अधिक अच्छे के प्रकाशन के लिए वह अपने प्रकाशन का मोह छोड़ देगा। प्रकाशन की ऐसी संकटपूर्ण स्थिति में यदि नये कवि-लेखकों को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से अपनी नवोदित कृति को प्रकाश में लाने के लिए

शासकीय सहायता या अनुदान मिलता है तो इसका स्वागत होना चाहिए। इस प्रकार की सरकारी मदद या प्रोत्साहनप्रद वृत्ति कवि-लेखकों की निर्भीक वाणी और स्वतंत्र भाव-विचार-प्रकाशन को शासन की मान्यताओं के अनुरूप सीमित या मर्यादित करने के लिए दी गयी कोई प्रलोभन-राशि या रिश्वत नहीं है।

इसी प्रकार समय-समय पर वरिष्ठता, रचनाकार की श्रेष्ठता, कृति की कालजयी जीवन-शक्ति के लिए दिये जाने वाले सम्मान भी साहित्य चेतना के बहाने राष्ट्रीय चेतना के प्रति कृतज्ञता ज्ञापन के ही उपकरण हैं। यह लोकरूचि, लोकसाधना और लोकसाधकों की गरिमा की स्वीकारोक्ति है जिसे कोई भी स्वाधीन अभ्युदयशील राष्ट्र सहर्ष स्वीकार किया करता है।

जो शासकीय पुरस्कार, वृत्ति या सम्मान किसी दलगत प्रतिबद्धता के फलस्वरूप प्राप्त होता हो और किसी विशेष प्रकार की विचार-विधा अपनाने पर ही मिलता हो, जिसे स्वाभाविक रूप से पाने के लिए साहित्यकार को स्वीकृति के लिए उठे अनेक हाथों में अपना हाथ मिलाना पड़ता हो वह साहित्यकार की स्वतंत्र आस्था और रचना-विषयक अवधारणा से कहां तक मेल खायेगा यह भी विचारणीय है। मुश्किल यहीं आकर पड़ती है जब कोई व्यक्ति या दल-विशेष शासकीय नीति पर उसके संस्कृति, साहित्य, शिक्षा-विभाग पर अपनी निजी अभिरूचि लादता है और साहित्य-सृजन की बहुवर्णी विविधता को समान रूप से रक्षणीय न मानकर अपने राजकीय प्रभाव से सारी रचना-सृष्टि को एक विशेष प्रकार की निर्मित और भावधारा की प्रगति का अनुवर्ती बनाना चाहता है।

व्यवस्था के प्रति एक कठोर आलोचनात्मक दृष्टिकोण किसी भी जागरूक और समय की नाड़ी की गति पहचानने के लिए तत्पर रचनाकार की नियति हुआ करती है। उसके मन का एक स्वप्न होता है, एक आदर्श चित्र होता है, संपूर्ति और सौंदर्य की समग्रता की एक कल्पना होती है जो ईमान की वेदना में आप से आप रच जाती है।

फूहड़, अश्लील और अशालीन संबोधनों, गाली-गलौज का प्रयोग किये बिना भी अपने चारों और घिरी बुराइयों और उनसे जनमते-पनपते हादसों को, उनकी पूरी की पूरी सामाजिक संवेदना और करूणा को उसी शक्ति के साथ चित्रित किया जा सकता है, जन-जन में जगाया जा सकता है। नये-नये वैचारिक संक्रमणों और अभिव्यक्ति की बेचैनियों विवशताओं के बीच आकर नयी प्रेरणाओं की चुनौतियों में परम्परा स्वयं नयी भाषा तलाश लेती है।

परिवेश-विस्तार

अठारहवीं सदी में भारतीय समाज का स्वरूप

✍ डॉ. प्रतिभा पटेल

आर्थिक क्षेत्र में हर ग्राम अपनी न्यूनतम आवश्यकताएँ लगभग खुद पूरी कर लेता था। उसका देश के दूसरी भागों से आर्थिक आवश्यकताओं के कारण होने वाला संबंध सीमित था। खेती की तकनीकों में सैकड़ों सदियों से कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन नहीं आया था। स्थानीय दस्तकारियों और खेतिहर कामों में मामूली उपकरणों से ही काम चलाया जाता था। उद्योगों में मामूली औजारों की मदद से विलासिता और अर्द्ध विलासिता की वस्तुओं का उत्पादन होता था। निर्यात की वस्तुओं को छोड़ दें तो इन वस्तुओं का उत्पादन मुख्यत: नगरीय जनसंख्या के लिए होता था।

भारतीय व्यापारी दूसरे देशों से व्यापार करते और भारी मुनाफे कमाते थे, परन्तु इन भारी मुनाफों का उपयोग उद्योगों के विकास के लिए नहीं किया जाता था। प्रौद्योगिक सुधार नहीं किए गए। आतंरिक और विदेशी व्यापार के कारण कुछ परिवर्तन अवश्य हुए। उदाहरण के लिए घरेलू प्रथा का आरम्भ हो चुका था। कालांतर में हो सकता है कि ये शक्तियाँ इतनी बढ़ जातीं कि मूलभूत परिवर्तन ला सकतीं पर ऐसा हो सके, इसके पहले ही भारत अंग्रेज दासता का शिकार हो गया और भारत में आंतरिक रूपांतरण चाहे वह जितना भी धीमा रहा हो, ठप्प पड़ गया।

आर्थिक जड़ता के साथ-साथ सामाजिक क्षेत्र में भी ऐसी ही जड़ता आ गई थी। हिन्दू सामाजिक प्रणाली मुख्यत: उस जाति-प्रथा पर आधारित थी जो प्राचीनकाल की उपज थी। ऐतिहासिक विकास के कालक्रम में इसमें अनेक परिवर्तन आए थे, परन्तु इसका वंशगत और असमान आधार बचा रह गया था। जाति-प्रथा सामाजिक एकता की कमी का सबसे महत्वपूर्ण कारण थीं। देश में सैकड़ों जातियाँ और उपजातियाँ थीं। जिनके कारण समाज खंडित हो चुका था। किसी जाति या उपजाति का सदस्य होने का भाव ही हावी था। आबादी के एक बड़े भाग को ऊँची जातियों वाले अछूत समझते थे।

सैद्धान्तिक रूप में हिन्दुओं का जीवन धर्मशास्त्रों द्वारा नियंत्रित था, जिन्होंने विभिन्न जातियों के लिए अलग-अलग अधिकार और कर्तव्य निर्धारित किए थे। सती, बाल-हत्या, बाल-विवाह और अंधविश्वासों जैसी अनेक कुप्रथाएँ और कुरीतियाँ हिन्दू सामाजिक प्रणाली के अंग बन चुकी थीं। समाज में स्त्रियों की स्थिति गिर चुकी थी। विधवाओं का जीवन कष्टमय था। खासतौर से तब जब वह ऊँची जाति की हों। बचपन में विधवा हो जाने वाली लड़की का पुनर्विवाह नहीं हो सकता था।

मुस्लिम भी जातिगत, उपसंस्कृति, पथिक और कबीलाई मतभेदों के कारण बँटे हुए थे। पिछड़ी हुई आर्थिक प्रणाली और एकजुटता तथा समानता की भावना से रहित सामाजिक प्रणाली के कारण प्रगति की शक्तियों का विकास अवरूद्ध हुआ। राजनीतिक प्रणाली की भी इतनी ही बुरी स्थिति थी। राजनीतिक वफादारी का स्वरूप मुख्यत: स्थानीय या क्षेत्रीय था। 1707 में औरंगजेब की

✍ मकान नं. 223/एन./3, वार्ड सं.-07, गौरक्षणी, सासाराम

मृत्यु के बाद मुगल साम्राज्य का पतन हो रहा था। भारत अनेक छोटे-बड़े राज्यों में बँटा हुआ था जो आपस में लड़ रहे थे। मुगल साम्राज्य के पतन के बाद मराठा भारत की सबसे बड़ी ताकत के रूप में उभरे, परन्तु वे भी एक भारतीय राष्ट्र की धारणा से अपरिचित थे। राष्ट्रीयता की उनकी धारणा बहुत तंग और सीमित थी और वे सबको एक राष्ट्र के रूप में एकताबद्ध करने की बजाय देश के दूसरे भागों पर छा जाने की सोच रहे थे। आज राष्ट्र का जो अर्थ हम लगाते हैं, उस रूप में इसका विकास नहीं हुआ था।

यही वे परिस्थितियाँ थीं जब भारत में सत्रहवीं सदी के आरंभ से ही सक्रिय यूरोपीय व्यापारी कम्पनियों ने देश के राजनीतिक मामलों में दखल देना आरम्भ किया। भारतीय समाज की राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक कमजोरियों का लाभ उठाकर ब्रिटिश भारत-विजय में सफल रहा।

भारत में ब्रिटिश शासन के प्रसार के साथ कंपनी के प्रभाव और विशेषाधिकारों में कमी आने लगी और ब्रिटिश शासन के प्रभाव और विशेषाधिकार बढ़ने लगे। औद्योगिक क्रांति की ब्रिटेन में पहले ही शुरूआत हो चुकी थी और नए पूँजीपति वर्ग की शक्ति बढ़ रही थी ब्रिटिश साम्राज्य अब अधिकाधिक इसी वर्ग के हित की पूर्ति करने लगा। भारत कारखानों के माल की खपत के लिए विशाल बाजार तथा कच्चे मालों के एक स्रोत के रूप में ढल गया। इस तरह कुछ ही दशकों के अंदर भारत में ब्रिटिश साम्राज्य के चरित्र में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन आया। 1857 के विद्रोह के कुचले जाने के बाद भारतीय साम्राज्य ब्रिटिश सम्राट के अधीन आ गया और भारत में ब्रिटिश सरकार यहाँ की सबसे बड़ी शक्ति बन गयी। जिन राज्यों में भारतीय राजाओं का शासन था, वे भी प्रभुता सम्पन्न न थे, क्योंकि उन पर ब्रिटिश सरकार का बहुत अधिक दबदबा था। इस तरह लगभग सौ से अधिक वर्षों के अंदर पूरा देश ब्रिटिश नियंत्रण में आ गया।

कालान्तर में दूसरे वर्ग भी महत्वपूर्ण हो गए। ब्रिटिश शासन ने किसानों को बहुत बड़ी संख्या में भूमिहीन बनाया। बँटाईदारी के अधिकार के लिए तथा शोषण के खिलाफ भूमिहीनों के आंदोलन तथा किसानों के आंदोलन उभरने लगे। औद्योगिक मजदूर वर्ग बाद में, बीसवीं सदी में, सामाजिक दृष्टि से महत्वपूर्ण बना।

इस तरह ब्रिटिश आधिपत्य का भारतीय समाज पर दूरगामी प्रभाव पड़ा। इस प्रभाव के परिणामस्वरूप और इसकी प्रतिक्रिया में भारतीय जनता ने अपने समाज की छान-बीन आरंभ कर दी ताकि उसमें सुधार किया जा सके और उसके आधुनिकीकरण की बुनियाद रखी जा सके।

उन्नीसवीं सदी में धार्मिक और सामाजिक सुधार आन्दोलनों का एक सिलसिला आरंभ हुआ। इससे राष्ट्रीय चेतना तथा राष्ट्रीय आंदोलन के विकास का रास्ता तैयार हुआ, जिनका उद्देश्य देश को स्वतंत्र कराना और समाज का पुर्ननिर्माण करना था।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. भारत की राष्ट्रीय एकता एस. टी. ओ., लक्ष्मीमल्ल सिंघवी
2. युनुस मुहम्मद-फ्रंटीयर स्पीक्स
3. राष्ट्रपिता, सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली
4. मल्होत्रा इंदर-इंदिरा गांधी (नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, 2007)
5. पण्डित विजया लक्ष्मी, प्रिजम डेज
6. सभ्यता की कहानी-अर्जुन देव
7. एंडूज हार्डी रावर्ट-ए लैम्पफर इंडिया, ए. जे. प्रेटिसहाल 1960

पत्रकारिता के विविध स्वरूप

✍ डॉ. प्रणव

मनुष्य के जीवन में प्रारम्भ से लेकर आज तक पत्रकारिता का बड़ा महत्व रहा है। भारतीय पत्रकार अपनी देशभक्ति, निष्ठा, लगन, परिश्रम एवं अपूर्व त्याग के लिये विख्यात रहे हैं। प्रारम्भ में स्वाधीनता के लिए संघर्ष एवं राष्ट्रीयता के लिए प्रचार करना ही उनका कर्तव्य था। पत्रकारिता अपने ऊँचे आदर्शों का सदा से ही पालन करती रही है। प्रारम्भिक पत्रकारिता के पत्रकारों के आदर्श महान थे और साधन सीमित। आज पत्रकारिता के साधन असीमित हैं किन्तु उनके आदर्श छोटे हो गये हैं। सम्प्रति पत्रकारिता के स्वरूप में पर्याप्त बदलाव आया है।

भारत में पत्रकारिता को पहले मिशन के रूप में अपनाया गया। पत्रकार राजकिशोर के अनुसार, ''पत्रकारिता खबरों की सौदागरी नहीं है। न उसका काम सत्ता के साथ शयन है। उसका काम जीवन की सच्चाईयों को सामने लाना है।''

पत्रकारिता अभिव्यक्ति का सम्पूर्ण विज्ञान है। आदर्श कला है, उत्तम व्यवसाय है, और मानव चेतना का उद्दीपक है। युगबोध के प्रमुख तत्वों के साथ ही मानवता के विकास और विचारोत्तेजन का राजमार्ग ही पत्रकारिता है जिससे जनजीवन पल-पल उद्वेलित होता रहता है।

''समाज, संस्कृति, साहित्य, दर्शन, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के व्यापक प्रसार के चलते मानव संघर्ष, क्रांति, प्रगति-दुर्गति से प्रभावित जीवन सागर में उठने वाले ज्वार-भाटा को दिग्दर्शित करने वाली पत्रकारिता अत्यन्त महत्वपूर्ण हो चुकी है। जनता, समाज, राष्ट्र और विश्व को गरीबी का भूगोल, पूँजीपतियों का अर्थशास्त्र और नेताओं का समाजशास्त्र पढ़ाने में पत्रकारिता ही सक्षम है। इस जीवंत विद्या से जन-जन के दु:ख-सुख, आशा-आकांक्षा को मुखरित किया जाता है।'' (अर्जुन तिवारी)

आजादी से पूर्व पत्रकारिता का प्रारम्भ अंग्रेजी सत्ता के फौलादी पंजे से मुकाबला करने के लिए हुआ था। आर्थिक संकट पथ की सबसे बड़ी बाधा थी फिर भी पत्रकारों के जोश में कोई कमी नहीं थी। श्री रामचन्द्र शर्मा के ''महारथी पत्र'' की पंक्तियां जीवंतता एवं विदेशी सत्ता के प्रबल प्रतिरोध की साक्षी हैं :-

''चढ़ रहा है हर जुबां पर अब जुनुने लाजपत,
क्या कोई तूफान लायेगा ये खूने लाजपत ?
हो रहे हैं दर्द चेहरे आज क्यों हुक्काम के,
सुर्ख होने चाहिये थे पी के खूने लाजपत।

स्वतंत्रता से पूर्व की पत्रकारिता तेजस्वनी, ओजस्वनी, निर्भय, परम न्याय परायण तथा सर्वत: पुण्य संचारिणी रही है। तभी तो पं. नेहरू, महात्मा गाँधी, एनी बेसेण्ट, गोपाल कृष्ण गोखले, लाला लाजपतराय, बाल गंगाधर तिलक, सुरेन्द्र नाथ बनर्जी तथा चितरंजन दास जैसे देशभक्तों को पत्रकारिता से लगाव था। पत्रकारिता राष्ट्रीय जागरण का सशक्त साधन थी।

डॉ. सुशीला जोशी ने पत्रकारिता का स्वरूप निम्न प्रकार से व्याख्यापित किया है - 1. समाज की गतिविधियों का दर्पण 2. सूक्ष्म शक्ति 3.

✍ 'कल्पतरू' कृष्ण बिहार, पीलीभीत-262001 उ. प्र.

नीर-क्षीर विवेक 4. सामाजिक मूल्यों की नियामिका 5. परिवेश से साक्षात्कार 6. विविधात्मक और व्यापक 7. कुशल चिकित्सक 8. सम्प्रेषण का माध्यम 9. महान लक्ष्य 10. प्रेरणादायी व जागरूक 11. मानवीय गुणों के विकास में सहायक 12. सुदृढ़ कड़ी 13. जीवन का आधार।"

सार रूप में पत्रकारिता के विविध स्वरूपों को निम्न भांति विवेचित किया जा सकता है -

1. समाज की गतिविधियों का दर्पण

पत्रकार भी सभी की तरह एक सामाजिक प्राणी है। वह समाज में रहकर समाज की उन्नति-अवनति, दुःख-सुख सभी से प्रभावित होता है। वह जो कुछ भी अनुभव करता है उसी का अनुभव समाज को भी कराता है। यही कारण है कि पत्रकारिता ऐसे दर्पण के सदृश है जिसमें समाज में घटित होने वाली घटनायें अपने यथार्थ रूप में प्रतिबिम्बित हो उठती हैं। स्वस्थ्य पत्रकारिता न केवल घटनाओं का विश्लेषण जरूरी है वरन् विसंगतियों को भी दूर करने का भी प्रयास करती है। "इस प्रकार पत्रकारिता सामाजिक जीवन की सत्-असत् दृश्य-अदृश्य और शुभ-अशुभ छवियों का दर्पण है। इसका स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है।

2. सूक्ष्म शक्ति

पत्रकारिता सामान्य घटनाओं को उजागर करने के साथ-साथ मन की सूक्ष्म भावनाओं का चित्रण करने में भी सक्षम है। आजादी की लड़ाई में राष्ट्र के कोने-कोने में जागरण, नवस्फूर्ती और नवनिर्माण के मंत्र को फूंकने का कार्य पत्रकारिता द्वारा ही सम्पन्न हुआ था। पत्रकारिता स्वतन्त्रता की ध्वजा वाहक सिद्ध हुई। एक सजग प्रहरी के समान पत्रकारिता ने आजादी के दीवानों का पथ प्रदर्शन किया। हर पल घटित होने वाली कभी भयावह, कभी चमत्कारिक घटनाओं के बीच मानव मन को सहज बनाने का कार्य पत्रकारिता ही करती है।

3. नीर-क्षीर विवेक

स्वस्थ पत्रकारिता सदैव निष्पक्ष रहकर व्यक्ति, वस्तु या घटना के निषेधात्मक ही नहीं वरन् साकारात्मक पक्ष को उजागर करती है। इसी कारण इसे पंचम वेद कहा गया है। और इसीलिये जनता लिखी हुई इबारत पर विश्वास करती है। विधायक और कल्याणकारी दृष्टि द्वारा लोक रूचि के परिष्कार का महान कार्य पत्रकारिता द्वारा ही संभव है।

4. सामाजिक मूल्यों की नियामिका

"पत्रकारिता यदि सचमुच पत्रकारिता है तो वह एक मार्गदर्शिका, जीवन निर्मात्री और सामाजिक मूल्यों की विधायिका ही हो सकती है, साथ ही सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक प्रतिमानों को स्थापित करती है।" (डॉ. सुशीला जोशी)

समाज के विभिन्न वर्गों को उनके कर्त्तव्य का बोध कराती है। संकटकालीन परिस्थितियों में जनता का मनोबल बढ़ाकर सौहार्दभाव स्थापित करती है। सर्वधर्म समभाव एवं वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना का प्रसार करती है। मानव मूल्यों की स्थापना कर-जन जीवन को विकास की ओर अग्रसर करती है।

5. परिवेश से साक्षात्कार

"पत्रकारिता के जरिये न केवल हम अपने परिवेश से परिचित होते हैं परन्तु दूर-दराज के देशों से भी हमारा साक्षात्कार कुछ ही क्षणों में हो जाता है।" (डॉ. सुशीला जोशी)

आज संचार माध्यम के क्षेत्र में अभूतपूर्व परिवर्तन होने के कारण विश्व के किसी भी कोने

में घटित होने वाली घटना को न केवल हम सुन सकते हैं वरन् देख भी सकते हैं। यही नहीं, इण्टरनेट के द्वारा हम अपनी राय भी प्रकट कर सकते हैं। इसलिए आज का मनुष्य एक सामाजिक प्राणी नहीं वरन् अन्तर्राष्ट्रीय प्राणी बन गया है।

6. विविधात्मक और व्यापक क्षेत्र

दैनिक जीवन की घटनाओं को प्रकाश में लाना ही पत्रकारिता नहीं है। यदि हम विचार करें तो पायेंगे कि आज जीवन का कोई क्षेत्र ऐसा नहीं है जहाँ पत्रकारिता का प्रवेश न हो। प्रात: से रात्रि तक, रसोई से अंतरिक्ष तक, गर्भावस्था से लेकर मृत्यु के क्षणों तक कहीं भी कोई भी ऐसा क्षेत्र नहीं है जो पत्रकारिता का विषय न हो। सामान्य जन को उनकी भाषा में उनके अधिकारों को समझाने, महिला जगत, बाल जगत, क्रीड़ा जगत, स्वास्थ्य जगत, परिवार कल्याण, शिक्षा जगत से सम्बन्धित जानकारी देने का कार्य आज पत्रकारिता के द्वारा ही सम्पन्न होता है।

7. कुशल चिकित्सक

'पत्रकारिता एक कुशल चिकित्सक की तरह सामयिक परिस्थितियों एवं घटनाचक्र की नाड़ी की जाँच कर उसके स्वास्थ्य को सुधारने का कार्य करती है। पत्रकार के पास एक तीखी व तेज नजर तो होती ही है अपितु शिव की सी तीसरी आँख भी होती है। यही कारण है कि पत्रकार परिवेश के शरीर में दौड़ते हुए रक्तचाप की परीक्षा करता है उसकी धड़कनों का हिसाब रखता है और जब वह अधिक विकृत होने लगता है तब पत्रकार कुशलतापूर्वक सामाजिक परिवेश की एक्स-रे रिपोर्ट प्रस्तुत करता है। यह काम वह फोटो पत्रकारिता के माध्यम से करता है।'' (डॉ. सुशीला जोशी)

जिस प्रकार चिकित्सक शरीर के रोगों का निदान करता है उसी प्रकार पत्रकार समाज में व्याप्त दोषों के निवारण के लिये न केवल जनता को जागृत करता है वरन् बुराई का निदान भी प्रस्तुत करता है। पत्रकारिता सामाजिक कुरीतियों (बाल विवाह, विधवा-उपेक्षा, दहेज उत्पीड़न, बहू की हत्या, वेश्यावृत्ति अंधविश्वास) को मिटाने के लिए प्रभावी कदम उठाती है।

8. सम्प्रेषण का माध्यम

डॉ. सुशीला जोशी के अनुसार, 'पत्रकारिता सम्प्रेषण का सामाजिक माध्यम है। यही वह साधन है जो हमें विश्व में होने वाले सम्पूर्ण नवीन अविष्कारों, घटनाओं अनुसंधानों से परिचित कराकर प्रभावित करता है। 'उदन्त मार्तण्ड', 'समाचार सुधावर्षण', 'बंगदूत', 'बनारस अखबार', 'हिन्दी प्रदीप', 'भारत मित्र', 'ब्राह्मण' सदृश पत्रों ने आजादी की लड़ाई के समय न केवल जनता की चिन्तनधारा को प्रभावित किया वरन् निश्चेष्ट भारतवासियों को उद्‌बुद्ध भी किया। 'उतिष्ठ जागृत प्राप्यवरान्निबोधत' के अनुरूप भारतेन्दु की प्रेरणा से 'डूबत भारत नाथ वेगि जागो अब जागो' द्वारा भारत की युवा पीढ़ी को जागृत किया। सम्प्रति दूरदर्शन आदि के माध्यम से विश्व-क्षितिज पर अवतरित होने वाले विभिन्न उत्सवों के आयोजन, साक्षात्कार, परिचर्चा आदि कार्यक्रम जनता का ज्ञानवर्धन करते हैं।

9. महान लक्ष्य

पत्रकारिता का पवित्र लक्ष्य है - देश के कोने-कोने में जागरण, नवस्फूर्ती एवं नवसृजन के मंत्र को फूंकना। भारतीय स्वतन्त्रता के संघर्ष में पत्रकारिता की भूमिका अविस्मरणीय रही है। सुप्त राष्ट्रवासियों को आजादी पाने के लिये जागरूक बनाने का महान कार्य पत्रकारिता द्वारा ही संभव हुआ। ''भारत के हम और हमारा भारत प्यारा,

स्वतन्त्रता है जन्मसिद्ध अधिकार हमारा" के मंत्र को जन-जन में प्रचारित करने का कार्य पत्रकारिता ने ही किया। गुलामी के दिनों में यही स्वर गूँजता रहा।

"ऐ मादरे हिन्द न हो ग़मग़ी दिन अच्छे आने वाले हैं।
आजादी का पैगाम तुझे हम जल्द सुनाने वाले हैं।
माँ तुझको जिन जल्लादों ने दी है तकलीफ जईफ़ी में।
मायूस न हो, मग़रूरों को हम जल्द हटाने वाले हैं।

- अर्जुनी तिवारी

आज के समय में जनता को व्यक्तित्व निर्माण की प्रेरणा देने, उनकी रूचि को संस्कारित करने तथा आर्थिक, वैज्ञानिक प्रगति के साथ जन-जन को जोड़ने जैसे कार्य को साकार रूप देना ही पत्रकारिता का पावन लक्ष्य है।

10. संदेश प्रेषण का माध्यम

नवीनतम अविष्कारों के चलते संवाद प्रेषण मुद्रण एवं पत्र प्रसारण के क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन हुये हैं। गुमशुदा व्यक्तियों, अपहृत बालकों, रूठे हुये परिजनों तक संदेश भेजने का त्वरित कार्य पत्रकारिता द्वारा ही संभव है। आजकल तो दूरदर्शन के माध्यम से प्रिय खिलाड़ियों अभिनेताओं को शुभकामना संदेश तथा वैलेन्टाइन डे पर प्रेमियों द्वारा एक दूसरे के प्रति प्रेम सन्देश भेजने का प्रचलन जोरों पर है। मानव शक्ति के बिखरे हुये कणों को एकत्रित करने का कार्य पत्रकारिता द्वारा ही संभव है। किसी भी क्षेत्र में यदि किसी विषय पर जनमानस को संगठित करना हो तो आज यह कार्य पत्रकारिता जैसे सशक्त माध्यम से पल भर में ही संभव हो सकता है।

11. प्रेरणादायी एवं जागरूक

जागरण की प्रक्रिया बहुमुखी, बहुआयामी और सर्वव्यापी होती है। यह प्रक्रिया पत्रकारिता द्वारा सतत् प्रवाहित होती है। पराधीन भारत की पत्रकारिता का चरित्र प्रेरणादायक था। उसके द्वारा भारतीयों के ह्रदय में त्याग और बलिदान की भावना का संचार किया गया। उस समय के पत्रकार झुकते नहीं थे भले ही टूट जाते थे। उस समय की पत्रकारिता को अग्निवर्षा पत्रकारिता का नाम दिया गया था। विभिन्न पत्रों ने फिरंगी दमन चक्र को चुनौती देते हुए आजादी के संघर्ष को गति प्रदान की। आजादी के बाद भी पत्रकारिता ने जश्न नहीं मनाया। वरन् राष्ट्र में व्याप्त हाहाकार एवं अव्यवस्था के प्रति राजनीतिज्ञों एवं जनता को जागरूक किया। तेजपुत्र पत्रकारों ने राजनेताओं का पथ प्रदर्शन किया। सन् 1948 से 1974 ई. तक की अवधि में 'आज जीत की रात पहरूये सावधान!" द्वारा गिरिजा कुमार माथुर ने दायित्व बोध से परिचित कराया तो "वहीं गाँव-गाँव पाँतर-पाँतर को हम भू-स्वर्ग बनायेंगे' की प्रतिज्ञा नागार्जुन ने दोहरायी।" (अर्जुन तिवारी)

12. मानवीय गुणों के विकास में सहायक

प्रताड़ना, जेल यातना से जूझकर पत्रकारों ने हिन्दी पत्रकारिता की पुष्ट आधारशिला रखी। पत्रकारिता के अध्येता अपने तेजस्वी पत्रकार पूर्वजों से प्रेरणा ग्रहण कर अपने चरित्र को मानवीय गुणों से युक्त बना सकते हैं। पत्रकार सत्य के उद्‌गाता, स्वतन्त्रता के अनुष्ठाता एवं कर्त्तव्य पथ के अनवरत् पथिक होते हैं। उनके यह गुण जनमानस को प्रभावित करते हैं। जनमानस में निर्भीकता एवं स्वतन्त्र निर्णय की क्षमता जागृत होती है। पत्रकारिता मानव के अन्तर्मन पर पड़े अज्ञान के आवरण को छिन्न-भिन्न कर आलोक की किरण विकीर्ण करती है।

13. सुदृढ़ कड़ी

पत्रकारिता सरकार एवं जनता के मध्य

सुदृढ़ कड़ी है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि जनता के हित के लिये पत्रकार सरकार के सामने दीवार बनकर खड़े हो जाते हैं। समाचार पत्रों के माध्यम से ही जनता सरकार की नीतियों के औचित्य-अनौचित्य से परिचित होती है। पत्रकारों के द्वारा किया गया सरकारी नीतियों का विश्लेषण जनता को तथ्यों से अवगत कराता है। जनता की विचारधारा पत्रकारिता से अधिक प्रभावित रहती है।

14. जीवन का आधार

नवीन परिवेश में पत्रकारिता मानव जीवन का सुदृढ़ आधार बन चुकी है। आज पूरे विश्व की खबरें एक मिनट में ही जानने की इच्छा होती है। यह कार्य पत्रकारिता द्वारा बड़ी कुशलतापूर्वक निभाया जाता है। समाज का प्रत्येक वर्ग अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये पत्रकारिता पर निर्भर है। वकील, अध्यापक, विद्यार्थी, गृहणी, बेरोजगार, वैज्ञानिक, बच्चे, किशोर सभी अपनी-अपनी आकांक्षाओं को पूर्ण करने के लिये पत्रकारिता की ओर आशा भरी निगाहों से देखते हैं। हिन्दी पत्रकारिता मानव को प्रकाश की ओर ले जाने वाली किरण है। यह सारस्वत यज्ञ है जिसमें अधिकांश पत्रकार परिवेश की चिंता कर रहे हैं तथा अपने चिंतन से पाठकों के मानस का उन्नयन कर रहे हैं भारत की अखण्डता, सर्वधर्म समभाव, विश्व-बन्धुत्व की भावना को पुष्ट करने के लिए हिन्दी पत्रकारिता सत्यं शिवं सुन्दरम् का शंखनाद कर रही है।

सन्दर्भ -

1. पत्रकारिता के प्रतिमान : प्रेमचन्द्र गोस्वामी
2. हिन्दी शब्द सागर : श्याम सुन्दर दास पृष्ठ 2798
3. वैज्ञानिक परिभाषा : डॉ. बद्रीनाथ कपूर पृष्ठ 117
4. हिन्दी साहित्य का इतिहास : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
5. हिन्दी साहित्य का इतिहास : डॉ. नगेन्द्र
6. हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास : गुलाब राय
7. हिन्दी भाषा एवं साहित्य का इतिहास : डॉ. रामस्वरूप आर्य
8. पत्रकारिता एवं निबंध लेखन : डॉ. रामस्वरूप आर्य
9. हिन्दी पत्रकारिता : सिद्धान्त और स्वरूप : सविता चड्ढा
10. हिन्दी पत्रकारिता : हरिमोहन
11. जन पत्रकारिता एवं जन संचार : प्रो. सूर्य प्रसाद दीक्षित

समाज की वर्तमान दशा से रू-ब-रू करवाती उदय प्रकाश की कविताएँ

✍ डॉ. राधा वर्मा

आज का परिवेश मूल्यहीनता के दौर से गुजर रहा है। सांस्कृतिक तथा बुनियादी मानव-मूल्य के ह्रास के कारण समाज में अनेक विसंगतियाँ पैदा हो रही हैं। विसंगतियाँ तो पैदा होंगी ही क्योंकि इन मूल्यों को भूलकर जब कोई जीवन जीने की कोशिश करता है तो अनिष्ट की सम्भावना बढ़ जाती है। इस सच को उदय प्रकाश की कविताएँ हमारे सामने लाती हैं।

हमारी संस्कृति मनुष्य को सम्मान की दृष्टि से देखने की पक्षधार रही है फिर वह चाहे पुरुष हो या नारी। नारी के बारे में तो यहाँ तक कहा जाता है कि 'नारी का सम्मान होता है जहाँ, खुशहाली होती है वहाँ'। परन्तु आज के समय में ससुराल में अनेक कष्ट झेल रही बहुएँ चिंता का विषय हैं। आज वह दुःखी और अपमानित होकर या तो स्वयं ही अपनी जीवन लीला समाप्त कर रही हैं या परिवार के लोग ही कोई षड्यन्त्र रचकर उसको मौत के घाट उतार देते हैं। अनेक कष्टों को झेलते हुए तथा अपमान सहन करते हुए वह अपने आपको बेबस पाती है तथा अपने साथ हो रहे गलत व्यवहार को अपने सगों को भी नहीं बताती। इस तरह का अमानवीय व्यवहार होना हमारे बुनियादी मानव-मूल्यों का पतन होना ही है। इक्कीसवीं शताब्दी में औरत किस तरह का जीवन जी रही है। इसे उदय प्रकाश की कविता-पुस्तक 'रात में हारमोनियम' की 'औरतें' और 'पंचनामे में जो दर्ज नहीं है' कविताओं में देख सकते हैं। जो जन्मदायिनी है जिसकी कोख से अनेक भगवान के अवतार पैदा हुए हैं उसे जन्म से पहले ही मौत के मुँह में धकेला जा रहा है। यह सब वहाँ हो रहा है जिस देश में अहिंसा के पुजारी बापू पैदा हुये थे। कन्याओं को गर्भ में ही कत्ल किये जाने के नृशंस व्यवहार का कवि ने बहुत दर्दनाक चित्रण किया है –

हजारों लाखों छुपती हैं गर्भ के अंधेरे में
इस दुनिया में जन्म लेने से इंकार करती हुई
वहाँ भी खोज लेती है उन्हें भेदिया ध्वनि तरंगें
वहाँ भी भ्रूण में उतरती हैं हत्यारी कटार।[1]

कोई भी धर्म हिंसा की इज़ाजत नहीं देता। हत्या जैसा जघन्य अपराध संस्कृति प्रधान कहलाये जाने वाले देश के लिए शर्म की बात है। यह कविता एक असुरक्षित औरत का चित्रण करती है जो असहाय और लाचार है तथा अन्याय, अत्याचार, हिंसा को झेलती हुई कुंठा से भर चुकी है तथा जिन्दगी से हार चुकी है। हमारी संस्कृति में औरत को सम्मान की दृष्टि से देखने की परम्परा रही है पर यह कविता तो इसका अपवाद ही प्रस्तुत करती है। औरत की इसी तरह की दयनीय स्थिति इनकी 'पंचनामें में जो दर्ज नहीं है' कविता में देखी जा सकती है। औरत की अपनी कोई जिन्दगी नहीं होती है। उसे अपनी इच्छाओं को दफन करना पड़ता है। इसे इन पंक्तियों में देखा जा सकता है –

वे सभी अवश्य किसी और की प्रतीक्षा में थी
जब उन्हें पारस्परिक अन्धेरे में घसीटा गया
आग के आस-पास उन पर रंग चढ़ाये गये
उन्हें पवित्र कर उन्हें जरी और गोटे के कपड़ों से मढ़ा गया

✍ वर्मा निवास, गाहन, कमला नगर, संजौली, शिमला-171006 (हि. प्र.)

तेल और हल्दी और चन्दन का उबटन लगाया गया।[2]

इन्हें अपनी इच्छायें तो मारनी ही पड़ती हैं साथ ही बेबस होकर अमानवीय व्यवहार भी सहना पड़ता है क्योंकि वे तो –

मसलने के लिए फूल, धुनने के लिए रूई, जलाने को कपूर
कुचलने को घास
जो उन्हें खाता वे उसका स्वाद थी।[3]

अपनी इच्छाओं की कुर्बानी देती तथा पूरी तरह से अपने को पुरुष को समर्पित करती अत्याचार सहती औरत की दयनीय दशा इन कविताओं में देखने को मिलती है। एक अत्याचार सहती नारी ये है, तो दूसरी नारी ये है जो रोजगार के अभाव में सारी मर्यादाएँ और सीमाएँ तोड़ देती है जब वह जिस्मफरोशी के धान्धे को अपनाती है। इस सच को इन की कविता 'इस सदी में एक लड़की जिससे दिल्ली में मैंने प्यार किया था' सामने लाती है। इस कविता में कवि एक लड़की का चित्रण करता है, जो कहीं दूसरी जगह से अपने लिए रोटी और ठिकाना खोजते हुए राजधानी आयी थी और कवि की उससे मुलाकात हुई थी। कवि स्वीकारता है कि राजधानी के दूसरे कवियों की तरह एक के पीछे मैं भी लग गया। वह मुझे दारू पार्टी में ले गया जहाँ वर्षों से एक कमरे में बहुत पुरानी घड़ी चल रही है। वहाँ उपस्थित दृश्य को देखकर कवि रोता है। उस समय के दृश्य को प्रस्तुत कर कवि कहता है –

यहाँ वह थी, पाँच लड़कियों द्वारा चारों ओर से घिरी किसी कुँए की तरह
वह बार-बार किसी पुलक से भरकर अपने समूचे वजूद से हँसती थी
कशिश से भरी उसकी आँखों में प्रसन्नता की कौंध थी
हीरे की तरह जिसकी नुकीली कनियाँ मेरी आत्मा में चुभती थीं
वह हँसती थी मेरे आर-पार देखती हुई
फिर मैंने सुनी उसकी भाषा... 'मेरे को लिटा दो कहीं भी मेरे को चढ़ गयी है
कसम से...'
मैं अपनी पुरानी कमीज़ की जेबों में पुराने सिद्धान्त खोजते हुए रोता था
दारू पीते हुए मूंगफली छील-छीलकर
मैंने सारे कमरे को भर दिया था।[4]

कवि दु:खी होकर जब वहाँ से बाहर निकलता है तो पता चलता है किसी की हत्या हो चुकी है। राजधानी में हादसे की वजह से पूरी दिल्ली में कर्फ्यू है। पर जिस जगह से कवि निकलकर बाहर आया है उस जगह पर कर्फ्यू नाम का कुछ भी नहीं था अगर कुछ था तो वह इस सदी का नरक था। जिसे इन पंक्तियों में देखा जा सकता है –

कर्फ्यू लेकिन उस कमरे में नहीं था, वहाँ डांडिया था या डिस्को था
वहाँ भीमसेन जोशी थे या माइकेल जैक्सन, मैडोना थी या लता मंगेशकर,
वहाँ नींबू और नमकीन था, वर्षों से एक घड़ी लगातार चल रही थी
अख़बार था, जिसकी ख़बरें सोडे और शराब से सील गयी थीं
और वहाँ बीचों-बीच कालीन बिछा था, कालीन पर बीसवीं सदी की
अन्तिम आवाज़ें थीं, मजे और कराह और ग्लानि और लालच में डूबी हुई
किसी स्वर्ग जैसा कोई नरक था वहाँ।[5]

रोज़गार के अभाव में वेश्यावृत्ति जैसा घृणित कार्य अपनाना तथा आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न

लोगों का वेश्यालयों में पहुँचना क्या दिशाहीन हो रहे समाज की ओर संकेत नहीं करता। ऐसे में स्वस्थ समाज का निर्माण महज सपना ही नजर आता है। वेश्यावृत्ति अपनाने में कोई हिचकिचाहट न होने के पीछे आज के समय में उपजी बोल्डनैस और फ्रैंकनैस जैसी प्रवृत्तियाँ ही नज़र आती हैं। हमारी संस्कृति तथा बुनियादी मानव-मूल्य इस तरह के घिनौने कार्य में शामिल होने की इज़ाजत नहीं देते।

सांस्कृतिक तथा बुनियादी मानव-मूल्यों में ह्रास के कारण आज समाज में इतना बदलाव आ चुका है जिसकी किसी ने कभी कल्पना भी नहीं की होगी। इनकी 'कौए, और लेखक का दिल्ली में देहांत' कविता दाह-संस्कार के समय का चित्रण कर आज के समाज में जो बदलाव आया है उसकी तस्वीर प्रस्तुत करती है। पंजाबी बाग पहुँचने पर कवि सोचता है कि इन्हें दाह-संस्कार के लिए निगम बोध की बजाय पंजाबी बाग क्यों ले जाया गया। शायद इसलिए कि निगम बोध में तो भ्रष्टाचार की कोई सीमा ही नहीं है –

कहा जाता है निगम बोध में बहुत मारा-मारी है
भ्रष्टाचार तो है ही
लकड़ी कम तौलते हैं, वजन बढ़ाने के लिए गीली कर देते हैं
कौन कितना जला इससे उन्हें क्या ? किसकी अस्थियाँ किसके साथ मिल
जाये कौन जाने ?
शवों के साथ लाये गये नारियल तक बेचते हैं हर लाल-बत्ती पर
ठीक है कि पंजाबी बाग में यमुना नहीं है
लेकिन दिल्ली में अब यमुना भी
कहाँ संस्कार के लायक रह गयी है
गनीमत है यहाँ कि कम से कम कुछ पेड़ तो हैं
और कौवे भी दिखाई देते हैं
कहीं-कहीं बोलते हुए।[6]

दाह संस्कार यानि जब किसी को संसार से अंतिम विदाई दी जा रही हो जिसमें शामिल होकर लोग अपने को पुण्य का भागीदार मानते हैं, उस रस्म में भी भ्रष्टाचार ? इससे ज्यादा आदमी कब गिर सकता है ? यानि आज लोग पूरी तरह से सांस्कृतिक तथा बुनियादी मानव-मूल्य को भूल चुके हैं शायद यही कारण है कि किसी के दुनिया से हमेशा के लिए चले जाने पर न तो लोग दु:खी होते हैं और न ही दाह-संस्कार जैसी रस्म पुण्य की भावना से भरकर निभाई जाती है।

समकालीन परिवेश से सच्चाई, ईमानदारी तथा कर्त्तव्यनिष्ठा आदि बातें खत्म हो गई हैं जिसके कारण समाज में न्याय समय पर नहीं मिल पाता। यदि कोई चीज समय पर न मिले तो उसकी कोई उपयोगिता नहीं रह जाती। न्याय की प्रक्रिया तो लम्बी है परन्तु अपराध करने के लिए दो मिनट का ही समय काफी है। न्याय की इस प्रक्रिया के सम्बन्ध में कवि दु:खी होकर कहता है –

हत्यारे ने उस औरत को मारने में दो मिनट लगाये
उस पर दो शताब्दियों तक चलता है मुकद्दमा
जिसने सार्वजनिक कोष से साफ-साफ उड़ा लिये सैंकड़ों करोड़ रुपये
उसकी सत्तर साल तक जाँच करता है जाँच आयोग।[7]

न्याय की इस लम्बी प्रक्रिया को देखकर कहा जा सकता है कि न्याय जो सच के तराजू को आधार मानता है और सच बोलने के लिए धार्म की शपथ लेता और देता है, मात्र दिखावा ही नजर आता है। इसके पीछे रिश्वत की भूमिका ही कही जा सकती है जिसकी वजह से बड़े-बड़े अपराध करने वाले भी बेदाग बच जाते हैं और निर्दोष को

न्याय नहीं मिल पाता। वर्तमान समाज पर तीखी टिप्पणी कर कवि 'कवि की पीड़ित खुफिया आँखें' कविता में कहता है -

अप्रासंगिकताएँ क्यों हावी हैं इस कदर तमाम
अच्छी और जरूरी चीज़ों पर
जो चीजें ठीक-ठीक हैं और जो चाहिए तमाम
लोगों को उनका
विज्ञापन क्यों नहीं दिखाई देता कहीं ?
उनकी कोई कीमत क्यों नहीं बची कुछ बतायेंगे
आप ?[8]

आज के समय का कवि द्रष्टा है तभी तो वह यह कह रहा है -

कोई विश्वास होता है हर बार, जिसका घात
होता है हर बार
सब लोग यह सब जानते हैं पर खामोशी ही
लाजिमी है
जो यथार्थ को व्यक्त करता है
वह मार दिया जाता है अफवाहों से।[9]

'शरीर' कविता में कवि रोगग्रस्त शरीर की तुलना इस विकृत समाज से कर कहता है -

समाज की तरह ही मेरे शरीर में भी हो रहे हैं
अत्यन्त महत्त्वपूर्ण
ऐतिहासिक परिवर्तन
मेरे नियंत्रण से दूर और स्वायत्त, अपने ही
नियमों से निमग्न
मेरे विचारों, रचनाओं, आकांक्षाओं और
सिद्धांतों से बिल्कुल अप्रभावित
मैं हूँ एक दर्शक फ़क़त
अपनी ही दुनिया और अपनी देह का।[10]

ऐसी स्थिति तभी पैदा होती है जब सांस्कृतिक तथा बुनियादी मानव-मूल्य भूला दिये जाए। क्योंकि ये ही वे मूल्य हैं जो यह बोध कराते हैं कि हम क्या हैं ? हमें कैसा आचरण करना चाहिए। यानि हमारे लिए ग्राह्य और अग्राह्य के बारे में बताते हैं ताकि समाज में विसंगतियाँ न पनपे। इनको भूलने के कारण ही शायद आज देश अपनी अस्मिता खो रहा है। इसे अपनी सांस्कृतिक विरासत से दूर जाना नहीं तो और क्या कहेंगे ? यदि यही हाल रहा तो वह दिन दूर नहीं जब हमारे पास आनेवाली पीढ़ी को देने के लिए कुछ नहीं बचेगा जो इसमें मूल्यवान् है। जीने का सही ढंग हमें सांस्कृतिक तथा मानवीय मूल्यों को अपनाकर ही आ सकता है न कि उनको भुलाकर। 'संस्कृति प्रधान' कहलाये जाने वाले देश में सांस्कृतिक तथा बुनियादी मानव-मूल्यों के धीरे-धीरे लुप्त होने की कहानी बयान करती इनकी कविताएँ आधुनिकता के चकाचौंध में फँसे आज के मनुष्य के असली चेहरे को बेनकाब करती हैं।

सांस्कृतिक तथा बुनियादी मानव-मूल्य के ह्रास के कारण आज समाज में अनेक विसंगतियाँ पैदा हो रही हैं। मूल्य की अवहेलना करके हमारा जीवन कभी भी सुखी नहीं हो सकता। वर्तमान समय में मूल्य इतने गिर गये हैं कि जीने का अर्थ ही बदल गया है। अपनी स्वार्थ पूर्ति के लिए व्यक्ति किसी भी सीमा तक गिरने में हिचकिचाहट नहीं करता। इन्होंने ठोस आधार वाली कविताओं की रचना कर बदले हुए परिवेश को अभिव्यक्ति देने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। वर्तमान समाज में मूल्यों के इस भारी संकट को इनकी कविताएँ बखूबी रेखांकित कर आज के समाज की अराजक और दिशाहीन स्थिति से अवगत करवाती हैं जिससे मनुष्य प्रभावित हो रहा है। इसके कारण ही आज व्यक्ति स्वार्थी, अवसरवादी एवं कर्त्तव्यविमुख हो रहा है। मूल्यों के इस भारी संकट से मुक्ति पाने के लिए तथा मनुष्य-जीवन में इनकी उपयोगिता को देखते हुए उदय प्रकाश की कविताएँ इनको अपनाने

इतिहास पुराण का अध्ययन आवश्यक बतलाया गया है। वेदव्यास का स्पष्ट कथन है कि वेद का विस्तृत अध्ययन इतिहास और पुराण के द्वारा होना चाहिए क्योंकि इतिहास पुराण से अनभिज्ञ लोगों से वेद सदा भयभीत रहता है –

इतिहास पुराणभ्यां वेद समुपबृंहयेत्।
बिभेत्यल्पश्रुताद वेदो मामयं प्रहरिज्यति।।[6]

कौटिल्य ने ही सर्वप्रथम 'इतिहास वेद' की गणना अर्थवेद के साथ की है तथा इसके अन्तर्गत पुराण इतिवृत्त आख्यायिका, उदाहरण, धर्मशास्त्र और अर्थशास्त्र का अन्तर्भाव माना है –

'' अथर्ववेद-इतिहासवेदौ च वेदाः । पश्चिमम् (अहर्भागम)
इतिहासश्रवणे पुराणभिति वृत्तमाख्यायिकोदारणं धार्मशास्त्रमर्थशास्त्रं चेतीतिहासः।''[7]

पाश्चात्य परिकल्पना और हमारी भारतीय परिकल्पना में एक अन्तर विद्यमान है। पाश्चात्य इतिहास घटना प्रधान है अर्थात उसमें युद्ध आदि घटनाओं को प्रस्तुत करना ही मुख्य उद्देश्य रहता है परन्तु भारतीय कल्पना के अनुसार घटना वैचित्र्य अधिक महत्व नहीं रखता जितना सांस्कृतिक अभ्युत्थान पारमार्थिक चिन्तन एवं जीवन के आदर्श। इस दृष्टि से भारतीय साहित्य में इतिहास शब्द से प्रधानतया महाभारत का ही ग्रहण किया जाता है। यह कौरवों पाण्डवों का सच्चा इतिहास ही नहीं है, प्रत्युत उसे हमारी संस्कृति, समाज, राजनीति, धर्म का प्रतिपादक इतिहास होने का गौरव प्राप्त है। इस प्रकार वाल्मीकि रामायण 'आदिकाव्य' होते हुए भी धार्मिक दृष्टि से उसका महत्व महाभारत से कम नहीं है। रामायण द्वारा चित्रित भारतीय सभ्यता महाभारत से भी प्राचीन है। रामराज्य की परिकल्पना जो भारतीय राजनीति में आदर्श मानी जाती है, महर्षि वाल्मीकि की ही देन है। वास्तविकता तो यह है कि रामायण और महाभारत भारतीय संस्कृति के प्रकाश स्तम्भ है जिनके प्रकाश में हम अपने वैदिक धर्म के अनेक अन्धकार से आवृत्त तथ्यों का साक्षात् करते हैं। इतिहास का अर्थ है- इति+ह+आस अर्थात जो इस तरह से था। इस दृष्टि से रामायण और महाभारत हमारे इतिहास ग्रन्थ हैं। यहां इतिहास का उद्देश्य तिथिक्रम से विवरण देना नहीं अपितु जीवन के शाश्वत मूल्यों का प्रस्तुतीकरण है। वे तो ऐसे सिद्धान्तों के विवेचन में रुचि रखते हैं जो महापुरुषों के जीवन में घटित होते हुए राष्ट्र या देश के सांस्कृतिक उत्थान में योगदान देते हों। इस रूप में पुराण, रामायण और महाभारत हमारे वास्तविक इतिहास ग्रन्थ है।

उपर्युक्त अनेक विसंगतियों के होने पर भी संस्कृत साहित्य महत्वपूर्ण ऐतिहासिक काव्यों से सम्पन्न है, जिनका काव्यगत मूल्य तो उत्कृष्ट है ही, इतिहास मूल्य भी संतोषजनक है।

महाकवि बाणभट्ट ने हर्षचरितम् रचना के साथ ऐतिहासिक काव्य के निर्माण का अवतार किया है। इस सुप्रसिद्ध गद्यकाव्य में महाराजा हर्षवर्धन (606 ई0 से 648 ई0) का चरित्र अंकित है। बाण का समय सातवीं सदी ईस्वीं का मध्य भाग माना जाता है और इनका उपर्युक्त ग्रन्थ आख्यायिका के अन्तर्गत आता है। यह काव्य कवि के वंश की काल्पनिक उत्पत्ति के वर्णन से प्रारम्भ होता है। द्वितीय, तृतीय उच्छ्वास में बाण का अपना जीवन वृत्त है शेष ग्रन्थ में प्रभाकरवर्धन उनकी मृत्यु, राज्यवर्धन के वध, अपनी बहन राज्यश्री को बचाने के लिए हर्षवर्धन के प्रयत्नों और राज्यश्री के हर्षवर्धन के साथ लौटने की कथा है।

बाण की यह रचना 'हर्षचरित' गद्य होते भी इसकी भाषा कवित्वमय है। यद्यपि इसमें हर्षवर्धन के राज्यकाल की सम्पूर्ण घटनाओं का वर्णन नहीं है तिथिक्रम भी नहीं है तथापि इसमें

वर्णित ऐतिहासिक घटनाएं चीनी यात्री ह्वेनसांग के विवरण से मिलती है। बाण का यह वृत्तान्त तत्कालीन इतिहास के शोध में विशेष सहायक है।

वाक्पतिराज का 'गउडबहो' (गौड़वध) प्राकृत भाषा का केवल एक ही महत्वपूर्ण ऐतिहासिक काव्य उपलब्ध होता है। जिसमें कन्नौज के राजा यशोवर्मा के द्वारा किसी गौड़ राजा के वध की कथा है। यह ऐतिहासिक काव्यों में अपनी विशिष्टता के कारण नितान्त प्रख्यात है। प्राकृत भाषा में विरचित होने पर भी यह संस्कृत महाकाव्यों की वर्णन रीति का अनुसरण करता है। इसके रचयिता वाक्पतिराज कन्नौज के शासक यशोवर्मा के सभापति थे। 'गउडवहो' काव्य राजा यशोवर्मा द्वारा गौड़ नरेश के ऊपर किए गए विजय की विशिष्ट प्रशस्ति है। यद्यपि इस काव्य का निर्माण काल अभी तक आलोचकों में सन्देह का विषय बना हुआ है, तथापि भवभूति के समकालीन होने से इनका समय 725 ई0 माना जाता है। कश्मीर नरेश ललितादित्य (724 से 760) ने 734 ई0 में यशोवर्मा को परास्त किया था। अत: मगध नरेश पर विजय तथा उसका वर्णनपरक यह काव्य 734 ई0 पूर्व निर्मित हो चुका था।

डॉ0 याकोबी ने 'गउडवहो' में निर्दिष्ट सूर्यग्रहण का काल 733 ई0 सिद्ध किया है अत: इस काव्य की रचना इसी समय से कुछ पूर्व होना चाहिए। इस प्रकार वाक्पतिराज का समय ईसा की आठवीं सदी माना जाता है।

'आर्यमंजुश्रीकल्प' के रूप में बौद्ध सम्प्रदाय (महायान) से सम्बद्ध एक ऐतिहासिक काव्य प्राप्त हुआ है। इसके लेखक का नाम अज्ञात है। इस ऐतिहासिक ग्रन्थ का अनुसन्धान 1925 ई0 में डा0 टी0 गणपति शास्त्री ने किया था। डॉ0 काशी प्रसाद जायसवाल ने सर्वप्रथम सहमति प्रदान की। इसमें प्राय: 700 ई0 पू0 से 770 ई0 तक के सम्राटों का इतिहास दिया गया है इसका रचना काल 800 ई0 माना गया है।

इन प्राथमिक ग्रन्थों के द्वारा नियमित ऐतिहासिक महाकाव्यों की पृष्ठभूमि प्रस्तुत की गई है। तत्पश्चात प्रमुख महाकाव्यों का परिचय दिया जाता है।

पद्मगुप्त (परिमल) कृत नवसाहसांकचरित को सर्वप्रथम ऐतिहासिक महाकाव्य होने का गौरव प्राप्त है। इस काव्य में धारा नगरी के यशस्वी अधिपति भोजराज के पिता सिन्धुराज का विवाह नागराज शंखपाल की बेटी राजकुमारी शशिप्रभा के साथ वर्णित है। 'नवसाहसांक' राजा भोज के पिता सिन्धुराज की उपाधि थी। कवि ने अपने काव्य में इन्हीं सिन्धुराज का चरित्र का वर्णन किया है। नवसाहसांकचरित की रचना सिन्धुराज के उत्कर्ष काल 1005 ई0 के आसपास हुई है ऐसा इतिहासकारों का अनुमान है। सिन्धुराज कवि के आश्रयदाता थे इसका संकेत स्वयं कवि ने अपने काव्य में दिया है -

तस्यानुजन्मा कविबान्धावस्य भिनत्ति तां सम्प्रति सिन्धुराज:।[8]

मम्मट ने अपने काव्य प्रकाश में इनके पद्यों को उदघृत किया है। इससे भी कवि के उक्त काल की पुष्टि होती है। नवसाहसाङ्कचरित के बारहवें सर्ग में सिन्धुराज के पूर्ववर्ती समस्त परमारवंशी राजाओं का कालक्रम से वर्णन है, जिसकी सत्यता शिलालेखों से प्रमाणित हो चुकी है। इसी प्रकार काव्य के दसवें सर्ग में सिन्धुराज द्वारा जीते गए जिन राजाओं और देशों का उल्लेख हुआ है। उनकी ऐतिहासिकता सिद्ध हो चुकी है। सभी इतिहासकार मानते हैं कि सिन्धुराज का राज्यकाल 994-1011 ई0 था। 1011 ई0 में सिन्धुराज की मृत्यु हो जाने पर राजा भोज धारानरेश बनें।

महाकवि विल्हण ने विक्रमांकदेवचरित नामक ऐतिहासिक महाकाव्य की 1085 ई0 में रचना की है इस काव्य के अन्तिम अठ्ठारवें सर्ग में कवि ने अपने जीवन चरित का बड़े विस्तार से वर्णन किया है। इससे इनकी जीवनी पर सुन्दर प्रकाश पड़ता है। विल्हण की जन्मभूमि कश्मीर में प्रवरपुर के पास कोनमुख नामक ग्राम था। शिक्षा स्थली कश्मीर ही था। विद्याभ्यास के पश्चात कवित्व प्रदर्शन के लिए विल्हण ने प्राय: पूरे भारतवर्ष की यात्रा की। आश्रयदाता की खोज में विल्हण मथुरा, कन्नौज, प्रयाग, काशी डाहल, धारा गुजराज अनहिलवाड सोमनाथ आदि अनेक स्थानों को पार करते हुए दक्षिण भारत के कल्याण नगर के चालुक्यवंशीय राजा विक्रमादित्य षष्ठ (1076-1127 ई0) के दरबार में जा पहुंचे। गुणग्राही राजा ने इनका अत्यधिक स्वागत किया तथा उन्हें 'विद्यापति की उपाधि प्रदान की। इन्हीं राजा के जीवन पर इन्होंने 'विक्रमांकदेवचरित' महाकाव्य लिखा। इस काव्य में अठ्ठारह सर्ग है। चालुक्यवंशीय राजा विक्रमादित्य का चरित ही इनका वर्ण्यविषय है -

एषा तु चालुक्यनरेन्द्रवंश समुद्गतानां गुणमौक्तिकानाम्।
मद्भारती सूत्रनिवेशितानामेकावली कण्ठविभूषणं व: ॥

इस महाकाव्य में उनके पिता आहवमल्ल की मृत्यु, राजकुमारी चन्द्रलेखा से विवाह, उनके दो भाईयों एवं चोलों की पराजय आदि घटनाओं का कवित्वमय वर्णन किया गया है। प्राचीन भारत के ऐतिहासिक ग्रन्थों में बाण के हर्षचरित तथा कल्हण की राजतरंगिणी के पश्चात विक्रमाकंदेवचरित का ही नाम लिया जाता है। कल्याण के चालुक्यवंशी राजाओं के जो शिलालेख प्राप्त हुए हैं, उनसे विल्हण की बातों का समर्थन होता है। दक्षिण भारत की तत्कालीन राजनैतिक स्थिति की जानकारी के लिए विक्रमांकदेवचरित एक प्रमाणिक चरित है। चोलों और चालुक्यों के पारस्पारिक सम्बन्धों का तथा दक्षिण के तत्कालिक राज्यों की वृद्धि और ह्रास का अच्छा ज्ञान महाकाव्य से प्राप्त होता है।

महाकवि कल्हण रचित 'राजतरंगिणी' ऐतिहासिक महाकाव्यों में सर्वाधिक महत्वशाली ग्रन्थ है। कल्हण कश्मीर के तत्कालीन राजा हर्षदेव (1089 ई0-1101 ई0) के प्रधान अमात्य चम्पक के पुत्र थे। वे शैव ब्राह्मण थे। इसकी पुष्टि राजतरंगिणी के प्रत्येक तरंग में अर्धनारीश्वर शिव की वन्दना से होती है। कल्हण का वास्तविक नाम कल्याण था तथा वे अलकदत्त नामक किसी पुरुष के आश्रय में रहते थे। इन्होंने राजतरंगिणी का प्रणयन सुस्सल के पुत्र जय सिंह के राज्यकाल (1127-1159 ई0) किया था। सन् 1148 ई0 में कल्हण ने इतिहास लिखना प्रारम्भ किया तथा सन् 1150 ई0 के बीतते-बीतते दो वर्ष की अवधि में इसे समाप्त भी कर दिया। 'राज-तरगिंणी संस्कृत-सहित्य के ऐतिहासिक घटनाओं के क्रमबद्ध इतिहास का प्रथम प्रयास है। इसमें कवि ने आदि काल से लेकर सन् 1151 ई0 के प्रारम्भ तक के प्रत्येक कश्मीरी राजा के शासनकाल की घटनाओं का क्रमानुसार विवरण प्रस्तुत किया है आठ तरंगों में विभक्त 'राजतरंगिणी' में कुल श्लोक संख्या 7826 है। प्रथम तरंग में गोविन्द प्रथम से लेकर अंध युधिष्ठिर तक के कुल 75 राजाओं का इतिहास प्रस्तुत किया गया है। तृतीय तरंग में गोनन्द वंश के अन्तिम राजा आतादित्य तक के 10 राजाओं के 536 वर्ष के राज्यकाल का विवरण मिलता है। चतुर्थ तरंग में 260 वर्ष तक शासन करने वाले 17 नरेशों का विवरण मिलता है। पंचम तरंग में अवन्तिवर्मा के राज्यारोहण के साथ के साथ उत्पल वंश के आविर्भाव का वर्णन किया गया है। षष्ठ

तरंग में दस राजाओं का 936 ई0 से 1003 ई0 तक के राज्यकाल का वर्णन प्राप्त होता है। सप्तम् तरंग में पांच राजाओं के सन् 1003 से 1101ई0 तक के राज्यकाल का इतिहास प्रस्तुत किया गया है। अष्टम तरंग में सातवाहन वंश के उच्चल सुस्सल, मिक्षाचर एवं जयसिंह राजाओं की जीवनगाथा का विवरण प्रस्तुत किया गया है।

कल्हण ने राजतंरगिणी को लिखने से पूर्व पुरातन इतिहास से सम्बन्ध रखने वाले अनेक ग्रन्थों का उपयोग अत्यधिक सावधानी एवं सतर्कता के साथ किया था। कल्हण ने अपने काव्य की रचना से पूर्व रामायण, महाभारत, रघुवंश, हर्षचरित तथा वराहमिहिर की बृहत्संहिता का अध्ययन किया था और अपनी राजतरंगिणी में इन ग्रन्थों का नामोल्लेख पूर्वक गुण दोषों का विवेचन भी किया है। राजतरंगिणी लिखने से पूर्व उन्होंने शिलालेखों, दानपत्रों, प्राचीन सिक्कों एवं प्रशस्ति आदि ऐतिहासिक साधनों की यथासम्भव जांच करके अपने ग्रन्थ को पूर्णता तथा प्रमाणिकता प्रदान करने का पूर्ण प्रयास किया है। इनके अतिरिक्त उन्होंने सभी प्रकार की स्थानीय जनश्रुतियों और परम्पराओं का भी आंकलन कर उनसे तथ्य संकलित करने का प्रयत्न किया है।

कश्मीर के इतिहास में कल्हण का युग राजनीतिक उथल-पुथल संघर्षों का युग था। हर्षवर्धन ने कश्मीर राज्य संघटित करने का प्रयास किया किन्तु दोषों के कारण वह जनता में अपनी छवि न बना सका। कल्हण ने लोकव्यवहार और लोक स्थिति को बहुत पास से देखा है। उन्हें समाज के दीन-हीन एवं पद दलित लोगों से पूर्ण सहानुभूति थी। यह ग्रन्थ मानवीय उदात्त भावनाओं को अंकित कने वाला ऐतिहासिक ग्रन्थ है। कल्हण ने कश्मीर के उथल-पुथल युक्त शासन तथा जनता की दुर्दशा का चित्रण करते हुए करूणभाव की मार्मिक अभिव्यक्ति प्रस्तुत की है -

क्षुत्क्षामस्तनयो वधूः परग्रहप्रेज्यावसन्नः सुहृत् ।
दुग्धा गौरशनाघभाव विवशा हम्बारवोद्‌गारिणी ॥
निज़्पथ्यौ पितरावदूरमरणौ स्वामी द्विज़न्निर्जितो
दृज़्टो येन परं न तस्य निरये प्राप्तव्यमस्त्य प्रियम् ॥

अर्थात जिसने भूख से व्याकुल पुत्र को, परगृह में सेवारत पत्नी को, आपत्ति में पड़े हुए मित्र को, दुही जाने के बाद चारे को रँभाती गौ को, पथ्य के अभाव में मरणोन्मुख माता-पिता को तथा शत्रु द्वारा जीत लिए गए स्वामी को देख लिया है, उसे नरक में इससे अधिक अप्रिय दृश्य देखने को क्या मिलेगा।'

राजतरंगिणी काव्य के रूप में लिखा गया इतिहास है। भारत में इतिहास को नैतिक शिक्षा का आदर्श माना गया है। इसमें कल्हण नीतिशास्त्री के रूप में प्रकट होता है। शक्ति और सम्पत्ति की अस्थिरता, सारी कीर्तियों की क्षणिकता, पापियों को लोक परलोक में मिलने वाला दण्ड इत्यादि नैतिक विषयों को उदाहरणों द्वारा स्पष्ट करने में कवि की दृढ़ आस्था है। इस प्रकार वैज्ञानिक इतिहास के साथ इतिहास की भारतीय कल्पना का सामंजस्य कल्हण ने किया है। इसीलिए राजाओं तथा मंत्रियों के कार्यों की समीक्षा (निन्दा या प्रशंसा) उन्होंने धर्मशास्त्र या नीति शास्त्र के नियमों के आधार पर की है।

कल्हण की राजतरंगिणी की परम्परा को कुछ कवियों ने आगे बढ़ाकर इसी नाम से ग्रन्थ लिखें, तथा ऐतिहासिक काव्य परम्परा का निर्वाह करते हुए उसे आगे बढ़ाने का प्रयास किया। इस परम्परा में जोनराज का नाम अधिक प्रभावशाली रूप में आता है ये कश्मीर के मुसलमान शासक जैनुल आब्दीन के समय के ऐतिहासिक कवि है, उनकी मृत्यु (1459 ई0) में हुयी थीं। इनके द्वारा लिखित 'राजतरंगिणी' में 976 श्लोक हैं।

कल्हण की अपेक्षा जोनराज रचित राजतरंगिणी का दृष्टिकोण ऐतिहासिक तथ्य को अधिक उजागर करता है।

तृतीय राजतरंगिणी के लेखक श्रीवर है। जोनराज के बाद इन्होंने 1459 ई0 से 1486 ई0 तक का कश्मीर का इतिहास अपने काव्य 'जैन राजतरंगिणी' में वर्णन किया है पुन: प्राज्यभट्ट तथा उनके शिष्य शुक ने 'राजतरंगिणी' नामक ग्रन्थ लिखा। इस ग्रन्थ में 1596 ई0 तक का इतिहास वर्णित है। इस काल में कश्मीर पर अकबर का शासन था। फलत: मुगलकालीन इतिहास ही मुख्य रूप से इसमें उपनिबद्ध है।

इसके अतिरिक्त भी अनेक काव्य है जो इस प्रकार है -

हलायुध - यह ब्राह्मण कवि राष्ट्रकूट के तृतीय कृष्ण राजा (940-956 ई0) का सभा पण्डित था। यह वैष्णव था। यह तथ्य इनके विचरित काव्य 'कवि रहस्य' के मंगलाचरण से ज्ञात होता है। पिंगल छन्दस्सूत्र की मृत-संजीवनी नामक टीका में जिसका रचयिता भी भट्ट हलायुध है, कई श्लोक धार के वाक्पतिराज 'मुंज' (974-995 ई0) की प्रशंसा में लिए गए हैं। बहुत सम्भव है कि कवि हलायुध राष्ट्रकूट राजा तृतीय कृष्ण की मृत्यु के बाद मुंज राजा की सभा में चला गया हो और वहां इसकी रचना की हो।

हलायुध के द्वारा ही विचरित 'कवि रहस्य' काव्य है। इसमें 274 श्लोक हैं। यह काव्य धातुओं के लट्-लकार के भिन्न भिन्न रूपों को विशद करता है और साथ ही राष्ट्रकूट के राजा तृतीय कृष्ण की प्रशंसा भी करता है। कवि ने ग्रन्थ के आरम्भ में स्वयं को 'धातुपारायणाभ्मोधिरारोत्तीर्णधी:' का विशेषण दिया है और काव्य अनुशीलन से यह विशेषण उनके लिए समुचित प्रतीत होता है।

हेमचन्द्रचार्य - यह प्रसिद्ध श्वेताम्बर जैन थे। जैन उपदेशकों में इनका नाम अग्रणी माना गया है इनका जन्म 1088 में हुआ था। उनकी प्रौढ़ विद्वता के कारण लोग इन्हें 'कलिकाल सर्वज्ञ' भी कहते हैं। इन्होंने अनहिलवाड़ के चालुक्य नरेश कुमारपाल के सम्मान में 1163 ई0 में 'कुमारपाल चरित' नामक 28 सर्गों का ऐतिहासिक महाकाव्य की रचना की। इसमें गुजरात के चालुक्य वंशीय राजाओं का प्रामाणिक इतिहास है। इस महाकाव्य में दो भाषाओं का प्रयोग हुआ है। प्रथम 20 सर्ग संस्कृत में है। शेष आठ प्राकृत में। इसीलिए इसे 'द्वयाश्रयमहाकाव्य' भी कहा जाता है। इन भागों में क्रमश: 2439 तथा 742 पद्य हैं। इसके संस्कृत भाग का प्रकाशन दो खण्डों में (1915, 1921 ई0) में हुआ था। इस महाकाव्य में एक ही साथ इतिहास, काव्य, व्याकरण तीनों विषयों की प्रस्तुति हुई है तथा इसमें मूलराज के वर्णन से काव्य प्रारम्भ है (सर्ग 1-6)। मूलराज की छठी पीढ़ी में जयसिंह, सिद्धराज जिसका वर्णन 11वें सर्ग से किया गया है। 15वें सर्ग में कुमारपाल को राज्य की प्राप्ति, 17वें सर्ग में रात्रिवर्णन, 20वें सर्ग में कुमारपाल के धार्मिक कार्यों का वर्णन है। प्राकृत भाग अणहिलपट्टन के वर्णन से प्रारम्भ होता है, जिसका राजा कुमार पाल है। राजा की दिनचर्या, राजा का जिन मन्दिर-गमन, राजोद्यान तथा षडऋतु वर्णन, राजा की मल्लिकार्जुन पर विजय का समाचार, शयन, प्रात: जागना, चिन्तन आदि का वर्णन इसमें मिलता है।

बारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में जल्हण ने सोमपालविलास नामक महाकाव्य की रचना की। इस महाकाव्य में कश्मीर के निकटवर्ती राजपुरी के राजा सोमपाल का जीवनवृत्त वर्णित है। इस राजा ने सुस्सल के साथ युद्ध किया था। महाकवि मंख ने श्रीकण्ठचरित में (25/75) कवि जल्हण की चर्चा

की है।

उत्तरी भारत के अन्तिम हिन्दू राजा पृथ्वीराज चौहान के जीवन पर आश्रित कवि जयानक ने 1191-93 ई0 में 'पृथ्वीराज विजय' नामक महाकाव्य लिखा। जनायन को कश्मीरी माना जाता है। यह पृथ्वीराज की राजसभा में भी रह चुका था। इस महाकाव्य की शैली 'विक्रमांकदेव चरित के समान है। जोनराज ने इसकी संस्कृत व्याख्या 1450 से 1475 के बीच लिखी थी। 'पृथ्वीराज विजय' की पाण्डुलिपि व्यूलर के द्वारा 1876 ई0 में कश्मीर से ही प्राप्त की गयी थी। 12वें के अन्त में पाण्डुलिपि खण्डित है अत: यह कहना कठिन है कि इसमें कितने सर्ग और थे। इस महाकाव्य का प्रथम प्रकाशन पं0 गौरीशंकर हीरानन्द ओझा के सम्पादन में 1941 ई0 में हुआ, जोनराज की व्याख्या भी इसमें मुद्रित है।

सोमेश्वरदेव कृत 'कीर्ति कौमुदी' नामक महाकाव्य वस्तुपाल नामक एक उदार मन्त्री की प्रशस्ति के रूप में है। वस्तुमाल गुजराज के राजा वीरधवल एवं उनके पुत्र बीसलदेव के मंत्री थे। वस्तुपाल की दानशीलता एवं धार्मिक कार्यों के कारण कई कवियों ने उनके विषय में काव्य लिखें। 'कीर्तिकौमुदी' उन काव्यों में श्रेष्ठ है। सोमेश्वर अणहिलपाटन के चालुक्यवंशीय राजाओं के कुलपुरोहित थे। वे वस्तुपाल के आश्रित कवि तथा मित्र थे। वस्तुपाल के द्वारा निर्मित आबू एवं गिरनार के जैनमन्दिरों में वस्तुपाल के अभिलेख मिले हैं उनमें कुछ अभिलेखों के रचयिता सोमेश्वरदेव ही हैं।

इनका काल 1241 ई0 से 1255 ई0 है। एक अन्य अभिलेख का समय 1232 ई0 का है। अत: इस महाकाव्य का रचना काल 13वीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध माना जाता है।

वस्तुपाल के ही पुण्यकार्यों का वर्णन करने वाला अन्य काव्य 'सुकृतसंकीर्तन' है, जो अरिसिंह द्वारा ग्यारह सर्गों में लिखा गया। अरिसिंह वस्तुपाल के समकालीन कवि थे। अरिसिंह का आविर्भाव काल भी 13वीं ई0 में हुआ। 'कीर्तिकौमुदी' भी उसी ग्रन्थ माला में उसी वर्ष प्रकाशित हुई हैं। 'सुकृतसंकीर्तन' में अणहिलपाटन की स्थापना चालुक्यवंशीय मूलराज आदि राजाओं का वर्णन, वीरधवल का राजा बनना, वस्तुपाल और तेजपाल की संघ-सहित तीर्थयात्रा, गिरनार दर्शन, वस्तुपाल के विविध कल्याण कार्य-ये विषय क्रमश: वर्णित है।

वस्तुपाल के जीवनचरित्र से सम्बद्ध एक अन्य महाकाव्य 'वसन्त विलास' बालचन्द्र सूरि के द्वारा लिखा गया। इसमें 14 सर्ग है। प्रथम सर्ग में लेखक ने अपना परिचय दिया है। यह महाकाव्य वस्तुपाल की मृत्यु के बाद 13वीं शताब्दी ई0 के अन्त में लिखा गया था। इन काव्यों से गुजरात के सामाजिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक पक्षों पर विस्तृत प्रकाश पड़ता है।

सन्ध्याकर नन्दी ने अपने काव्य 'रामपाल चरित में बंगाल के राजा रामपाल (1084-1160ई0) के पराक्रम का वर्णन करते हुए न केवल बंगाल अपितु असम, बिहार मध्यप्रान्त और उड़ीसा के इतिहास के लिए अत्युपयोगी सामग्री प्रस्तुत की है।

सर्वानन्द ने 'जगडूचरित' काव्य की रचना कर उस परोपकारी जगडुशाह की कीर्ति को अमर बना दिया, जिसने 1256-1258 ई0 के भीषण दुर्भिक्ष में अन्न कष्ट से मरते हुए प्राणियों को अपनी उदारता से बचाया था। गुजरात में होने वाले इस दुर्भिक्ष का बड़ा ही रोचक वर्णन करने से इसका सामाजिक मूल्य बहुत अधिक है।

चन्द्रशेखर गौड़ देश अर्थात बंगाल के निवासी थे। इन्होंने सोलहवीं सदी ई0 के अन्तिम भाग में काशी में ''सुरजनचरित'' महाकाव्य का सृजन किया। चन्द्रशेखर के इस काव्य में वर्णित राजा सुरजन अकबर के बड़े विश्वास पात्र सामन्त थे। उनके द्वारा अनेक महत्वपूर्ण स्थानों में युद्ध के निमित्त भेजे जाते थे। इस काव्य में 20 सर्ग हैं, जिनमें हाडावंशीय राजाओं के चरित्रों का बड़ी सुन्दरता के साथ वर्णन किया गया है। अतः इस काव्य का साहित्यिक सौन्दर्य के साथ ऐतिहासिक मूल्य भी कम नहीं है।

राजनाथ डिंडिम द्वारा विरचित महाकाव्य 'अच्युतरायाभ्युदय' में दक्षिण भारत के विजयनगरम् के राजा नरसिंह के पुत्र कृष्णराय के बाद कनिष्क भ्राता अच्युतराय का अभ्युदय वर्णन किया गया है। इतिहास में अच्युतराय का समय 1530 से 1542 ई0 है। कवि ने उस महाकाव्य को 12 सर्गों में लिखा है। इसमें विजयनगरम् राज्य के राजाओं का वर्णन होने से इसे ऐतिहासिक कहा जाता है।

जैन कवि नयचन्द्र कृत हम्मीर महाकाव्य की रचना 15वीं शताब्दी के उत्तरार्ध (1450-1500 ई0) में की गई है जिसमें चौहान राजाओं की परम्परा में हम्मीर का यशोगान किया गया है। अजमेर और रणस्तम्भपुर के इतिहास के ज्ञान के लिए यह किसी अन्य स्त्रोत से अधिक उपादेय है। हम्मीर अलाउद्दीन खिलजी का समकालिक राजा था, जिसने उस सुल्तान की सेना के साथ युद्ध किया था। अन्त में अपने सैनिकों के छल के कारण आत्महत्या करनी पड़ी थी। शरणागत वत्सलता के कारण हम्मीर अमर हो गया। अलाउद्दीन का समय 1239-1316 ई0 तक था। इसी अवधि में हम्मीर की मृत्यु हुयी अतः यह काव्य इसके नायक के समय से 150 वर्ष बाद लिखा गया था। इसका प्रथम संस्करण एन0 जे0 कीर्तन ने 1879 ई0 में प्रकाशित किया था।

विजयनगर राज्य के राज्यपरिवार की कवियत्री गंगादेवी ने 1371 ई0 के बाद 'मधुराविजय' नामक आठ सर्ग युक्त महाकाव्य की रचना की। इस महाकाव्य में राजा कम्पण की दक्षिण विजय का वृतान्त निरूपित किया गया है। राजा कम्पण ने 1371 ई0 में मदुरा का राज्य मुस्लिम शासकों से छीना था। इसी विजय के स्मारक के रूप में यह महाकाव्य लिखा गया। इस महाकाव्य के प्रथम सर्ग में पूर्ववर्ती कवियों की प्रशस्तियां हैं। इसके पश्चात विजय नगर का इतिहास दिया गया है। बुक्क ने राज्य की स्थापना की थी। बुक्क के तीन पुत्रों में कम्पण ज्येष्ठ था। कम्पण की विशेषताओं तथा विजय यात्राओं का वर्णत इसमें विस्तार से दिया गया है।

रुद्र कवि रचित 'राठौरवंश काव्य' 16वीं शताब्दी का काव्य है। इस महाकाव्य में मयूरगिरि के बागुल राजाओं का इतिहास इसमें दिया गया है जो राठौर वंश के संस्थापन से लेकर कवि के आश्रयदाता नारायणशाह के काल तक चलता है। इसका प्रकाशन गायकवाड़ ओरियनटल सीरीज 5 में 1917 ई0 में हुआ है।

1974ई0 में डॉ0 काशीनाथ मिश्र पटना वि0वि0 के भूतपूर्व संस्कृत विभागाध्यक्ष ने मिथिला प्रदेश के कार्णाट राजाओं के शासनकाल (1097-1324 ई0) के वर्णन से सम्बद्ध कार्णाटराजतरंगणिणी नामक काव्य की रचना की, इसमें 11 तरंग है। राजतरंगिणी की शैली में लिखा गया यह काव्य इतिहास रस को यथार्थ रूप से प्रस्तुत करता है।

इसके अतिरिक्त भी संस्कृत में अनेक काव्य महाकाव्य यथा शिवराज्योदय, छत्रपतिचरित, गान्धिचरित, दयानन्ददिग्विजय, विवेकानन्दचरित,

स्वराज्यविजय, नेहरूचरित, इन्दिरागांधीचरित आदि अनेक काव्य रचित हुये तथा प्रकाशित भी हुए हैं। अतः पाश्चात्य विद्वानों का यह कहना है कि भारतीय इतिहासकार ऐतिहासिक तथ्यों से अपरिचित है, अनुचित है क्योंकि संस्कृत साहित्य में ऐतिहासिक काव्य की एक दीर्घ परम्परा रही है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. संस्कृत साहित्य की ऐतिहासिकता
2. तदेव
3. तदेव
4. ऋग्वेद - 1/267
5. निरूक्त 4/6
6. छान्दोग्य 7/1
7. महाभारत - आदिपर्व 1/267
8. अर्थशास्त्र - कौटिल्य

- अनुसंधान एवं प्रक्रिया - इतिहास और साहित्य, डॉ0 ताराचन्द्र 1960
- इतिहास प्रवेश - जयचन्द्र विद्यालंकार
- अनुसंधान और प्रक्रिया - डॉ0 ताराचन्द्र
- नव साहसांक चरित 1/6
- विक्रमांकदेवचरित
- जोन राजकृत राजतरंगिणी डॉ0 रघुनाथ सिंह द्वारा सम्पादित, चौखम्बा विद्या भवन वाराणसी से सन् 1971 ई0 को प्रकाशित हुई।
- संस्कृत साहित्य का इतिहास - डॉ0 उमा शंकर शर्मा। चौखम्बा भारती अकादमी वाराणसी।
- संस्कृत साहित्य का इतिहास - डॉ0 रमाशंकर त्रिपाठी। कृष्णदास अकादमी वाराणसी।
- संस्कृत साहित्य का इतिहास - बलदेव उपाध्याय। शारदा निकेतन वाराणसी।
- संस्कृत साहित्य का इतिहास - वाचस्पति गैरोला। चौखम्बा विद्या भवन वाराणसी।
- संस्कृत साहित्य का इतिहास - डॉ0 राधाकृष्ण त्रिपाठी
- वेद और इतिहास- डॉ0 धर्मवीर, प्रकाशन परोपकारी सभा, अजमेर।
- सुकवि समीक्षा-आचार्य बलदेव उपाध्याय प्रकाशन- चौखम्बा विद्या भवन वाराणसी।
- संस्कृत साहित्य का इतिहास- कमल नारायण टण्डन - क्लासिकल पब्लिसिंग कम्पनी दिल्ली।

पर्यावरण और किसान

✍ सुशील कुमार सिंह

हमारे चारों ओर फैला हुआ पर्यावरण भौतिक या अजैव और जैव कारकों से निर्मित वह दुनिया है जिसमें मनुष्य निवास करता है। पर्यावरण में उपस्थित जैव और अजैव पदार्थों के बीच बहुत दीर्घनिष्ठ संबंध होता है तथा इनके बीच सतत् पारस्परिक अंतक्रिया होती रहती है। जैव और अजैव घटकों के बीच पदार्थों का आदान-प्रदान चक्रीय पथ के रूप में होता है। पर्यावरण में उपस्थित पौधे, जन्तु, सूक्ष्म जीव, जैव घटक हैं। मनुष्य भी जैव घटकों की श्रेणी में आता है। वायु, पानी, मृदा तथा विभिन्न जीवन संगठन अजैव घटक हैं।

हमारी पृथ्वी पर सभी जगहों का पर्यावरण एक जैसा नहीं है। भौगोलिक परिवेश के आधार पर पर्यावरण में भिन्नता होती रहती है। पर्यावरण के जैव और अजैव घटक सभी जगह एक समान नहीं होते। स्थान के साथ-साथ इन घटकों में परिमाणात्मक और गुणात्मक परिवर्तन होते हैं। मानव के क्रिया-कला जितने अनियंत्रित होंगे पर्यावरण उतना हीं असंतुलित होगा। आज के युग में भौतिक विकास के लिए मानव ने प्रकृति का मनमाने ढंग से दोहन किया है। औद्योगीकरण और खेती एवं विभिन्न स्वार्थ सिद्धि के लिए जंगलों का अनियंत्रित विनाश हुआ है चिमनियों के धुएँ ने पर्यावरण को दूषित किया है मानव द्वारा कुछ हानिकारक रसायनों जैसे क्लोरो-फ्लोरो कार्बन सी. एफ. सी. के प्रयोग से हमारे पर्यावरण के ओजोन स्तर का क्षय हुआ है और सूर्य की पराबैंगनी किरणों की अवशोषित करने वाली यह परत धीरे-धीरे नष्ट हो रही है। महानगरों में वाहनों से निकले धुएँ कई प्रकार की बीमारियों को निमंत्रण देते हैं। मानव अपनी सभ्यता के प्रथम चरण से ही अपने क्रिया-कलापों से पर्यावरण को क्षति पहुँचाता रहा है। आधुनिक मानवों के क्रिया-कलाप भिन्न हैं बड़े स्तर पर प्रकृति की छेड़-छाड़ कर रहे हैं जिससे हमारे पर्यावरण के विभिन्न घटकों के बीच अनियंत्रित असंतुलन पैदा होता है और पर्यावरण के स्तर में ह्रास होता है।

करीब 5 अरब वर्ष पूर्व पृथ्वी की उत्पत्ति हुई, पृथ्वी के चारों ओर करीब 60 किलोमीटर की ऊँचाई वाले क्षेत्र के बीच ओजोन (O_3) का एक विशेष स्तर पाया जाता है जो पृथ्वी पर रहने वाले जीवधारियों के लिये अत्यन्त महत्वपूर्ण है, क्योंकि सूर्य के प्रकाश में उपस्थित हानिकारक पराबैंगनी किरणों का अवशोषण इस स्तर द्वारा कर लिया जाता है। ये पराबैंगनी किरणें मनुष्य में त्वचा के कैंसर और अनेक प्रकार की बीमारियों को जन्म देती हैं पृथ्वी पर रहने वाले जीव अब पहले से ज्यादा पराबैंगनी किरणों के सम्पर्क में हैं।

ओजोन स्तर के ऊपर एक आयन मंडल है जिसमें आयनिक गैस पाई जाती हैं। यह आयन मंडल दूरसंचार में काफी सहायता करता है क्योंकि पृथ्वी की सतह से प्रेषित रेडियो तरंगों को यह वापस पृथ्वी पर परावर्तित कर देता है जिससे सारा विश्व रेडियो, टेलीविजन, दूरसंचार आदि के माध्यम से जुड़ जाता है। इसीलिये हम दुनिया के किसी कोने से प्रसारित कार्यक्रम अपने घरों में रेडियो पर सुन सकते हैं या टेलीविजन पर देख सकते हैं। इसी आयन मंडल स्तर के कारण हम घर बैठे किसी व्यक्ति से या दुनिया के किसी भाग में सम्पर्क कर

✍ जगदेव मेमोरियल कालेज, भूगोल शकरी कुदरा, बिहार

सकते हैं।

किसान और पर्यावरण में चोली-दामन का संबंध है वातावरण में होने वाला कोई भी परिवर्तन किसानों पर अपना गहरा प्रभाव डालता है। किसान भी अपने क्रिया-कलापों से पर्यावरण को प्रभावित करते हैं। पर्यावरण में प्रदूषण फैलाने में मानव का बहुत बड़ा हाथ है। सभ्यता के प्रारम्भ से मानव अपने विभिन्न क्रियाकलापों से वातावरण को प्रदूषित करता आ रहा है। प्रतिदिन हम अपना कार्यकलाप पर्यावरण को प्रदूषित करने के साथ आरम्भ करते हैं। हम नहाने और कपड़ा धोने के लिए साबुन, सोडा या डिटरजेंट का प्रयोग करते हैं। ये सब हमारे जल मंडल को प्रदूषित करते हैं। किसानों द्वारा खेती में विभिन्न रसायनिक खादों और कीटनाशकों का प्रयोग किया जाता है जो मृदा और जल को प्रदूषित करते हैं तो क्या किसानों को अपनी क्रियाकलापों को बन्द कर देना चाहिए ? नहीं बिल्कुल नहीं।

हमारा पर्यावरण एक स्वनियंत्रित तंत्र की तरह कार्य करता है यदि वातावरण में छोटे-मोटे परिवर्तन होते हैं तो प्रकृति इसे संतुलित कर लेती है, क्योंकि प्रकृति के पास इस छोटे-मोटे असंतुलन को दूर करने के अनेक साधन और उपाय हैं लेकिन कभी-कभी मनुष्य अपने क्रियाकलापों से पर्यावरण को इस सीमा तक बदल देते हैं कि इसका पुनः संतुलन संभव नहीं हो पाता है और पर्यावरण असंतुलित हो जाता है।

पर्यावरण और किसान एक दूसरे के पूरक हैं किसान पर्यावरण का पहरेदार हुआ करते थे, इसे संतुलित बनाने में किसानों का अद्‌भुत सहयोग रहा, किसान भारत की आर्थिक तथा सामाजिक व्यवस्था में बड़ा महत्वपूर्ण सहयोग करते आये हैं। विश्व में शायद ही कोई ऐसा कार्यकर्ता होगा जो कर्मठता, एकाग्रता तथा कार्य करने की क्षमता-शक्ति में भारतीय किसान की समानता कर सके फिर भी शायद ही कोई उससे अधिक मन्द भाग्यवाला हो, किसानों की दशा द्रौपदी की चीर है जिसका अन्त ही नहीं।

"धरती उसकी जो उस पर श्रम करे" किसान अपने खेतों का स्वामी होता है। किसानों की देन महान ही नहीं महानतम् है। अपना खून-पसीना एक कर अपने सूखों का बलिदान देकर ये अपने खेतों के खान से मोती उगाते हैं मिट्टी से सोना पैदा करते हैं वह सोना जो हमारी काया ही नहीं प्राणों का आभूषण है।

भारतीय किसान पर्यावरण हितैषी होते हैं। एक समय था जब हरित क्रांति की गूंज थी और इसके कई फायदे गिनाये जाते थे। यह सच है कि हमने हरित क्रांति के माध्यम से अपने देश की खाद्य समस्या को हल कर लिया लेकिन यह सिक्के का केवल एक पहलू है इसका दूसरा पहलू देखने पर शर्मसार होना पड़ता है। कीटनाशी, तृणनाशी से फफूंद को जैविक विघटन नहीं होता है। अर्थात शनैः शनैः इस जहर की सांद्रता हमारे स्वास्थ्य के लिए एक बहुत बड़ा खतरा साबित होने जा रहा है और हो रहा है।

किसानों की नासमझी के कारण भूमिगत जल के दोहन से जल तल में कमी तो आ ही रही है इस क्रिया से हमारे खेतों का लवणीकरण भी हो रहा है। एक दिन खेतों में इतना लवण हो जाएगा कि वनस्पति ही नहीं उग सकेगी। किसानों को प्रशिक्षण देकर जैविक खेती तथा समेकित कीट प्रबंधन के संदर्भ में वृहद् जानकारी देने की जरूरत है।

किसानों को जैविक खाद के प्रयोग के संदर्भ में विशेष रूप से परिसंवाद की जरूरत है जिससे खेतों की उपजाऊ शक्ति निरंतर बनी रहती है। मिश्रित खेती एवं खेतों के बीच-बीच में परती

छोड़ देना एक आवश्यक क्रिया है कार्बनिक खेती तथा समेकित कीट प्रबंधन की विशेष जानकारी किसान भाइयों को देना चाहिए। कम्पोस्ट खाद, गोबर की खाद तथा वर्मी कल्चर का प्रयोग इसके साथ ही जैविक खाद जैसे 'एजोला' राइजोबियम कल्चर तथा नील हरित शैवालों का उपयोग उपयोगी है। जड़ी-बूटियों की खेती में पूर्ण रूप से कार्बनिक खेती ही अनुशंसा की जाती है। औषधीय पौधों की विश्व बाजार में बड़ी मांग एवं कीमत है लेकिन किसान तकनीकी एवं व्यापारिक जानकारी के अभाव में वंचित रह जाते हैं।

किसानों के परम हितैषी महाकवि घाघ थे जो कृषि वैज्ञानिक के साथ-साथ मौसम वैज्ञानिक थे इनकी सूक्तियों से किसानों को अद्भुत लाभ मिलता है। जो वर्तमान में अपने आपमें एक शोध का विषय है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. पर्यावरण और हम - शुकदेव प्रसाद
2. आधुनिक जीवन और पर्यावरण - दामोदर शर्मा
3. पर्यावरण : वर्तमान और भविष्य - डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव

मानव अपनी विकास यात्रा के समय से ही प्रकृति के सानिध्य में रहकर ही अपना एवं परिवार का विकास करता रहा है। इस विकास में उसे सभी तरह की सुख सुविधाएँ प्रकृति से उपहार स्वरूप प्राप्त हुयी हैं। मानव ने इस सुख सुविधाओं में रहकर यह नहीं सोचा कि जिन संसाधनों का वह प्रयोग कर रहा है उनकी भी अपनी क्षमताएं हैं सीमाएं हैं और दायरे हैं। पृथ्वी पर निवास करने का मतलब मानव यदि यह समझ ले कि उसके द्वारा किये जा रहे कुछ कुकृत्यों से उसका पर्यावरण प्रदूषित हो रहा है। विशाल (सीमाओं से आवद्ध) प्राकृतिक संसाधनों के भण्डार वाली धरती की झोली खाली होती जा रही है। भविष्य की बात यदि न भी करें परन्तु वर्तमान को देखें तो स्थिति पर्यावरण को लेकर काफी विस्फोटक हो गयी है। और आज की पीढ़ी एक ऐसे खतरनाक खतरे से रूबरू हो रही है कि यदि पर्यावरण के प्रति लोगों को जागरूक एवं शिक्षित न किया गया तो हमारा जीवन खतरे में पड़ जायेगा। पर्यावरण की इस गम्भीर समस्या से सम्पूर्ण विश्व त्रस्त है और वर्तमान में पर्यावरण शिक्षा की जरूरत सभी देश शिद्दत के साथ महसूस कर रहे हैं। पर्यावरण की समस्या चाहे जनसंख्या की वृद्धि से हुयी हो या औद्योगिक क्रांति अथवा नगरीकरण से इसको रोक पाना सरकार एवं आमजनता के हाथ में नहीं रहा है। यहाँ अब एक ही उपाय हमारे समक्ष पर्यावरण को ब्रह्मास्त्र के रूप में शेष बचा है वह यह कि लोगों को किसी तरह से यह एहसास करा दिया जाए कि पर्यावरण की इस समस्या के पीछे उसी का हाथ है और यह नैतिक दायित्व शिक्षा के माध्यम से ही किया जा सकता है। पर्यावरण की समस्या के प्रति यही सोच पर्यावरण शिक्षा को जन्म देती है। ऐसी शिक्षा जो मनुष्य को पर्यावरण के प्रति उचित समझ, संवेदनशीलता तथा सकारात्मक दृष्टिकोण का विकास करने के साथ-साथ पर्यावरणीय समस्याओं के प्रति जन जागरण फैलाने का कार्य करे पर्यावरण शिक्षा कहलाती है। मानव एवं पर्यावरण का सम्बन्ध विकास से आबद्ध रहा है और विकास की यह प्रक्रिया अनवरत मानव सम्बन्धों को आज भी जोड़े हुए है। अर्थात् पर्यावरण शिक्षा का सीधा सा सम्बन्ध जीवन के विकास तथा उसको प्रभावित करने वाले कारकों से होता है। 'शिक्षा' शब्द संस्कृत भाषा की शिक्ष धातु से बना है जिसका अर्थ होता है उपदेश देना अर्थात् पर्यावरणीय ज्ञान को पीढ़ी दर पीढ़ी स्थानान्तरित करने का कार्य शिक्षा करती है। सामान्यता पर्यावरण शिक्षा का अर्थ हुआ पर्यावरण सम्बन्धी संग्रहीत ज्ञान को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को अन्तरण करना। आज पर्यावरण की समस्या व इसके संरक्षण, प्रबन्धन की दिशा में चिंतन व सार्वभौमिक सोच का होना लाजिमी हो गया है। कृपया उपरोक्त विषयों पर अपने सामाजिक ज्ञान, अनुभव की सीमाओं को ध्यान में रखते हुये शोधपूर्ण, तथ्यपरक एवं वैज्ञानिक तर्कों से युक्त शोध आलेख/लेख प्रेषित कर रचनात्मक सहयोग देने की कृपा करें।

पर्यावरण सन्देश

समकालीन हिन्दी कविता में पर्यावरण चेतना

✍ डॉ. प्रतिमा यादव

समकालीन बोध का अर्थ जीवन की बाह्य परिस्थितियों के बोध तक सीमित न रहकर उस यथार्थ की पहचान करना है जिसके सारे अर्न्तविरोधों और द्वन्द्वों के बीच से गुजरता हुआ मनुष्य अपने विकास के पथ पर अग्रसर होता है। "समकालीन कविता में मनुष्य की प्रतिभा स्थिर, जड़, निष्क्रिय और दार्शनिक नहीं है। उसमें आदमी का परिवेश है जिसमें वह जीता है और आदमी का संसार से सम्बन्ध है। जिसे वह बनाये रखना चाहता है। मनुष्य का मनुष्य, मनुष्य और प्रकृति, प्रकृति और पर्यावरण, प्रविधि और राजनीति की अनेक स्तरीय टकराहटों को सहज ढंग से कवि अंगीकार करता है और यों सारा का सारा जीवन अनेक भंगिमाओं में वहाँ उजागर होता चलता है।" समकालीन कविता काल 'क्षण की कविता नहीं, काल प्रवाह की आघात और विस्फोट की कविता है।"

समकालीन कविताओं में कवियों में पर्यावरण के बिगड़ते संतुलन और प्रकृति के नाना रूपों, पेड़, चिड़िया, पहाड़, नदी, समुद्र, हवा, पानी, वर्षा, गर्मी, सर्दी, फूल-फल आदि को लेकर उन्हें नये संदर्भों के बीच रखकर अभिव्यक्ति देने का प्रयास किया है। यहाँ प्रकृति कोई अमूर्त सत्ता नहीं है। मनुष्य से स्वतन्त्र उसकी जीवित सत्ता है जो हमें जीवन देती है और जिसके साथ हम क्रिया-प्रतिक्रिया करते हैं। समकालीन कविता के अधिकांश कवियों में यह अहसास पूरी सजगता के साथ है कि हमारे समय में मनुष्य और उनके जीवन संघर्ष की पक्षधरता का अर्थ प्रकृति और पर्यावरण से परहेज नहीं बल्कि उसके प्रति संवेदना की प्रतिष्ठा और रक्षा है। एक तरह से उसके जीवन संघर्ष का हिस्सा है यही कारण है कि समकालीन कवियों ने प्रकृति और मनुष्य के रिश्तों को बड़ी सजगता के साथ चित्रित किया है।

रघुवीर सहाय ने प्रकृति और पर्यावरण को गहरी ऐन्द्रिकता के साथ अपने काव्य में बखूबी चित्रित किया है। इनकी कविताओं में पर्यावरण सम्बन्धी चिन्ताएं निहित है। कवि को भी यह चिन्ता मथती रहती है कि पहाड़, जंगल, मिट्टी जैसे घटते नैसर्गिक संसाधनों के कारण प्रकृति केवल किताबों या स्मृति पात्र बनकर रह जायेगी -

"वे पहाड़, जंगल, मिट्टी के मैदान हरे
छोटे हो गये हैं जो इतिहास में बड़े देश के प्रमाण थे
इनकी विशालता का कोई गुणगान
अब सुनाई नहीं पड़ता"

नगरीकरण की सीमाओं में आकर अपने ग्रामीण जीवन-स्तर को सुधारने की धुन में अपने सांस्कृतिक, सामाजिक, धार्मिक और प्राकृतिक वैभव को मानव खोता जा रहा है। कविवर रविन्द्रनाथ ने लिखा है - "परमात्मा की यह इच्छा कदापि नहीं थी कि हम विश्व में आकर लकड़ी तथा पत्थरों की गोदी में पल कर मनुष्य बने। हमारे नगरों के साथ फल-फूल, पत्ते, चाँद-सूर्य आदि का कदाचित कोई सम्बन्ध नहीं है। यह नगर हमें जीवन तथा रस से परिपूर्ण प्रकृति की गोदी से छीनकर अपने तपे हुए पेट में डालते हैं एवं झूलता देखते हैं।" भवानी प्रसाद मिश्र भी इन पंक्तियों में यही कहना चाह रहे हैं -

✍ प्राध्यापक हिन्दी, शा. महारानी लक्ष्मीबाई कन्या महा. भोपाल (म. प्र.)

कहीं नहीं बचे हरे वृक्ष
न झील सागर बचे हैं।

प्रकृति का यह नियम रहा है कि वह सभी जरूरतें पूरी कर सकती है किन्तु लालच किसी का पूरा नहीं करती। प्रकृति में सजीव व निर्जीव दोनों एक दूसरे के प्रति प्रतिक्रियाएँ करते हैं अगर ये प्रतिक्रियाएँ एक निश्चित मापदण्ड के साथ सम्पन्न हो जाती हैं तो हम इसे शुद्ध पर्यावरण कहते हैं परन्तु इन प्रतिक्रियाओं में कहीं असन्तुलन आता है तो परिणाम हमें प्रदूषण के रूप में देखने को मिलता है –

अब ऐसे मौसम में
भले ही यह पागलपन समझा जाये
पर यह सच है
कि पेड़ों के पास नहीं बची है ऑक्सीजन
वे धरती पर चेतावनी की तरह खड़े हैं
और अब इन दिनों कोई नहीं सुनता पेड़ों की आवाज।

समकालीन कवियों ने प्रकृति के बहाने से समाज में घटित हादसों को बयान के रूप में उल्लिखित किया है –

गरजता है गगन
बिजलियों को देह में सोखने को उद्यत
गरजते हैं धरती की ओर से ये वृक्ष।

समकालीन कवि की दृष्टि अपने समय की हर छोटी-बड़ी घटना पर रहती है। यातायात के साधनों की रेल-पेल, धूल, धुँआ, गाड़ियों के हार्न, लाउडस्पीकर का तीखा स्वर कारखानों की चिमनियों से उठता धुँआ, दमघोटु वातावरण के खतरों को कवियों ने अपनी कविताओं में तरह-तरह से प्रस्तुत किया है –

सांस लेने के लिये भी जगह होगी या नहीं
खिड़की से क्या पता
कब दिखना बंद हो जाये हरी पत्तियों के गुच्छे
कैसा पानी कैसी हवा
ईंधन का पता नहीं क्या करेंगे।

प्रौद्योगिकी ने पहाड़ियों, जंगलों को विनाश करने में कोई कसर नहीं छोड़ी है। उक्त कविता में प्रकृति का दर्द एवं प्रदूषण का प्रभाव कितनी गम्भीरता से उकेरा गया है –

पहाड़ियों पर बन गये
ईंट सीमेन्ट के मकान
बिछ गये बहुत से अजनबी तार
चमकती है कहीं-कहीं
पहाड़ियाँ रात में
हम सराहते हैं यह दृश्य भी
पर ठीक उसी वक्त कहाँ से आती है एक कराह भी?

समकालीन कवियों का प्रकृति के निकट जाना पन्त की तरह प्रकृति के प्रति विस्मय विमुग्धा होना नहीं है। अज्ञेय की तरह महावृक्ष की बोध छाया में जाना है – बल्कि प्रकृति के निकट जाना अपनी जिजीविषा, अपने संघर्ष, अपनी मूलगामी संवेदना को जानना और पुष्ट करना है।'' यही कारण है कि कवि की चेतना अत्यन्त सजग है –

मैं चाहता हूँ मेरी कविताएँ
वृक्ष की ही नहीं
तिनके टूटने की आवाज भी सुने
और पहले-पहले दौड़ पड़े तीमारदारी को।

कवि में प्रकृति के साथ रागात्मक अनुभूति की सजगता और जुड़ाव की भावना है साथ ही उसके बिगड़ते रूप के प्रति चिंता भी। प्रकृति के विनाश से उत्पन्न विभीषिका का डर वह अच्छी तरह जानता है कि प्रकृति के विनाश के बाद मनुष्य नहीं रहेगा इसलिए उसे आज अस्मिता के साथ अस्तित्व की चिंता भी है जो प्रकृति से जुड़ी है –

जब तक बहता है झरना
और मंडराती है

मेरे जिस्म के आस-पास
एक पहाड़ी कस्बे की गंध
मैं नहीं अकेला
मैं नहीं निस्संग।

समकालीन कविता में पर्यावरण चेतना का तेवर भावुक कम बौद्धिक अधिक है। प्रकृति के राग उसे आलम्बन या उद्दीपन रूप में देखना उसे प्रेयसी अथवा सहचरी मानना प्रकृति के वैभव और रहस्य में परमात्मा का आभास पाना समकालीन कविता की भंगिमा कतई नहीं है। इसमें प्रकृति हमारे परिवार के सदस्य की भाँति या हम प्रकृति के परिवार के सदस्य की भाँति आते हैं। कवि शहर में उसकी कमी वैसे ही अनुभव करता है जैसे हम अपने परिवार की करते हैं -

बस में बैठे मेरी इच्छा है
कि पूरे रास्ते में दोनों ओर पेड़ मिलते रहें
मैंने अपने कमरे में
पूरे जंगल की तस्वीर लगा रखी है।

आज समूची वसुन्धरा प्रदूषण के आगोश में है। हम महामारियों को तो गम्भीरता से लेकर भयभीत होते हैं पर प्राणघातक प्रदूषण को नहीं। वास्तव में औद्योगिक क्रान्ति से उपजी भौतिकवादी संस्कृति ने मानव समाज को ऐसा पथभृष्ट किया है कि वह स्वयं के साथ-साथ समस्त जीवों के लिये भी संकट पैदा कर रहा है। औद्योगिक इकाइयों से निकलने वाला अवशिष्ट द्रव्य व धुआँ पर्यावरण को प्रदूषित कर रहा है। यदि ऐसा ही चलता रहा तो एक दिन ऐसा होगा जब मानव जीवन का अस्तित्व ही नहीं रहेगा -

अजगर सी ऊँची चिमनी से, वहाँ निकलती विष की ज्वाला
होम वहाँ मानव का होता, दानवता हंसती विकराला।

"आज वनों पर लगातार दबाव बढ़ रहा है। परिणामस्वरूप वन दिनों दिन सिमट रहे हैं।" समकालीन कवियों ने मानव की सुरक्षा में पेड़ों, पर्वतों, जंगलों आदि का महत्व सिद्ध करते हुए प्रकारान्तर से उनके संरक्षण की ही बात कही है -

पेड़ नहीं
पृथ्वी के वंशज हैं -
फूल लिये/फल लिये
मानव के अग्रज हैं।

लीलाधार जगूड़ी जंगलों के हरेपन की अनिवार्यता को इस प्रकार रेखांकित करते हैं -

जब तक जंगल है परियाँ नहीं मरेगी
जंगलों को घरों, शहरों और नगरों में बुलाओ
तो तुम जिस स्त्री को देखोगे, वही परी नजर आएगी।

प्रकृति के षटचक्रों की सारस्वत ऋतुओं की ऋग्वैदिक ऋषियों द्वारा परिकल्पना की गई थी। हमारे देश में छः मौसम यहाँ की प्रकृति और पर्यावरण को मनोरम और साफ-सुथरा बनाने में अपना योगदान देते हैं। श्रीकांत वर्मा की यह कविता मौसम के बदलाव का संकेत दे रही है -

कितनी सरिताएँ धनु की ढीली डोरी-सी क्षीण पड़ी थी
तालपत्र सी धरती।
सूखी दरकी कब से फटी हुई थी।

पर्यावरण में मूक और निरीह पशुओं के कत्लगाह भी कस्बे, नगर और शहर की आबोहवा को दूषित करते हैं। कवि की पैनी दृष्टि से ये बूचड़खाने नहीं बच पाये। इस पर्यावरणीय परिप्रेक्ष्य पर कवि वीरेन डंगवाल लिखते हैं -

यह बूचड़खाने की नाली है
इसी से होकर आते हैं नदी के जल में
खून, चर्बी, ऐवे और लोथड़े।

मनुष्य को जीवित रहने के लिए जिस प्रकार भूमि आवश्यक है उसी प्रकार प्राणी, वनस्पतियाँ व नदी की भी आवश्यकता है। ये सभी

प्रकृति के महत्वपूर्ण अंग हैं जो इस ग्रह पर जीवन के प्राकृतिक तंत्र का संचालन एवं निर्धारण करते हैं। कवि ने इसी रिश्ते को उक्त कविता में प्रस्तुत किया है -

तुम्हारी शिक्षा पूरी हुई
अब जा रहे हो
तो एक सीख लेकर जाओ
इस तरह जाओ
कि जिधर से जाओ
जहाँ-जहाँ जाओ
एक नदी के साथ जाओ।

एक तरफ तो समकालीन कवि पर्यावरण पर मुग्ध हैं वहीं दूसरी तरफ चिन्तित भी। प्रदूषण के परिणामों को सोचकर पर्यावरण की रक्षा करते हुए वह अपनी लेखनी के माध्यम से प्रहार कर रहा है -

मैं अपना नन्हा गुलाब
कहाँ रोप दूँ
मुट्ठी में प्रश्न लिये
दौड़ रहा हूँ वन-वन
पर्वत-पर्वत
रेती-रेती
लाचार।

पर्यावरण की सुरक्षा में चिपको आन्दोलन के प्रणेता 'बाबा आमटे' और सुश्री मेघा पाटेकर को एकांत श्रीवास्तव पर्यावरण का रक्षक बताते हुए कहते है -

समुद्र है तो बादल है, बादल है तो पानी है।
पानी है तो नदी है, नदी है तो बची हुई मेघा पाटेकर।
वह नर्मदा की आँख है, जल से भरी हुई है
जहाँ अनेक किश्तियाँ डूबने से बची हुई है।

समाज की बेहतरी के लिए प्राकृतिक संतुलन बनाये रखना आवश्यक है। प्रकृति के साधनों में अविवेकपूर्ण दोहन का परिणाम मानव जाति के लिए विनाशकारी है। इस सत्य से सभी समकालीन कवि परिचित हैं। यही कारण है कि अशोक बाजपेयी प्रकृति के उन्मुक्त पर्यावरण से कटकर अपने शब्दों को जड़ता की सीमा में ले जाना चाहते हैं। उनकी दृष्टि में पत्तियों का हरा व्याकरण और चिड़ियों की ध्वनि प्रतिध्वनि ही सुख का असली घर है। चिंतातुर कवि घर और खिड़की से बाहर निकलकर सम्पूर्ण पृथ्वी को अपनी रचना के केन्द्र में रखता है -

थोड़े से शब्दों से नहीं बना सकता
मैं कविता
मुझे चाहिए समूची भाषा
सारी हरीतिमा पृथ्वी की
सारी नीलिमा आकाश की
सारी लालिमा सूर्योदय की।

पर्यावरण की भयावह स्थितियों के बीच अभी सब कुछ नष्ट नहीं हुआ है। संयोग से ही सही आशा कि किरण अभी बाकी है। ''पर्यावरण संरक्षण व्यक्ति का प्राकृतिक, सामाजिक और मौलिक अधिकार होना चाहिए। लोगों में इसके प्रति जागरूकता की जरूरत है। अभी भी समय है कि हम प्रकृति के निःशुल्क उपहारों में बंदरबाँट या लूट से बचायें और लोगों को समझायें कि यदि ऐसा ही चलता रहता तो यह धरती, वायु, जल, आकाश आदि हमारे नहीं रहेंगे -

यह महज संयोग है,
बचाव की किसी तैयारी के तहत नहीं
कि अभी बहुत सारी चीजें
कुछ लोगों की पहुंच से बाहर हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची -

1. डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी, कविता यात्रा : रत्नाकर से रघुवीर सहाय तक, पृ. 76

2. डॉ. विश्वम्भर उपाध्याय, समकालीन कविता की भूमिका, पृ. 3-4
3. रघुवीर सहाय, प्रतिनिधि कविताएँ, पृ. 128
4. टैगोर रवीन्द्र नाथ, शिक्षा दिल्ली सन्मार्ग प्रकाशन 1962, पृ. 14
5. भवानी प्रसाद मिश्र : व्यक्तित्व, पृ. 12
6. भगवत रावत : सच पूछो तो, पृ. 18-19
7. अरूण कमल : अपनी केवल धार, पृ. 16
8. चंद्रकांत देवताले : आग हर चीज में बतायी गई है, पृ. 16
9. प्रयाग शुक्ल : अधूरी चीजें तमाम, पृ. 78
10. डॉ. परमानंद श्रीवास्तव : शब्द और मनुष्य, पृ. 175
11. प्रेमशंकर रघुवंशी : नर्मदा की लहरों से, पृ. 9
12. कुमार विमल : एक छोटी सी लड़ाई, पृ. 12
13. विनोद कुमार शुक्ल : समकालीन काव्य, पृ. 100
14. रामेश्वर शुक्ल अंचल : नई कविता नये कवि, पृ. 65
15. राज एक्सप्रेस : 4 मार्च 2005
16. केदारनाथ अग्रवाल : फूल नहीं रंग बोलते हैं, पृ. 35
17. लीलाधार जगूड़ी : भय भी शक्ति देता है, पृ. 134
18. श्रीकांत वर्मा : प्रतिनिधि कविताएँ, पृ. 10
19. वीरेन डंगवाल : दुष्चक्र में सृष्टा, पृ. 67
20. देवी प्रसाद मिश्र : प्रार्थना के शिल्प में नहीं, पृ. 25
21. केदार नाथ सिंह : अभी बिल्कुल अभी, पृ. 26
22. एकांत श्रीवास्तव : सदी के अंत में कविता, पृ. 208
23. अशोक वाजपेयी : मुझे चाहिए तत्पुरूष, पृ. 63
24. क्रॉनिकल : भारत की सामाजिक समस्याएँ, पृ. 315
25. भगवत रावत : यह महज संयोग है, इंडिया टुडे वार्षिकी 1997

विश्व बैंक की पहल पर सरकार के अलावा समाज की भलाई के काम में लगी संस्थाएं जो सामान्य जनता के लोगों से ही बनी होती हैं स्वयंसेवी संस्थाएं कहलाती हैं। इनका कार्य सरकार एवं जनता के बीच तालमेल बैठाकर विकास करना होता है अर्थात् ये स्वयंसेवी संस्थाएं सरकारों से तालमेल बिठाकर उनकी योजनाओं को आम जनता तक पहुँचाती हैं और इसके साथ ही जनता की प्रतिक्रियाएं आकांक्षाएं और अपेक्षाओं को सरकार के पास तक ले जाती हैं। वास्तव में देखा जाये तो ये स्वयंसेवी संस्थाएं सरकार एवं आम जनता के बीच की महत्वपूर्ण कड़ी हैं। इन संस्थाओं में समाज के ऐसे व्यक्ति जुड़े होते हैं जो निस्वार्थ सेवाभावी, त्यागी और निष्ठावान होने के साथ-साथ उनका अन्तिम लक्ष्य समाज अथवा देश की सेवा वृत्त से जुड़ा होता है। इतिहास में ऐसे चरित्रों की कमी नहीं मिलती है। विनोबा भावे जिसे सज्जन शक्ति कहा करते थे। विनोबा भावे जी ने गाँधी जी के समय में 'भंगी मुक्ति' से लेकर चर्खा और खादी संघों की स्थापना कर इन्हें निष्ठापूर्वक चलाया। लेकिन सेवा और राहत के इन कामों में लगे रहने के बावजूद इन समाजसेवियों को यह एहसास तो होता ही था कि अपने समाज के दलितों, गरीबों की सेवा करके परिस्थितियों को बदला नहीं जा सकता है। तब इन्हीं स्वयंसेवी संस्थाओं से जुड़े कुछ लोगों ने समाज के विकास का जिम्मा उठाया था क्योंकि यह भारत का नवनिर्माण का दौर था और हमारे यहाँ विकास के नाम पर सरकारें भी तरह-तरह के उपक्रम करने में लगी थीं। गैर-सरकारी लोगों के इन स्वयंसेवकों ने खुद कृषि, शिक्षा, साक्षरता आदि को लेकर महत्वपूर्ण संस्थाए खड़ी कीं थीं और नेकनियती एवं ईमानदारी से जुड़कर कार्य करते रहे और देखते-देखते अपने कार्यों एवं विकास के बल पर इनकी स्वतंत्र पहचान बननी शुरू हो गयी। इसी दौर में ये गैर-सरकारी समूह समाज को बदलने के लिए संघर्षरत जुझारू समूहों में तब्दील होते गये यही दौर था कि जब देश में नर्मदा बचाओं आन्दोलन, छत्तीसगढ़ मुक्ति मोर्चा, संघर्ष वाहिनी या ऐसे ही अनेक समूह उभरे जिन्होंने विकास के साथ-साथ अपनी निजी जिन्दगी में भी सादगी, शुचिता और संयम के सिद्धांतों का कड़ाई से पालन करते रहे। आज पर्यावरण की समस्या व इसके संरक्षण, प्रबन्धन की दिशा में चिंतन व सार्वभौमिक सोच का होना लाजिमी हो गया है। कृपया उपरोक्त विषयों पर अपने सामाजिक ज्ञान, अनुभव की सीमाओं को ध्यान में रखते हुये शोधपूर्ण, तथ्यपरक एवं वैज्ञानिक तर्कों से युक्त शोध आलेख/लेख प्रेषित कर रचनात्मक सहयोग देने की कृपा करें।

बाल जगत

बाल साहित्य : दशा एवं दिशा

✍ अमृताधीर

हिन्दी का बाल साहित्य सौ वर्ष से भी अधिक पुराना हो गया है। इसके सन्दर्भ में हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि आज का बच्चा इक्कीसवीं सदी में प्रवेश कर चुका है। उसकी इच्छाएँ पसंद-नापसंद और सरोकार भी बदल गये हैं। उसकी मानसिकता को समझते हुए हमें वह बाल साहित्य रचना होगा जो उसे संस्कार देते हुए नई चुनौतियों का सामना करने के लिए तैयार कर सके। लगभग सात दशक पहले पत्र-पत्रिकाओं ने इस ओर ध्यान देना शुरू कर दिया था। कुमार पत्रिका के जनवरी 1940 के अंक के संपादकीय में कहा गया था - ''हमारा सदैव से यह दृष्टिकोण रहा है कि हम अपने बालकों को वाद-विवादों के चक्कर में न डालकर उनके सामने केवल वैज्ञानिक सामग्री प्रस्तुत करें, जिससे उन्हें मानवीय जीवन और संसार के प्रति अपने दृष्टिकोण को वैज्ञानिक बनाने में सहायता मिले।

फ्रांस के सुप्रसिद्ध विद्वान रूसो का कहना है कि बालक का मन शिक्षक की पाठ्य पुस्तक है जिसे उसको पहले पृष्ठ से लेकर अंत तक भली-भाँति अध्यापन करना चाहिए। दूसरी ओर आयु वर्ग एवं शिक्षा मनोविज्ञान पर विचार करते हुए मनोवैज्ञानिकों ने इस बात पर बल दिया है कि अवस्था के अनुसार बच्चों को अपना पृथक अस्तित्व होता है। वे स्वतंत्र होते हैं उनके मनोविज्ञान को समझना आसान नहीं है तभी तो खलील जिब्रान ने कहा है कि ''तुम उन्हें अपना प्यार दे सकते हो लेकिन विचार नहीं क्योंकि उनके पास अपने विचार होते हैं। तुम उनका शरीर बन्द कर सकते हो लेकिन आत्मा नहीं क्योंकि उनकी आत्मा आने वाले कल में निवास करती है। उसे तुम नहीं देख सकते हो। सपनों में भी नहीं देख सकते। उन्हें अपनी तरह बनाने की इच्छा मत रखना क्योंकि जीवन पीछे की ओर नहीं जाता और न बीते हुए कल के साथ रूकती ही है।'' बच्चों के लिए लेखन आसान नहीं है। उनके मनोविज्ञान को समझे बिना बाल साहित्य लिखा ही नहीं जा सकता। तथ्य तो यह है कि बाल साहित्य का लक्ष्य बच्चों के मानसिक स्तर पर उतरकर उन्हें रोचक ढंग से नई जानकारियाँ देना है। यदि बच्चों में कल्याण भावना और सौन्दर्यपरक दृष्टि जाग्रत करनी हो तो उनकी समस्त आकांक्षाओं और जिज्ञासाओं का स्कूली शिक्षा के साथ ही विकास आवश्यक है। बच्चों के चंचल मन और जिज्ञासाओं को प्रेरित करने का मुख्य साधन बाल साहित्य ही है।

बाल साहित्य की अपने पाठकों तक सीधी पहुँच नहीं है। दरअसल बाल साहित्य का पाठक वह वर्ग है जो कहीं से भी किसी भी रूप में स्वतंत्र नहीं है। निम्न वर्ग की तो बात छोड़िये, मध्यवर्ग और सुविधा सम्पन्न उच्च वर्ग के भी बच्चे अपनी इच्छा से कोई भी पुस्तक या पत्रिका खरीद सकने की स्थिति में नहीं होते बल्कि पूरी तरह अपने अभिभावक पर निर्भर रहते हैं। जिस कारण बच्चों के साथ न्याय प्राप्त नहीं होता। महानगरीय संस्कृति में या पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव के कारण विगत 62 सालों में बच्चों के विकास में सांस्कृतिक बदलाव आया है उसकी अनदेखी करना सच्चाई से मुँह फेरना होगा।

✍ शोध छात्रा, बिनोवा भावे विश्वविद्यालय, हजारीबाग (झारखण्ड)

हमारे बच्चों ने प्रगति की है तो उनके सामने आज नई-नई समस्याएँ भी हैं। विकास की सीढ़ी यदि शिखर पर ले जाती है तो वह उसमें फिसलन भी पैदा करती है जो बच्चों के भविष्य के लिए घातक भी बन सकती है। यह सही है कि हमने बच्चों को भविष्य की चुनौतियों के लिए तैयार तो किया है लेकिन हमें उतना ही सावधान भी रहना है कि वे उपलब्ध सुविधाओं का दुरूपयोग न करने पाएं। भविष्य की चुनौतियाँ गंभीर है। समाज, संस्कृति, जीवन-मूल्य सभी की दृष्टि से बच्चों के सामने अनेक प्रश्न हैं और हमें बच्चों को उनसे जूझने के लिए सशक्त बनाना है। अब आवश्यकता है कि दृष्टिकोण में सकारात्मक परिवर्तन लाया जाए। यदि हम हिन्दी भाषा और हिन्दी साहित्य के विकास के प्रति सचमुच गंभीर हैं तो हमें शुरूआत बाल साहित्य से ही करनी होगी। यदि हमें सभ्य एवं सुसंस्कृत समाज का निर्माण करना है तो बाल साहित्य को उचित महत्व और उसके माध्यम से बच्चों को साहित्यिक संस्कार देना ही होगा।

देश में शिक्षा-नीतियाँ तो बनी किन्तु उन पर राजनीतिक विचारधाराओं के प्रभाव का वर्चस्व रहा। लेकिन बच्चों के मानसिक विकास में शिक्षा-पद्धति के बदलावों ने गुणात्मक विकास किया। महानगरों, शहरों, कस्बों और गाँवों तक के बच्चों में सभी कुछ जानने की जिज्ञासा बलवती हो उठी। बिजली कैसे आती है, टेलीफोन पर आवाज कैसे आती है, साइकिल कैसे चलती है, हवा क्या है ? पानी क्या है, जीवन क्या है ? आदि के बारे में अनेक जिज्ञासाएँ उभरी और बच्चों ने उनके उत्तर मांगे मोटर-रेलगाड़ी, हवाई जहाज ने भी जिज्ञासाएँ जगाई। बच्चों का नई दुनिया से परिचय शुरू हुआ। वे हर जिज्ञासा की गहराई तक पहुँचने को उत्सुक हुए, तो उन्हें विज्ञान की शिक्षा दी गई। उनके प्रश्नों के समाधान करने वाली पुस्तकें छपीं। लेकिन इसी के साथ देश में जो औद्योगिक, सामाजिक और प्रशासनिक विकास हुआ उसने भी बच्चों को प्रभावित किया। आजाद भारत में बच्चों का परिचय लेमनचूस, टॉफियों एवं बिस्कुटों से हुआ। बच्चों के खान-पान में परिवर्तन आया। हरित-क्रांति ने अनाज उत्पादन पर बल दिया तो बच्चों ने कृषि विज्ञान की ओर ध्यान दिया। श्वेत क्रांति आई तो दूध का महत्व बढ़ा। बच्चों ने विकास की इन सीढ़ियों को देखा। इससे उनके सोच में बदलाव आया। उन्होंने घर परिवार मुहल्ले, नगर आदि के प्रति अपने कर्त्तव्य बोध को जाना। वही उनमें मनोवैज्ञानिक परिवर्तन आए। इस सबके परिणामस्वरूप बच्चे सोचने लगे कि वे बड़े होकर क्या बनें ? राष्ट्रीय आंदोलन के समय हर बालक गाँधी, नेहरू, अम्बेडकर, पटेल बनना चाहता था, किन्तु आजादी के बाद जैसे-जैसे विकास हुआ बच्चों ने जहाज चलाने से लेकर अंतरिक्ष में उड़ान भरने की कल्पना की। डॉ. कलाम, कल्पना चावला, किरण वेदी बनने का ख्याल देखा। 61 वर्ष की अवधि में बच्चों ने जमीन से अंतरिक्ष में छलांग मारने की कल्पना की और उसे साकार कर दिखाया।

नई पीढ़ी के तेज गति से चलने वाले बच्चों की मानसिक आयु भी गुजरे जमाने से कहीं बढ़ चुकी है। तब विकल्प रूप में इस बढ़ती बौद्धिक भूख को कुछ तो परोसना होगा कोई तो ऐसा मनोरंजन उपलब्ध कराना होगा जो निरंतर टी. वी. से चिपके बचपन को सही दिशा दे। मन बुद्धि और चेतना का स्वस्थ विकास हो। हम बचपन को भरपूर जीने का मौका दें तभी बच्चें अच्छे और समझदार बनेंगे। ज्यादा टोका-टाकी न करें, उन्हें खुलकर अपनी बात कहने का मौका दें अगर दबाएँगे, तो वे हिंसक बन सकते हैं। उनका पूरा जीवन एक तरह का युद्ध होता है, जिसे न तो वे रोक सकते हैं और न जीत सकते हैं, क्योंकि वे नहीं जानते कि उनमें किस चीज की कमी है या

कि उसे कहाँ और कैसे ढूँढे। वे कभी संतुष्ट नहीं होते। उनके अंदर का छिद्र कभी नहीं भरता। शिक्षा के सामने यह चुनौती है कि बच्चें इन छिद्रों से बचकर बड़े कैसे हों, ये छिद्र जिन्हें कभी भरा नहीं जा सकता।

जॉन होल्ट मानते हैं कि ''जिस व्यक्ति के पास असली स्वतंत्रता नहीं होती या उसे लगता है कि उसके पास वह नहीं है, वह उसे लेने के बारे में नहीं सोचता वह केवल इस बारे में सोचता है कि उसे दूसरों से छीना कैसे जाए ? मनुष्यता को बचाए रखने के लिए हमें बच्चों को इस रूप में ढालना होगा जो अपने जीवन को सम्पूर्ण रूप से जीना चाहते हों उसे सार्थकता और खुशहाली से भरना चाहते हों।'' फिलहाल देश में कुछ बदलाव हुए हैं जिन्हें क्रांति का नाम दिया जा सकता है। टेलीविजन क्रांति, विज्ञापन क्रांति। आज भारत के बच्चे स्कूल से ज्यादा समय टेलीविजन के सामने बिताते हैं अभिभावकों को बच्चों के प्रति नजरिए में बदलाव आ गया है। आज बच्चों की बातों को महत्व दिया जाने लगा है। वर्तमान का बदलाव परिवार की धुरी है और माता-पिता उसकी पसंद-नापसंद से संचालित होते हैं। टी. वी. के रिमोट की तरह घर की कई छोटी-बड़ी खरीदारी का रिमोट भी बच्चों के हाथों में रहता है।

विगत पंद्रह वर्षों से बच्चों की दुनिया में सूचना प्रौद्योगिकी ने हलचल मचा दी है। कम्प्यूटर, इंटरनेट, मोबाइल आदि ने जहाँ उन्हें अधिक प्रखर और प्रतिभावान बनाया है वहीं अनेक खतरे भी खड़े कर दिये हैं। मोबाइल फोन के दुरूपयोग और गंदी बेवसाइटों से जुड़े अनेक अपराधों में लिप्त बच्चों ने नई-नई समस्याएँ खड़ी कर दी हैं। सेक्स संबंधी जानकारी का खुलेआम उपलब्ध होना बच्चों के विकास में एक नई बांधा बन गया है। इससे बच्चे उम्र के पहले जवान हो रहे हैं और अनेक अपराधों एवं कार्यों में लिप्त हो रहे हैं। इन सबसे बच्चों में नई दुनिया और नए भारत की जो कल्पना उभरती है वह उत्साहजनक है तो चिन्ताजनक भी है।

प्रसन्नता की बात है कि हाल ही में न्यूयार्क में सम्पन्न विश्व हिन्दी सम्मेलन में भी बाल साहित्य की अनुगूंज सुनाई पड़ी। इस सम्मेलन में हिन्दी के बाल साहित्य पर अलग से एक सत्र का होना इस बात का परिचायक है कि अब अन्तर्राष्ट्रीय मंच पर बाल साहित्य का महत्व स्वीकार कर लिया गया है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. असफल स्कूल : जॉन होल्ट, प्रकाशन, एकलव्य।
2. आजकल नवम्बर, 2007
3. बालहंस मार्च 2008
4. बाल साहित्य : रचना और समीक्षा : सम्पादक हरे कृष्ण देवसरे
5. प्रभात खबर 14 नवम्बर 2006

भारत में न्यायिक पुनर्विलोकन : एक समीक्षात्मक विवेचन

ममता सुमन*
डॉ. अजय सिंह**

प्रजातान्त्रिक शासन व्यवस्थाओं की मुख्य विशेषता होती है कि इनमें शासन व्यक्ति विशेष अथवा व्यक्ति समूह की इच्छाओं के अनुरूप नहीं चलकर विधि के अनुसार निष्पादित होता है। अधिकांश लोकतंत्र प्रणालियों में विधि के समक्ष सभी व्यक्ति समान होते हैं तथा एक सा सामान्य कानून राज्य के समस्त नागरिकों पर लागू होता है। इसकी व्यवस्था करने के लिए राजनीतिक शक्ति का संगठन संविधान द्वारा किया जाता है। संविधान के द्वारा व्यक्ति समूहों और राजनीतिक सत्ताओं की राजनीतिक समाज में भूमिकाओं एवं कार्यों का निरूपण होता है। सभी व्यक्ति, समुदाय एवं सरकारी अधिकारी अपने-अपने अधिकार क्षेत्र में रहें इसके लिए संविधान के द्वारा न्यायपालिका की व्यवस्था की जाती है, जो इन्हें अपने कार्य-क्षेत्र का उल्लंघन होने पर उल्लंघनकर्ता को दण्डित करने का कार्य करती है।

आधुनिक राज्यों में लिखित संविधानों की आवश्यकता होती है और इससे संविधानों की व्याख्या करने का और उसकी अतिक्रमणों से रक्षा करने का प्रश्न उठ खड़ा होता है। इसके लिए ऐसी कोई व्यवस्था करने की आवश्यकता है जो संविधान के धाराओं की व्याख्या एवं उसकी रक्षा कर सके। न्यायपालिका यह कार्य तभी कर सकती है जब उसको कार्यपालिका और व्यवस्थापिका के कार्यों का पुनर्विलोकन कर उनकी संविधान से अनुरूपता या प्रतिकूलता देखने का अधिकार हो। सामान्य अर्थों में न्यायपालिका के ऐसे अधिकार को ही न्यायिक पुनर्विलोकन कहा जाता है।

न्यायिक पुनर्विलोकन की उत्पत्ति को समान्यतया अमरीकी संविधान से सम्बन्धित किया जाता है, किन्तु इसकी प्रारम्भिक उत्पत्ति उस देश में हुई जहां इसकी कोई व्यवस्था नहीं है। साम्राज्यवादी युग में ब्रिटेन के उपनिवेशों से सम्बन्धित न्यायालयों के निर्णयों का पुनर्विलोकन करने के लिए एक संस्था प्रीवी परिषद (Privy Council) विकसित हो गयी थी। इस परिषद को उपनिवेशों के सर्वोच्च न्यायालयों द्वारा दिये गये निर्णयों का पुनर्विलोकन करके उन्हें रद्द करने का अधिकार था। यद्यपि न्यायिक पुनर्विलोकन का विचार अवश्य ही ब्रिटेन की देन है तथापि इसको सर्वप्रथम अमेरिका में ही निश्चित रूप से प्रतिपादित किया गया था। अमेरिका के भूतपूर्व मुख्य न्यायाधीश मार्शल ने सन् 1803 में 'मारबरी बनाम मेडिसन' नामक विख्यात मुकदमें के निर्णय में प्रथम बार न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति की प्रस्थापना की थी।

मार्शल ने 1935 तक अमेरिका के प्रधान न्यायाधिपति के पद पर काम किया और उसने अपनी सूझबूझ से अविष्कृत न्यायिक समीक्षा की शक्ति को मैकु लाल बनाम मैरी लैण्ड (1819) और गिब्बन बनाम औगेडेन (1824) में पुनः दुहराया उसके उत्तराधिकारी रोजन बी टॉनी ने स्कॉट बनाम स्टैनफोर्ड (1857) के अग्रणी मुकदमें में कांग्रेस द्वारा बनाए एक अधिनियम को

शोध छात्रा, उ. प्र. रजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद*
रीडर, राजनीति शास्त्र, हंडिया (पी. जी.) कालेज, हंडिया इलाहाबाद**

असंविधानिक घोषित किया। इस प्रकार अमेरिकी संघीय न्यायपालिका ने ऐसी शक्ति धारण की जो समय के साथ-साथ और भी अलघ्य होती गयी। यहाँ तक कि न्यायालयों के अति विस्तारित प्राधिकार के अन्तर्गत वे विधायी एवं प्रशासनिक अधिकार भी आ गये जिन्हें राज्य सरकारों ने बनाया था।

इस प्रकार न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति का विचार ब्रिटेन से चलकर अमेरिका के संविधान की लिखित अचल और संघात्मक प्रकृति के कारण मुख्य न्यायाधीश मार्शल के द्वारा प्रतिपादित हुआ और यहाँ से इसका अन्य राज्यों में प्रसार हुआ।

भारत के संविधाान में भी न्यायिक पुनर्विलोकन की व्यवस्था दी गयी है। संविधाान का अनुच्छेद 13, 32 एवं 226 न्यायिक पुनिर्वलोकन का प्रावधान करता है।

संविधान का अनुच्छेद 13 राज्य पर यह बाध्यता डालता है, कि वह मूल अधिकारों का आदर करे एवं उनका अनुपालन करे। साथ ही यह अनुच्छेद न्यायालयों को यह शक्ति देता है कि वे ऐसे कार्य या विधि को शून्य घोषित कर दें जो मूल अधिकार का अतिलंघन करती है। इस शक्ति को न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति कहते हैं।

अमेरिकी संघीय न्यायपालिका की न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति के मुकाबले भारतीय सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालयों को विशिष्ट तौर से दी गयी न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति का स्वरूप सीमित है क्योंकि यह कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया (Procedure established by Law) के सिद्धान्त के अनुसार परिचालित है यदि यह अमेरिकी सिद्धान्त कानून की उचित प्रक्रिया (Due Process of Law) के अनुसार परिचालित होता तो इसका क्षेत्र व्यापक बन जाता। वास्तव में इस प्रकार का विभेद मात्रात्मक होता है गुणात्मक नहीं।

भारत के संविधान में न्यायालयों को न्यायिक पुनर्विलोकन का अधिकार इस प्रकार से दिया गया है जिससे न्यायिक पुनर्विलोकन से होने वाले लाभों की प्राप्ति हो सके किन्तु अमेरिका में इसकी व्यवस्था से जो कठिनाइयाँ उत्पन्न होती हैं उनसे बचा जा सके। अतः यहाँ न्यायिक पुनर्विलोकन का सीमित अधिकार ही दिया गया है। इस कारण इसकी कई विलक्षणताएं सामने आती हैं यथा -

- न्यायिक पुनर्विलोकन की संविधान में सुव्यक्त रूप से व्यवस्था की गयी है।
- यह न्यायपालिका के लिए आबन्धक है।
- यह विवादग्रस्त नहीं है।
- इसका क्षेत्र सीमित है।
- न्यायाधीशों की तटस्थता का पोषक है।

भारत में संघात्मक व्यवस्था के साथ शक्तियों के पृथक्करण की व्यवस्था नहीं करके शासन की संसदीय प्रणाली अपनायी गयी है जिसमें शक्तियों का सम्मिश्रण इस प्रकार से किया गया है कि न्यायपालिका पृथक, स्वतंत्र एवं सर्वोच्च रहे। भारत में न्यायिक पुनर्विलोकन संतुलन या नियंत्रक चक्र के रूप में स्थापित नहीं किया गया है। यह वास्तव में सरकार, समाज और व्यक्ति में सामंजस्य स्थापित करने के लिए संपोषक चक्र के रूप में कार्य करता है। संघात्मक व्यवस्था के कारण केन्द्रीय, राज्य एवं स्थानीय सरकारों के मध्य सम्पोषण का काम कर सकने के लिए ही इसे 'कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया' के आधार पर स्थापित किया है। अतः भारत में न्यायिक पुनर्विलोकन एक ओर राज्य, समाज और व्यक्ति तथा दूसरी ओर संघीय राज्य और स्थानीय सरकारों

के मध्य स्थापित करने की व्यवस्था के रूप में व्यवस्थित होने के कारण राजनीतिक व्यवस्था का सम्पोषक चक्र बन जाता है।

न्यायिक पुनर्विलोकन के द्वारा संविधान की सीमित सर्वोच्चता स्थापित की गयी है। यह प्रश्न विगत कुछ वर्षों में, विशेषकर 1967 के गोलकनाथ के मुकदमें के निर्णय के पश्चात अत्यन्त विवादग्रस्त बन गया था और 42वें संविधान संशोधन से पहले यह विवाद दो रूपों में प्रकट हुआ था। प्रथम विवाद में यह बात उठाई गयी कि न्यायपालिका ने इस मुकदमें के निर्णय से यह स्थापित किया कि संसद को मौलिक अधिकारों में संशोधन का अधिकार नहीं है। इस मत की पुष्टि में संविधान की धारा 13 का हवाला दिया गया। दूसरे विचार के अनुसार यह तो स्वीकार किया गया कि संसद मौलिक अधिकारों में संशोधन कर सकती है किन्तु उसे संविधान के आधारभूत ढाँचे में परिवर्तन करने का अधिकार नहीं है। इस विचार में और भी कई तथ्य उलझने लगे थे और संविधान के 42वें संशोधन से यह विवाद समाप्त होकर यह तथ्य पूर्णतया स्थापित हो गया कि अन्तत: व्यवस्थापिका ही सर्वोच्च है। इस सम्बन्ध में न्यायाधीश एस. आर. दास ने उपयुक्त ही कहा था कि "सीमाओं के अन्तर्गत हमारे संविधान में व्यवस्थापिका शक्ति की सर्वोच्चता को स्वीकार किया है"। अत: अब स्पष्ट रूप से स्थापित हो गया कि भारत में न्यायिक पुनर्विलोकन संविधान की सीमित सर्वोच्चता ही स्थापित करता है।

स्पष्ट है कि भारत के संविधान निर्माता न्यायिक पुनर्विलोकन की इस तरह व्यवस्था करना चाहते थे जिससे न्यायालय आवश्यक शक्ति से युक्त तो रहे किन्तु इतनी शक्ति भी हथियाने की स्थिति में न आ जाय कि अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय की तरह भारत का सर्वोच्च न्यायालय भी संसद का तीसरा सदन या उच्चतर व्यवस्थापिका बन जाये और कानूनों की व्याख्या के स्थान पर कानून और नीतियों का निर्माण करने लगे। 1967 के निर्णय के बाद और विशेषकर बैंकों और प्रिवी पर्सो से सम्बन्धित मुकदमें के निर्णय के बाद सर्वोच्च न्यायालय अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय के पदचिन्हों पर चलने लगा था। स्वभावत: इसीलिए इसको पुन: अपने 1967 से पहले के मार्ग पर लाने के लिए संविधान के 42 वें संशोधन में न्यायिक पुनर्विलोकन के अधिकार का सीमांकन किया गया है।

विगत वर्षों में भारतीय न्यायालयों द्वारा न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति के प्रयोग से इस सम्बन्ध में कई सिद्धान्त का प्रतिपादन हुआ है। विभिन्न निर्णयों से यह निष्कर्ष निकलता है कि भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति के प्रयोग से सम्बन्धित निम्न सिद्धान्त स्वीकार किये हैं :-

1. संविधान की साम्य संरचना का सिद्धान्त (The Doctrine of harmonious construction of the Constitution)
2. संविधि के आंशिक रद्दीकरण का सिद्धान्त (The Doctrine of aprtial annulment of statute)
3. संविधान द्वारा स्थापित प्रक्रिया का सिद्धान्त (Doctrine of the procedure established by law)
4. स्वयं के निर्णयों का पुनर्विलोकन करने का सिद्धान्त (The Doctrine of reviewing to own decision)
5. संविधान की प्रगामी व्याख्या का सिद्धान्त (Doctrine of progressive interpretation of the Constitution)

6. संविधान की भावना का सिद्धान्त (Doctrine of the Spirit of the constitution)

7. भविष्य प्रभावी प्रत्यावेदन का सिद्धान्त (Doctrine of prospective overruling)

8. संविधि की वैधानिकता की प्रकल्पना का सिद्धान्त (The doctrine of the presumption of the constitutionality of a statute)

भारत में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा न्यायिक पुनराविलोकन के प्रयोग में कम या अधिक अंशों में सामान्यतया इन सिद्धान्तों का पालन हुआ है।

विगत कुछ वर्षों में न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति पर यह आरोप लग रहे हैं कि जन प्रतिनिधित्व करने वाली संस्थाओं (व्यवस्थापिका एवं कार्यपालिका) से श्रेष्ठतर बनकर व्यवस्था में लोकतन्त्र को आघात पहुंचा रही है। इस आधाार पर न्यायपालिका के इस अधिकार की आलोचना की जाती है। वस्तुत: इन आरोपों की पृष्ठभूमि में अनेक प्रश्न उठते हैं। यथार्थ में आदर्श संघीय व्यवस्था का आग्रह शक्ति-पृथक्करण के सिद्धान्त पर बल देता है। यद्यपि परिसंघीय संरचना के अन्तर्गत नियंत्रण एवं संतुलन को सिद्धान्तत: स्वीकारा जाता है भारत की परिसंघीय संरचना स्वयं में विशिष्ट है। जिसमें संघात्मक एवं एकात्मकता दोनों के लक्षण विद्यमान हैं। इस परिप्रेक्ष्य में संस्थाओं (विधायिका, कार्यपालिका) द्वारा यह आलोचना की जाती है कि न्यायिक पुनर्विलोकन का सिद्धान्त भारत की संघीय व्यवस्था की मूल भावना को कुण्ठित करता है। किन्तु न्यायिक पुनर्विलोकन की तमाम आलोचनाओं के बावजूद इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि न्यायिक पुनर्विलोकन की व्यवस्था भारतीय लोकतांत्रिक व्यवस्था हेतु परम आवश्यक व हितकर है। संविधान के द्वारा संघ और राज्य सरकारों के मध्य जो शक्ति विभाजन किया गया है, न्यायिक पुनरावलोकन की व्यवस्था के बिना उसकी रक्षा कर पाना लगभग असंभव है। शासन की शक्ति पर नियन्त्रण रखने और नागरिक अधिकारों व स्वतंत्रताओं की रक्षा करने का कार्य भी न्यायिक पुनरावलोकन के आधार पर ही किया जा सकता है। न्यायिक पुनर्विलोकन की व्यवस्था संविधान के सन्तुलन का कार्य करती है और न्यायिक पुनर्विलोकन के आधार पर ही सर्वोच्च न्यायालय व उच्च न्यायालय संविधान के अधिकारिक व्याख्याता और रक्षक के रूप में अव्यवस्थित है। वस्तुत: भारतीय संविधान के निर्माताओं ने संसदीय सर्वोच्चता और न्यायिक पुनर्विलोकन के मध्य समन्वय स्थापित करने का प्रयास किया है जिसे बनाया रखा जाना चाहिए। शासन के द्वारा न्यायपालिका की स्वतंत्रता का सम्मान किया जाना चाहिए और स्वयं न्यायाधीशों के द्वारा अपनी शक्तियों के विस्तार को दृष्टि में रखने की अपेक्षा, इन शक्तियों की सीमाओं को दृष्टि में रखा जाना चाहिए।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. जैन, पुखराज व फाड़िया, बी0एल0, ''भारतीय शासन एवं राजनीति'' साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा, 2007

2. पाण्डेय, जयनारायण, ''भारत का संविधान'' सेन्ट्रल लॉ एजेन्सी, इलाहाबाद।

3. गेना, सी. वी., ''तुलनात्मक राजनीति और राजनीतिक संस्थायें'' विकास पब्लिसिंग हाउस, नई दिल्ली।

4. प्रकाश चन्द्र, ''इंडियन गर्वनमेण्ट एण्ड पॉलिटिक्स'' कॉस्मोस बुकहायर प्रा0लि0 नई दिल्ली।

5. कश्यप, सुभाष, ''भारत का संवैधानिक विकास और स्वाधीनता संघर्ष''।

पोथी की परख/समीक्षायन

प्रमुख राजनीतिक चिंतकों की विचारधाराओं का संगम

✍ डॉ. आदित्य कुमार

पुस्तक	:	प्रमुख राजनीतिक विचारधाराएं
लेखक	:	डॉ. कमलेश कुमार सिंह
प्रकाशक	:	राधा पब्लिकेशन्स 4231/1 अंसारी रोड दरियागंज, नई दिल्ली 02
मूल्य	:	650.00 रूपये

राजनीतिक, सामाजिक तथा शैक्षणिक गतिविधियों से जुड़े सहृदय एवं व्यवहार में मृदुल, प्राध्यापन में क्रियाशील, राजनीति विज्ञान के मर्मज्ञ विद्वान तथा मन से साहित्यकार डॉ. कमलेश कुमार दर्जन भर प्रकाशित अप्रकाशित पुस्तकों के रचनाकार हैं। लेखन डॉ. कमलेश जी की जिजीविषा है जिसे बनाये रखने के लिये आप सतत जीवंत एवं सृजनशील हैं। आपकी अभिरूचि अनुसंधानक के साथ खोजपूर्ण रहती है। चिन्तन मनन में सजग डॉ. कमलेश कुमार सिंह के सामाजिक, राजनीतिक लेख राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय पत्रिकाओं में निरन्तर छपते रहते हैं।

डॉ. कमलेश कुमार सिंह की प्रमुख राजनीतिक विचारधाराएं नामक पुस्तक अठारह अध्यायों में विभाजित है। आदर्शवाद, उपयोगितावाद, व्यक्तिवाद, समाजवाद, मार्क्सवाद (साम्यवाद), सोवियत साम्यवाद, चीन का साम्यवाद, समष्टिवाद, सिडिकलिज्म (श्रम संघवाद) श्रेणी समाजवाद, भारतीय समाजवाद, अराजकतावाद, बहुवाद, फासिज्म, राष्ट्रवाद, साम्राज्यवाद, अन्तर्राष्ट्रीयता, गाँधीवाद के द्वारा विद्वान लेखक ने तर्कपूर्ण शैली एवं तथ्यात्मक आंकड़ों के द्वारा अधिक स्पष्टता के साथ विश्लेषण करने का सफल प्रयास किया है।

प्रमुख राजनीतिक विचारधाराएं नामक पुस्तक की प्रमुख विशेषताएं यह है कि इसमें डॉ. कमलेश जी ने विषय-सामग्री को विविध शीर्षकों व उपशीर्षकों में विभाजित करके साथ ही भाषा को सरल व भावों को सहज बनाकर विषय को स्पष्ट करने के लिये आलोचनात्मक शैली का प्रयोग किया है। प्रमुख राजनीतिक चिंतकों की विचारधारा को लेखक ने चिंतकों के विभिन्न दृष्टिकोणों को अनेक उदाहरणों के द्वारा अपनी तरफ से एक नयी व्याख्या प्रस्तुत की है। जो अन्य पुस्तकों में शायद ही कम देखने को मिलता है।

परम्परा से चली आ रही विचारधारा को डॉ. कमलेश सिंह ने अपनी पुस्तक के माध्यम से नवीन प्रस्तुतीकरण करने की कोशिश की है। आदर्शवाद के प्रमुख चिंतकों इमैनुअल, काण्ट, हीगल की विचारधारा की व्याख्या को लेखक ने एक विशेष दृष्टिकोण से विवेचन किया है। इसी तरह से व्यक्तिवाद के प्रमुख चिंतक स्टुअर्ट मिल, हर्बर्ट स्पेंसर को भी विद्वान लेखक ने विशेष तरह से रेखांकित किया है।

प्रस्तुत पुस्तक की प्रमुख विशेषता यह है कि लेखक ने अध्याय के अन्त में प्रमुख सिद्धान्तों की सारांश सहित मूल्यांकन तथा प्रासंगिक प्रश्नावली का प्रयोग कर एक नवीन आयाम प्रदान किया है। मेरा विचार है कि प्रस्तुत पुस्तक विभिन्न विश्वविद्यालयों के स्नातक व स्नातकोत्तर स्तर के पाठ्यक्रम के अनुसार होने के साथ-साथ प्रतियोगी छात्रों, प्राध्यापकों, शोधार्थियों साथ ही राजनीति विज्ञान के प्रति रूचि रखने वाले विद्वान पाठकों के लिये उपयोगी सिद्ध होगी।

✍ अध्यक्ष व रीडर, राजनीति शास्त्र विभाग, डी. वी. (पी. जी.) कालेज, उरई (जालौन) उ. प्र.

पोथी की परख/समीक्षायन

महानायक आजाद चन्द्रशेखर

✍ डॉ. अलका द्विवेदी

पुस्तक : आजाद योद्धा (चन्द्रशेखर आजाद की जीवनी पर आधारित)
लेखक : डॉ. अजीत सिंह राही
प्रकाशक : लोकगीत प्रकाशन एस.सी.ओ. 26-27 सेक्टर 34A चण्डीगढ़ [illegible]
मूल्य : 250.00 रुपये

अजीत राही अन्तर्राष्ट्रीय साहित्य जगत में [illegible] है जिसकी असीम ऊर्जा का अन्त नहीं दिखाई देता [illegible] लेखक राही अपने संस्मरण लेखन के लिये जाने जाते [illegible] विशेष स्थान रखते हैं। पंजाब की धरती में पैदा हुई [illegible] संस्कृति, सभ्यता, शिक्षा तथा राष्ट्रीयता [illegible] करते रहते हैं। इसी [illegible] यह उपन्यास जो उपलब्ध दस्तावेजों और [illegible] पर आधारित है।

आजाद योद्धा नामक पुस्तक में अजीत सिंह राही ने चन्द्रशेखर आजाद के जीवन के उन मार्मिक पहलुओं को छूने की कोशिश की है, जो अभी तक बहुत ही कम लोगों को जानकारी प्राप्त है। प्रस्तुत पुस्तक संस्मरण प्रकार से लिखा गया उपन्यास का विस्तृत रूप कहा जाये तो मेरी समझ से कोई आपत्ति नहीं है।

अजीत सिंह राही ने 'आजाद योद्धा' नामक शीर्षक के द्वारा चन्द्रशेखर आजाद को यह सिद्ध किया है कि वह जान से ज्यादा अपने राष्ट्र और अपने मित्रों को चाहते थे और इसके लिये उन्होंने समय-समय पर यह सिद्ध भी किया है - लेखक एक स्थान पर लिखते हैं कि आजाद भगत सिंह का सबसे ज्यादा सम्मान करते थे। जब असैम्बली में बम फेंकने के लिये भगत सिंह ने अपना नाम पेश किया तो आजाद ने इसका विरोध किया। वो भगत सिंह को किसी भी कीमत पर गँवाना नहीं चाहते थे पर भगत सिंह की जिद और केन्द्रीय कमेटी के फैसले को दुःखी दिल से मानना ही पड़ा। फिर सब भूलकर उन्होंने फैसला किया कि भगत सिंह को छुड़ाने के लिए पूरी कोशिश की जायेगी। वहीं दूसरी ओर भगत सिंह को भी जितनी देर आजाद जीवित थे ऐसा लगता था कि अभी कुछ नहीं बिगड़ा। भारत की अंग्रेजी सरकार का देश में पूरा जोर लगा हुआ था कि किसी तरह आजाद जीवित या मुर्दा हाथ आ जाए। क्रांतिकारियों में आजाद अकेले ऐसे सदस्य थे जो सबसे ज्यादा समय अंडर-ग्राउंड रहे और जीवित पुलिस के हाथ नहीं आए। एक बार कामरेड तेजा सिंह स्वतंत्र ने अपने लम्बे गुप्त जीवन के बारे में कहा था कि लोग एक जंगल की भाँति होते हैं। जहाँ कोई भी सरकार लोगों के प्यार को ढूंढ़ नहीं सकती। जब तक अपना कोई सदस्य गद्दारी न करे। आजाद को भी पार्टी की केन्द्रीय कमेटी के सदस्य ने जिसको अंग्रेज सरकार की सी. आई. डी. के डिप्टी शम्भू नाथ ने खरीद लिया था, गद्दारी करके शहीद करा दिया। इसी तरह से पूरी पुस्तक में सरकारी एवं गैर सरकारी दस्तावेजों के साक्ष्य के आधार पर विद्वान लेखक ने अनेक ऐसे अनछुए पहलुओं को आजाद के जीवन पर प्रकाश डाला है जो अन्यत्र पुस्तकों में देखने को नहीं मिलता है। चन्द्रशेखर आजाद पर कार्य कर रहे उन शोधार्थियों के लिये साथ ही प्राध्यापकों के लिए प्रस्तुत पुस्तक अमर दस्तावेज साबित होगी जो 'आजाद' की वास्तविकता से अभी तक रूबरू नहीं हुए हैं।

✍ वरिष्ठ प्रवक्ता, हिन्दी विभाग, जुहारी देवी गर्ल्स (पी. जी.) कालेज, कानपुर

पोथी की परख/समीक्षायन

स्त्री चिंतन एवं परम्परा का यथार्थ दस्तावेज

✍ डॉ. तिलकराज चोपड़ा

पुस्तक : स्त्री विमर्श का साहित्यिक परिप्रेक्ष्य
लेखक : डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव
प्रकाशक : नरेन्द्र प्रकाशन 6A, कटरा रोड, इलाहाबाद 211002
मूल्य : 300.00 रूपये

सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक तथा साहित्यिक गतिविधियों के लेखन से जुड़े युवा साहित्यकार के रूप में ख्याति प्राप्त डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव ने दलित विमर्श के क्षेत्र में दलित चिन्तनधारा की अवधारणा को स्थापित कर उनके सामाजिक, आर्थिक विकास का मार्ग प्रशस्त किया है। आपके तीन सौ से अधिक लेखों का प्रकाशन राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की स्तरीय पत्रिकाओं में हो चुका है। दलित विमर्श, स्त्री विमर्श राष्ट्रभाषा हिन्दी में अनेक पुस्तकों की रचना कर चुके डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव ने विश्व की ज्वलंत समस्या पर्यावरण को शोधपरक ढंग से प्रस्तुत किया है। राष्ट्रभाषा महासंघ मुम्बई, राजमहल चौक कवर्धा द्वारा स्व. श्री हरि ठाकुर स्मृति पुरस्कार, बाबा साहब डॉ. भीमराव अम्बेडकर फैलोशिप सम्मान 2006, साहित्य वारिधि मानदोपाधि एवं निराला सम्मान 2008 सहित अनेक संस्थाओं से आपको अलंकृत किया जा चुका है। वर्तमान में आप भारतीय उच्च शिक्षा अध्ययन संस्थान, राष्ट्रपति निवास, शिमला (हि. प्र.) में नई आर्थिक नीति एवं दलितों के समक्ष चुनौतियाँ विषय पर तीन वर्ष के लिये एसोसिएट हैं।

स्त्री विमर्श का साहित्यिक परिप्रेक्ष्य नामक पुस्तक में युवा साहित्यकार डॉ. वीरेन्द्र यादव ने छह अध्यायों में विभाजित कर नारी जगत के उन अनछुए पहलुओं पर प्रकाश डाला है जिस पर अभी तक लेखक कतराते थे। वैसे तो पुस्तक के नाम से केवल साहित्यिक विमर्श की बात सिद्ध होती है। परन्तु इस पुस्तक में स्त्री विमर्श की परम्परा के विविध पक्षों सामाजिक, आर्थिक, राजनीति, ऐतिहासिक तथा साहित्यिक पहलुओं पर विस्तृत प्रकाश डाला गया है।

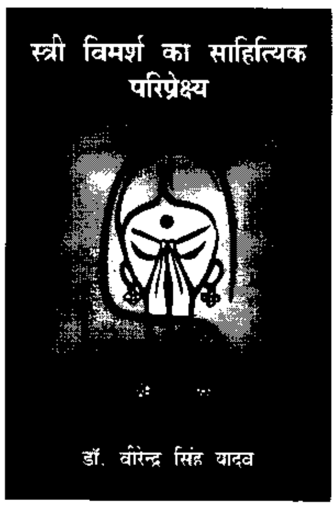

प्रस्तुत पुस्तक के माध्यम से लेखक डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव ने भारतीय सामाजिक परिप्रेक्ष्य में स्त्री विमर्श की अवधारणा स्वरूप, परम्परा को रेखांकित करते हुए हिन्दी साहित्य में स्त्री लेखन की शुरूआत से जोड़कर उनके शुक्ल एवं कृष्ण पक्ष को रेखांकित किया है।

वर्तमान में स्त्री अपनी रचनाओं के प्रति कितना सक्रिय हुई है साथ ही स्त्री के प्रति आज पुरूषों का दृष्टिकोण कैसा है ? इसके लिये लेखक ने भारत के श्रेष्ठ महिला एवं पुरूष लेखकों/चिंतकों के दृष्टिकोणों को साक्षात्कार के माध्यम से अपनी बात को प्रभावित करने की पूरी कोशिश की है। वर्तमान में हो रहे स्त्री विमर्श/लेखन में महिला लेखिकाओं के विमर्श को विद्वान लेखक ने उनकी ही रचनाओं के आधार पर महिला लेखन की उन सशक्त लेखिकाओं के जो स्वयं अपने विचारों में (लेखन एवं वास्तविक जीवन में) ताल-मेल नहीं बिठा पाती हैं। साथ ही पुरूष लेखकों/सामाजिक चिंतकों के पक्षपाती प्रक्रिया का भी पर्दाफाश किया है। कामकाजी महिलाओं की समस्या एवं उनके साथ होने वाले उत्पीड़न को भी बीच-बीच में पुस्तक में रेखांकित किया है साहित्यिक कृतियों एवं समाचार पत्रों की सूचना के आधार पर प्रमाणित कर कहीं-कहीं लेखक ने अपने को विवादों से मुक्त होने की पूरी कोशिश की है। कुल मिलाकर स्त्री विमर्श का साहित्यिक परिप्रेक्ष्य नामक पुस्तक पुरूष के अहंकारी स्वभाव की विभिन्न स्थानों में स्पष्ट प्रतिक्रिया उजागर करती है।

लेखक का अपना व्यक्तिगत मानना है कि आज शिक्षित कामकाजी, अधिकार-सजग, बौद्धिक, अर्थ स्वतंत्र पत्नियों ने पुरूषों के लिये कई समस्याएं खड़ी कर दी हैं। शिक्षा, राजनीति, खेल, धर्म, फिल्म, सेना, साहित्य, प्रशासन, मीडिया, संविधान और विज्ञान ने उनके लिये नये क्षितिज खोल दिये हैं। अनुगामिनी एक दिन सहगामिनी बन जायेगी, आदम की पसली से जन्म लेने वाली उसके सम्मुख हकूक की बात करेगी, पौराणिक कथाओं का अध्ययन करने वाली विश्वविद्यालयों में लॉ क्लासेज लगाएगी अथवा नारीवादी नारे उछालेगी नाखूनों से लेकर सिर के बालों तक अपने को ढककर तीर्थयात्राएं करने वाली के प्राण ब्यूटी पॉर्लर में बस जायेंगे, बालाएं अन्तरिक्ष को मुट्ठी में भर लेंगी ऐसा पति परमेश्वरों ने कभी नहीं सोचा था। कुल मिलाकर सुधी पाठकों प्राध्यापकों तथा शोधार्थियों के लिए प्रस्तुत पुस्तक नई जानकारियों एवं वैज्ञानिक विवेचन से भरपूर सामग्री देने में सक्षम है।

✍ हाजल वेग 15, 53340 मेकन्हाइम, जर्मनी

पोथी की परख/समीक्षायन

भाषिक शिष्टता का चरम आख्यान

डॉ. रत्ना सिंह

पुस्तक : तुलसी की काव्य भाषा
लेखक : डॉ. हरि निवास पाण्डेय
प्रकाशक : विश्वविद्यालय प्रकाशन चौक वाराणसी 221001
मूल्य : 120.00 रूपये

लेखन के क्षेत्र में डॉ. हरि निवास पाण्डेय एक जाने माने हस्ताक्षर माने जाते हैं। आप वैसे तो साहित्य की सभी विधाओं में अपनी लेखनी चलाते हैं परन्तु पद्य के क्षेत्र में आपकी विशेष रूचि है। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में शिक्षित डॉ. पाण्डेय ने प्रगतिशील काव्यधारा और त्रिलोचन पर अपनी पी-एच. डी. की है। अनेक प्रतिष्ठित राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय पत्रिकाओं में लेखन करने के साथ-साथ वर्तमान में अरूणाचल प्रदेश के रंगफ्राह शासकीय महाविद्यालय चांगलांग में हिन्दी विभाग के अध्यक्ष पद पर शोभायमान हैं।

ग्यारह अध्यायों में विभाजित तुलसी की काव्य भाषा नामक पुस्तक में डॉ. हरि निवास पाण्डेय ने भक्ति काल के कवियों में गोस्वामी तुलसीदास के स्थान को सर्वोपरि मानकर उनकी भाषा को सरल, सुगम तथा बोधगम्यता वाली माना है। लेखक के अनुसार तुलसीदास जी का रामचरित मानस परम्परावादी लोगों को जितना प्रिय है उतना ही आधुनिक विचारधारा के मानने वाले पाठकों को भी प्रिय है। भाषिक शिष्टता की बात करें तो रामचरित मानस जितना धर्म के अनुयायियों को प्रिय है उससे कम प्रिय धर्म का निषेध करने वालों को नहीं। इसका एक मुख्य कारण है कि मानस हर तरह से जन जीवन से जुड़ा है। तुलसी का काव्य प्रेम, संघर्ष, आत्म सम्मान एवं निष्कम्प, आत्मविश्वास का काव्य है। रामचरित मानस की विशेषता का उल्लेख करते हुये डॉ. पाण्डेय का मानना है कि तुलसीदास की वाणी के प्रभाव से आज भी हिन्दू भक्त, अवसर के अनुसार सौन्दर्य पर मुग्ध होता है, सन्मार्ग पर पैर रखता है, विपत्ति में धैर्य धारण करता है, कठिन कर्म में उत्साहित होता है, दया से आर्द्र होता है, बुराई पर ग्लानि करता है, शिष्टता का अवलम्बन करता है और मानव जीवन के महत्व का अनुभव करता है। क्योंकि भाषा के द्वारा लेखक ने इसमें एक प्रकार का जादुई आकर्षण पैदा किया है।

तुलसी की काव्य भाषा नामक पुस्तक में डॉ. हरि निवास पाण्डेय ने निबन्ध के रूप में कुछ अध्यायों का समायोजन गोस्वामी जी की साहित्यिक संस्कृति को समझाने का प्रयास किया है। चाहे वह तुलसी के मानवीय मूल्य हों या तुलसी की राम के प्रति धारणा, तुलसी की समन्वय की भावना, सामाजिक और मानवतावादी दृष्टिकोण, तुलसी की दृष्टि में नारी, तुलसी की भक्ति हो या लोकनायक के रूप में तुलसीदास का नायकत्व। लेखक का मानना है कि तुलसी की लोकप्रियता का आधार भक्ति अथवा धर्मभीरूता नहीं है बल्कि लोक जीवन का व्यापक चित्रण है। जिसमें गरीबी, अकाल, महामारी, नारी पराधीनता, कपटी, कुटिल राजा, दुर्जन, सन्त-असन्त, सज्जन तथा दैहिक, दैविक और भौतिक ताप है जिसका वर्णन तुलसीदास ने बहुत ही सरल भाषा में बड़े ही मन से किया है। आज लगभग उत्तर भारत के हर घर में रामचरित मानस का मिलना जनता का तुलसी और मानस के प्रति अगाध प्रेम और आदर भाव को व्यक्त करता है। प्रस्तुत पुस्तक भक्ति भावना में रूचि रखने वाले पाठकगणों के लिये तो उपयोगी है ही साथ ही तुलसी पर शोध करने वाले शोधार्थियों के लिये एक मील का पत्थर भी साबित होगी।

प्रवक्ता, हिन्दी विभाग, सरस्वती महिला महाविद्यालय, विजय नगर, कानपुर

पोथी की परख/समीक्षायन

अवधी विरहा गीतों का महाकाव्य

✍ डॉ. ज्योति पाठक

पुस्तक : अवधी विरहा गीतों का विवेचन
लेखक : डॉ. सियाराम 'सिन्धु'
प्रकाशक : अवध भारती समिति हैदरगढ़, बाराबंकी-227301
मूल्य : 300.00 रुपये

डॉ. सियाराम 'सिन्धु' हिन्दी साहित्य जगत के लिये एक चिरपरिचित हस्ताक्षर माने जाते हैं। लोक कला एवं लोक संस्कृति के मर्मज्ञ विद्वान डॉ. सियाराम ने अपनी पी-एच. डी. की उपाधि अवधी के विरहा गीतों पर ली है। अनेक राष्ट्रीय/अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर पत्र/पत्रिकाओं में लेखन कर रहे डॉ. सिन्धु ने अवध ज्योति तथा अवध ज्योति का विरहा विशेषांक का सम्पादन/प्रकाशन कर लोक कला/लोक संस्कृति के प्रति अपनी निष्ठा को एक नया आयाम दिया है। वर्तमान में आप छत्रपति शाहू जी महाराज विश्वविद्यालय से सम्बद्ध तिलक स्नातकोत्तर महाविद्यालय, औरैया में हिन्दी के वरिष्ठ प्रवक्ता हैं। आपकी इस पुस्तक पर पं. बलभद्र प्रसाद पढ़ीस सर्जना हिन्दी संस्थान, लखनऊ से पुरस्कार प्राप्त हो चुका है।

लोक साहित्य वस्तुतः सामान्य जन का साहित्य होता है। जो बुद्धि की अपेक्षा भावों से पुष्पित पल्लवित होकर सहृदय की गहराइयों में उतर जाता है। इसमें हृदय तत्व की अधिकता होती है। ग्रामीण जन विभिन्न उत्सवों के अवसर पर अपने मनोरंजन के लिये जिन गीतों का गायन करते है वे ही आगे चलकर लोकगीत कहलाते हैं। अवधी लोक के साहित्य में भी विभिन्न लोकगीतों की एक समृद्धशाली परम्परा देखने को मिलती है जिनमें संस्कार गीत, धार्मिक गीत, जातीय गीत, ऋतु गीत तथा विविध अन्य गीत भी गाये जाते हैं। परन्तु उनमें विरहा का प्रमुख स्थान है, अवधी लोक साहित्य में विरहा एक लोक राग है। संभवतः विरह की अधिकता के कारण इसे विरहा नाम दिया गया। अवधी लोक साहित्य में जहाँ विरहा लोकगीत के रूप में प्रमुखता से जाना जाता है। वहीं एक लोकप्रिय लोकनृत्य के रूप में भी प्रचलित है।

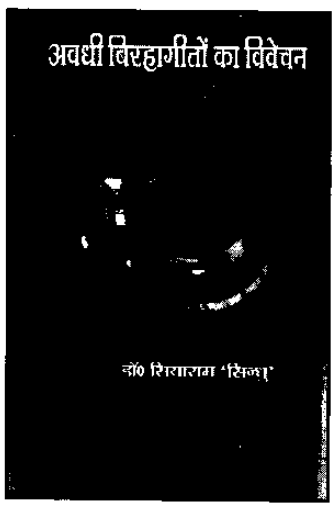

अवध में विरहा के सन्दर्भ में एक कहावत प्रसिद्ध है –

कतनौ अहिरा होय सुजान, विरहा छौडि न गावै आन अर्थात् अहीर जाति के लोग कितना भी पढ़ लिख जाये उन्हें विरहा छोड़कर किसी गीत का गायन अच्छा नहीं लगता। प्रकाशान्तर में विरहा को एक जाति विशेष से जोड़कर उसे जातीय स्वरूप प्रदान कर दिया गया जबकि वास्तव में यह एक गलत अवधारणा है। विरहा के गाने वाले अन्य जातियों के लोग भी देखने को मिलते हैं।

प्रस्तुत पुस्तक में वस्तुविन्यास के अन्तर्गत आध्यात्मिक सन्दर्भ, पौराणिक सन्दर्भ, ऐतिहासिक सन्दर्भ, सामाजिक संचेतना व राष्ट्रीय बोध को लिया गया है। एक गीत में खुदा की शान का गुणगान करते हुए राष्ट्रीय एकता पर बल दिया गया है –

खुदा निराली शान तोरी, दुनिया भर मा तुझका पावा
जर्रे-जर्रे कन-कन मा हर दर-दर मा तुझका पावा

शिल्प विधान में रस, अलंकार व छन्दों का भली प्रकार सूक्ष्म विवेचन किया गया है। विरहा गीतों में छन्दबद्धता बहुत कम ही देखने को मिलती है। प्रायः गीत का आरम्भ एवं अन्त चौपाई छन्द से हुआ है जिसे गीतकारों ने शीन काफ या मुखड़ा से सम्बोधित किया है – पंचो सुनिये अरज हमारी मिसिला किसिम किसिम के ढारी, शीन के पश्चात् विरहा गीतों में ख्याल या शेर आते हैं। इसे शास्त्रीय तांडक छन्द कहा जा सकता है। तुक तथा भाषा सौष्ठव लेखक के अध्ययन की गहराई का दर्शन कराते हैं। अवधी विरहा गीतों के सांस्कृतिक वैशिष्ट्य में विधिक लोक रीतियाँ, विभिन्न कुप्रथायें जैसे अनमेल विवाह, दहेज प्रथा तथा लोक विश्वास जैसे शपथ, आराध्य दर्शन, स्वप्न दर्शन, पुर्नजन्म आदि अनेक लोकविश्वासों को प्रस्तुत किया गया है।

खान-पान, वस्त्राभूषण, आमोद-प्रमोद, मँहगाई एवं गरीबी आदि को विरहा गीतों में दर्शाते हुए उनके जीवन स्तर को दर्शाया गया है। विरहा गीतों में धार्मिकता धर्म के प्रति अटूट निष्ठा रखते हुए उनके जीवन स्तर को दर्शाया गया है। सरस्वती देवी से सम्बन्धित एक गीत प्रस्तुत है –

हंस वाहिनी करौ किरपा जै जै माता माँ सूरसती
हिरदै मा करौ बास ग्यान बुद्धी दाता माँ सूरसती

अवधी विरहा गीतों के प्रमुख विरहा गायक व विरहा के घराने बनाते हुए अवधी विरहा गीतों की प्रमुख गायन शैलियाँ जैसे-बारहमासा, अक्षरमिलान, वाद्-संवाद, कथात्मक, प्रकीर्ण, प्रबोध परक आदि का विस्तार से वर्णन किया गया है।

विरहा गीतों के महत्व का निरूपण करते हुये लेखक ने इनमें चित्रित दार्शनिक मत-मतान्तरों, समसामयिक घटनाओं, नैतिक मूल्यों, लोक जीवन के विभिन्न क्रियाकलापों, त्यौहारों, प्रथाओं, परम्पराओं के परिप्रेक्ष्य में विरहा गीतों के धार्मिक एवं सामाजिक प्रासंगिकता की चर्चा की है साथ ही साहित्यिक शब्दकोशों में अनुपलब्ध देशज शब्दों के अर्थ गाम्भीर्य, राष्ट्रीय एकता का विरोध करने वाली भावनाओं – जातिवाद, सम्प्रदायवाद, क्षेत्रवाद, भाषावाद की निन्दा एवं अनेक राष्ट्रीय समस्याओं – प्रौढ़ शिक्षा, परिवार नियोजन, बाल-विवाह, दहेजप्रथा, नशाखोरी, वैज्ञानिक प्रगति आदि के प्रसंगों को चित्रित करने वाले गीतों का संकलन करने से यह ग्रन्थ और भी प्रासंगिक हो जाता है और इसने महाकाव्य का रूप ले लिया है।

इस प्रकार लेखक का विरहा लोक गीतों पर किया गया यह कार्य लोक साहित्य के शोधार्थियों, अध्ययन कर्ताओं, संकलन कर्ताओं आदि के लिए निःसन्देह उपयोगी सिद्ध होगा। आशा है कि यह पुस्तक लोक साहित्य के प्रति लोगों का ध्यानाकर्षित करने में एक प्रस्थान बिन्दु सिद्ध हो सकती है।

✍ प्रवक्ता, हिन्दी विभाग, तिलक (पी. जी.) कालेज, औरैया (उ. प्र.)

पोथी की परख/समीक्षायन

ऋग्वैदिक असुर और आर्य जाति का वैज्ञानिक विवेचन

✍ डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव

पुस्तक : ऋग्वैदिक असुर और आर्य
लेखक : डॉ. एस. एल. सिंह देव निर्मोही
प्रकाशक : राधा पब्लिकेशन्स 4231/1-ए, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली 110002
मूल्य : [illegible] रुपये

मौलिक समाज शास्त्री के रूप में चर्चित डॉ. एस. एल. सिंह निर्मोही को किसी परिचय की अपेक्षा नहीं है। वर्तमान समय में आपने समाज शास्त्रीय जगत में अपने क्रान्तिकारी और वैज्ञानिक शोध पत्रों के माध्यम से अपना उच्च स्थान बना लिया है। एक दर्जन से अधिक पुस्तकों का सृजन करने वाले अनेक सम्मानों से विभूषित तथा आदि माता मनु और मानुषीकरण नामक पुस्तक से चर्चा में आये डॉ. निर्मोही अपनी पीढ़ी के समाज शास्त्रियों के साथ ही अपने से वरिष्ठ समाज शास्त्रियों के बीच भी आपको विशिष्ट स्थान प्राप्त है। प्राचीन भारतीय समाज, संस्कृति एवं इतिहास चिंतन की दृष्टि से आपकी सारस्वत साधना विशेष महत्व रखती है। प्राचीन काल में असुर, शूद्र, आर्य जैसी जातियों पर पूर्वाग्रह से ग्रसित पाश्चात्य एवं पूर्व के इतिहासकारों द्वारा बनाए गए भ्रमजाल को काटकर आपने एक सन्तुलित वैज्ञानिक और निष्पक्ष व्याख्या देने की कोशिश की है।

डॉ. एस. एल. सिंह देव निर्मोही की नयी पुस्तक ऋग्वैदिक असुर और आर्य सत्रह अध्यायों में विभाजित अब तक के अनसुलझे असुर और आर्य सम्बन्धी सत्य का उद्‌घाटन करती है। डॉ. निर्मोही की निष्पत्ति है कि ईश्वर असुर का पर्याय है। जिसे विश/कुरमी/कृषक/मानव भी कहा जाता था जबकि आर्य शब्द गौर वर्णी जंगली असभ्य लोगों के लिए प्रयुक्त हुआ था। आर्य शीत प्रधान इक्कीस यूरोपीय आदि देशों से आये थे। इन्होंने अपनी मातृभूमि को स्वर्ग के रूप में याद किया।

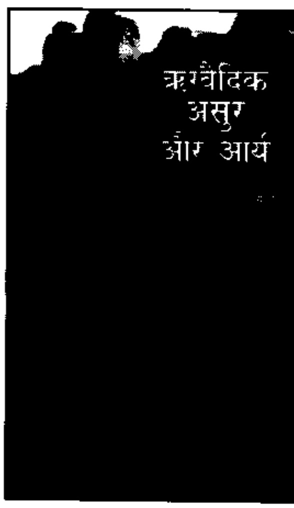

डॉ. निर्मोही ने इस कृति में एक नये सत्य का उद्‌घाटन किया है कि असुर ही वेदों के रचनाकार थे और ये ही भारत के मूल निवासी थे न कि आर्य सामान्यतया संकट की घड़ी में जिन वीरों/देवों द्वारा जिन लोगों की सहायता की जाती है, वे लोग उन्हें अपनी कविताओं में याद करते हैं।

कुछ परम्परावादी एवं रूढ़िवादी लोगों को डॉ. निर्मोही की यह प्रस्थापना अटपटी लग सकती है कि प्राचीन भारत के अधिकांश महापुरूष-ब्रह्म, विष्णु, शिव, इन्द्र, रामकृष्ण, बुद्ध महावीर इत्यादि जिन्हें पौराणिक धार्मिक साहित्य में भगवान कहकर प्रस्तुत किया गया है असुर थे। आर्य समस्या को लेकर विश्व को विद्वानों द्वारा आज तक जितने निष्कर्ष दिये गये हैं। उनमें अधिकांश को खण्डित करते हुए डॉ. निर्मोही ने अपनी नई-नई प्रस्थापनाओं से विश्व मनीषा को झकझोर कर रख दिया है।

डॉ. निर्मोही की यह प्रस्थापना समाजशास्त्रियों, धर्मशास्त्रियों तथा भारतीय मनीषा को सोचने के लिये बाध्य करेगी कि आत्मा-परमात्मा, स्वर्ग-नरक, भाज्य-मोक्ष, वर्णारक्षण इत्यादि पर आधारित आज की स्वर्गवादी संस्कृति वैदिक अथवा हिन्दू संस्कृति के प्रति आर्य/असुर ब्राह्मणों के विद्रोह के परिणामस्वरूप पैदा हुई है। इसका वैदिक अथवा हिन्दू संस्कृति से कोई लेना-देना नहीं है। आपका यह कथन सत्य प्रतीत होता है कि आर्य ब्राह्मणों द्वारा जाने वाले स्वर्ग की महिमा की पृष्ठभूमि में स्वर्गवादी सनातन धर्म का जन्म हुआ फिर उन्होंने भारतीय वैदिक महामानवों भगवानों को स्वर्ग का अधिष्ठाता बनाकर प्राचीन वेद आदि ग्रंथों में मिलावट कर नये-नये ग्रन्थों की रचनाकार अपने स्वर्णवादी दर्शन को प्रस्थापित कर दिया। आपका यह रहस्योद्‌घाटन भी विचारणीय है कि प्राचीनकाल में भारतीय संस्कृति में तीन वर्ण, तीन आश्रम तीन पुरूषार्थ थे। आर्यों के स्वर्णवादी दर्शन (सनातन धर्म) की प्रस्थापना के साथ चौथा वर्ण शूद्र, चौथा आश्रम सन्यास और चौथा पुरूषार्थ मोक्ष जुड़ गया। यही नहीं डॉ. निर्मोही की कुछ और प्रस्थापनाएं भी विश्व की मनीषा को नये सिरे से विचार करने के लिए बाध्य करती है कि वेद आर्यों द्वारा प्रणीत ग्रन्थ न होकर असुरों/विशों/व्रात्यों/कृषकों के काव्य-ग्रन्थ हैं। वेदों का सबसे बड़ा देवता इन्द्र आर्य सम्राट न होकर असुर सम्राट था। कुछ भी हो डॉ. निर्मोही की ऋग्वैदिक असुर और आर्य नामक यह दूसरी कृति भी प्रथम कृति आदि माता मनु और मानुषीकरण की तरह ही विद्वानों में चर्चित होगी मेरे समझ में प्रस्तुत पुस्तक समाजशास्त्रियों, इतिहासविदों, संस्कृतज्ञों के अतिरिक्त पाठकों के अधिक विस्तृत वर्ग तक फैलकर परम्परा में चली रही रूढ़ियों के प्रति आघात करेगी।

✍ वरिष्ठ प्रवक्ता, हिन्दी विभाग, डी. वी. (पी. जी.) कालेज, उरई (जालौन) उ. प्र.

पोथी की परख/समीक्षायन

प्रौढ़ चिंतन, व्यापक दृष्टिकोण और मानवतावादी दृष्टिकोण का अमर दस्तावेज

✍ डॉ. उषा किरन अग्निहोत्री

पुस्तक	:	आ रही सुनामी
लेखक	:	डॉ. रामलखन सिंह यादव
प्रकाशक	:	मीनाक्षी प्रकाशन एस. बी. 32/2बी गली नं. 2, शकरपुर दिल्ली-110092
मूल्य	:	100.00 रुपये

न्यायिक सेवा में अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीश के पद पर कार्यरत डॉ. रामलखन सिंह अब अपनी साहित्यिक, सामाजिक कृतियों के कारण किसी परिचय के मुहताज नहीं हैं। कवि रामलखन सिंह यादव में लेखन के प्रति अद्भुत जिजीविषा है। किसी भी तरह का खतरा और अनिश्चितता आपको विचलित नहीं करती। न्यायिक व्यवस्था जिस पद पर कार्य करना एक विशेष प्रोटोकाल से गुजरने जैसा होता है। ऐसे पद पर रहते हुए भी आप आज की शोषक-व्यवस्था और अमानवीयता पर वे लगातार प्रहार करते रहते हैं। डॉ. रामलखन अपने लेखन में सामाजिक असुरक्षा, जन असंतोष, भ्रष्टाचार, घोटाला, राजनेताओं के आपराधिक चरित्र और अपराधी वर्ग पर निर्भरता, बेरोजगारी, निरक्षरता साथ ही देश को अनाथ बना देने वाली सिद्धान्त विहीन राजनीति उनकी चिंता की सीमा में आती है। अनेक पुस्तकों तथा सम्मान को प्राप्त कर चुके डॉ. रामलखन यादव वर्तमान में सिविल कोर्ट जहानाबाद बिहार में अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीश (त्वरित न्यायालय) में कार्यरत हैं।

आ रही सुनामी नामक पुस्तक संग्रह में काव्य के रूप में अनेक कविताओं में सुनामी की पद्चाप सुनाई पड़ती है। लेखक डॉ. रामलखन जी इस संग्रह को तीन भागों में बांट रखा है। प्रथम भाग में इक्यावन द्वितीय भाग में बारह तथा तृतीय भाग में परिशिष्ट में सात रचनाएं लेखक के बारे में अन्य लेखकों की प्रतिक्रिया को व्यक्त करती हुई टिप्पणियां प्रकाशित हैं।

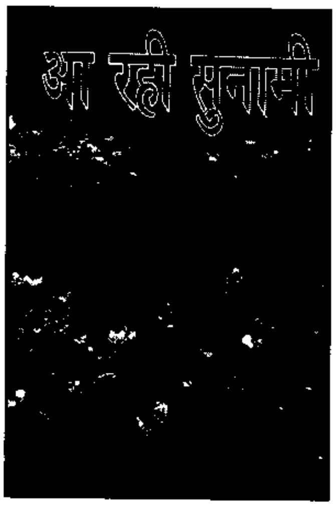

पुस्तक में अधिकांश रचनाएं घटना प्रधान और इति वृत्तात्मक हैं। जो जमीन से जुड़ी यथार्थ जगत का आईना दिखाती हैं।

विद्वान लेखक का मानना है कि यह एक खिचड़ी की तरह है जो नमकीन भी है और मीठी भी आप इसे युग की खिचड़ी कह सकते हैं जहाँ हम एक साथ ही आधुनिक और परम्परावादी दोनों रहना चाहते हैं। लेकिन रह नहीं पाते। दुविधा में दोनों गई माया मिली न राम फिर भी हम इसे जीना चाहते हैं और शायद आज भी एक आईना सम्भव है, यह आईना हमारे समाज का एक परिवर्तित रूप चित्र, प्रतिबिम्ब आपके सामने सच्चाई से प्रस्तुत करे और उसमें हमारा, आपका और सबका असली चेहरा दिखाई दे।

कवि की चिंता जायज है क्योंकि आज बाजारवाद उपयोगितावाद का वैश्विक रावण मुँह बाए खड़ा है, धरती का, मानवता का अस्तित्व संकट में है, हमें जागकर, उठकर चलना होगा, शीघ्रातिशीघ्र वरना बहुत देर हो जाएगी और हमें पछताने के सिवा और कुछ हाथ न लगेगा, प्रदूषण, जलवायु परिवर्तन गहरा रहा है। जल प्लावन से विनष्ट सृष्टि को मनु ने फिर से शृद्धा (कामायनी) के सहयोग से सजाया है। कवि की चिंता है कि आज जब स्वयं (मानव) अपनी सुरक्षित सृष्टि को समाप्त करने के लिए कटिबद्ध है तो कौन रक्षा करेगा ? यही यक्ष प्रश्न है जिसका अनुत्तरित किन्तु सांकेतिक उल्लेख कवि ने संग्रह की विभिन्न कविताओं में किया है।

कवि डॉ. रामलखन ने अपनी पीढ़ी के कवियों में विशेष छाप छोड़ी है। उनकी नजरों में 75वें वर्ष की सीढ़ी पर बैठी माँ, दिवंगत भाई, गाँव-घर, बेकारी, भुखमरी से लेकर स्टार्सवार, ग्लोबल षड्यंत्र, विश्वग्राम बाजारवाद, कम्प्यूटर-संजाल, आर्थिक साम्राज्यवाद विकास के नाम पर पसरती जाती अपसंस्कृति आसन्न है। आपकी इस संग्रह की कविताएं हिन्दी कविता का विस्तार करती हैं वे पलायन पर नहीं प्रत्युत मुकाबले में विश्वास करते हैं मानव निर्मित संकट को इंगित करते हुए कवि ने लोगों को सावधान किया है - आ रही सुनामी। प्रस्तुत पुस्तक वर्तमान समस्याओं पर गहन प्रकाश डालती है। जो सुधी पाठकों एवं शोधार्थियों के लिए उपयोगी हो सकती है।

✍ प्राचार्य, अकबर डिग्री कालेज, अकबरपुर (कानपुर देहात)

हास्य-व्यंग्य के बीच से उभरता यथार्थ का रंग

✍ डॉ. चन्द्रमा सिंह

पुस्तक : गली-गली में शोर है (उपन्यास)
लेखक : डॉ. दिवाकर पाण्डेय
प्रकाशक : मीनाक्षी प्रकाशन
एम. बी. 32/2बी
गली नं. 2, शकरपुर
दिल्ली-110092
मूल्य : 150.00 रूपये

युवा कथाकार एवं लोक साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान के रूप में ख्याति प्राप्त डॉ. दिवाकर पाण्डेय अपनी लेखन शैली के माध्यम से साहित्य में समय-समय पर नये प्रयोग करते रहते हैं। गद्य-पद्य में समान रूप से कलम चलाने वाले डॉ. दिवाकर राष्ट्रीय स्तर पर अनेक पत्रिकाओं में शोध/आलेख प्रकाशित करवा चुके हैं। 'लिए लुकाही हाथ' कविता संग्रह से चर्चा में आये डॉ. दिवाकर ने आधा दर्जन से अधिक पुस्तकों का सृजन किया है। वर्तमान में आरा बिहार में एच. डी. जैन कालेज में आप हिन्दी के वरिष्ठ प्राध्यापक हैं।

वर्तमान ग्रामीण परिवेश को परत-दर-परत उभारता यह उपन्यास भाषा में हास्य-व्यंग्य के तीखेपन के कारण काफी मार्मिक बन गया है। नयी सहस्राब्दी के आगमन पर चारों ओर खूब शोर मचा था। लगता था कि रातोरात सब कुछ बदल जायेगा। पर हुआ क्या ? इसी खोखलेपन पर गंभीर चोट करता यह उपन्यास आज हर क्षेत्र में आयी गिरावट को बड़ी बेबाकी से उभारता है। रानीपुर एक ऐसा गाँव है जहाँ हर तरह का भौतिक विकास हो चुका है। सड़क, रेलवे, अस्पताल, बैंक आदि सब कुछ है रानीपुर में। नहीं है तो किसी प्रकार की संवेदना। मेरी दृष्टि में यह उपन्यास 'मैला आँचल' की अगली कड़ी है। 'मैला आँचल' के परवर्ती गाँवों का दृश्य। तब मेरीगंज का भौतिक विकास नहीं हुआ था, पर वहाँ मानवीय संवेदनाएँ शेष थीं, पर इस उपन्यास में ठीक उल्टा है। रानीपुर में सब कुछ है, पर मानवीय संवेदना ही समाप्त है।

रानीपुर वाले कभी अगड़े-पिछड़े में बँटकर लड़ते हैं तो कभी जातियों-उपजातियों में तो कभी सम्प्रदायों में। राजनीतिक सिद्धान्तों की आड़ में चल रहे सिद्धान्तहीन आंदोलनों की विद्रूपता को यह उपन्यास परत-दर-परत उभारता है। बिहार में चल रही 'वितहित शिक्षा-नीति' की त्रासदी को शायद पहली बार किसी उपन्यास में स्थान दिया गया है।

हास्य व्यंग्य की करारी चोटों के बीच त्रासदी की संरचना भी इसकी अपनी विशेषता है। उपन्यास का एक पात्र 'प्रभाकर वर्तमान' परिवेश में अपने को अनफिट पाता है। अपने उसूलों पर चलने वाले प्रभाकर का हश्र काफी त्रासद होता है, वह अन्ततः पागल हो जाता है। गिरावट सिर्फ राजनीति में ही नहीं है। इस छूत की बीमारी ने साहित्य को भी अपनी चपेट में ले लिया है। किस तरह तथाकथित साहित्यकार राजनीतिक दलों के साथ बँधकर साहित्य को दूषित कर रहे हैं, इसके साथ खिलवाड़ कर रहे हैं, इस पर भी यह उपन्यास करारी चोट करता है। पुस्तक हाथ में लेते ही फ्लैप पर ध्यान जाता है जिस पर आधुनिक युग के तथाकथित साहित्यिक झंडाबरदारों पर व्यंग्य करती पंक्तियाँ पाठकों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट कर लेती हैं। स्वयंभू कवि राम जियावन प्रसाद सिंह यादव अपने नाम के अक्षरों को उलट-पुलटकर निरर्थक नाम 'यासिप्रजिरा' ढूँढ़ लेते हैं ताकि इस अर्थहीन नाम के सहारे वे अपनी कविताओं में वजन पैदा कर सकें।

बेजोड़ यथार्थ की बेबाक अभिव्यक्ति उपन्यास की संवेदना को सघन बनाती है। उपन्यास प्रारम्भ करने से पहले उपन्यासकार 'कुछ इधर-उधर की' शीर्षक से अपनी बात कहता है जिसमें उपन्यास का बीज तत्व छिपा है - "लीजिए, तैयार हो गयी मेरी खिचड़ी। चावल, दाल, हल्दी, धनिया, मिर्च आदि सब उधार के हैं। आप ही से तो लिया है मैंने। नमक सिर्फ मेरा है।" उपन्यास के इस कथन को बानगी के तौर पर लिया जा सकता है।

ग्राम्य-संस्कृति की विचलन, गाँवों में उभर आया वैमनस्य, घात-प्रतिघात, हृदयहीनता, जातियों का अकारण संघर्ष, तथाकथित राजनीतिक सक्रियता, नयी और पुरानी पीढ़ी का वैचारिक टकराव, निजी सेनाओं का आक्रमण-प्रत्याक्रमण आदि के बीच पिसते संवेदनशील व्यक्तियों की त्रासदी को यह उपन्यास पूरी तल्खी से उभारता है। बेजोड़ पाठकीयता इस उपन्यास की शक्ति और सीमा बन गयी है। इस उपन्यास को 'मैला आँचल' और 'राग दरबारी' की अगली कड़ी के रूप में देखा जा सकता है।

✍ हिन्दी विभाग, श्री शंकर कालेज, सासाराम (बिहार)

रजिस्ट्रेशन ऑफ न्यूज पेपर्स रूल्स 1956 (सेन्ट्रल) के अन्तर्गत 'कृतिका' - हिन्दी अर्द्धवार्षिक के सम्बन्ध में स्वामित्व तथा अन्य विवरण विषयक जानकारी

घोषणा-पत्र

(फार्म-4)

1.	प्रकाशन स्थल	:	1760, नया रामनगर, उरई (जालौन) उ. प्र.
2.	प्रकाशन अवधि	:	अर्द्धवार्षिक
3.	मुद्रक का नाम नागरिकता पता	:	डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव भारतीय 1760, नया रामनगर, उरई (जालौन) उ. प्र.
4.	प्रकाशक का नाम नागरिकता पता	:	डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव भारतीय 1760, नया रामनगर, उरई (जालौन) उ. प्र.
5.	सम्पादक का नाम नागरिकता पता	:	डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव भारतीय 1760, नया रामनगर, उरई (जालौन) उ. प्र.
6.	उन व्यक्तियों के नाम व पते जो समाचार पत्र के स्वामी हों, तथा जो समस्त पूंजी के एक प्रतिशत से अधिक के साझेदार या हिस्सेदार हों।	:	डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव 1760, नया रामनगर, उरई (जालौन) उ. प्र.

मैं डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव एतद्द्वारा घोषित करता हूँ कि उपरोक्त विवरण मेरी अधिकतम जानकारी तथा विश्वास के अनुसार दिये गये विवरण सत्य हैं।

दिनांक : जुलाई 2009

हस्ताक्षर
डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव
प्रकाशक

मुद्रक : महक कम्प्यूटर्स एण्ड प्रिण्टर्स, 15, आजाद नगर, उरई (जालौन) ✦ सम्पादक : डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव

कृतिका परिवार

मुख्य परामर्शदाता एवं मानद संरक्षक

- प्रो. गिरिजाराय, प्रोफेसर हिन्दी विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद (उ.प्र.)
- श्री चन्द्रेश कुमार, (I.A.S.) लैन्स डाउन पौढ़ी (उत्तराखण्ड)
- डॉ. उमारतन यादव, रीडर, अर्थशास्त्र विभाग, बुन्देलखण्ड महाविद्यालय, झाँसी (उ.प्र.)
- डॉ. दलवीर सिंह, वरिष्ठ प्रवक्ता, भूगोल विभाग, राजकीय महाविद्यालय, हांसी, हिसार (हरियाणा)

प्रमुख अप्रवासी सम्पादकीय सलाहकार समिति

- डॉ. भारतेन्दु श्रीवास्तव, 64 लांगसवर्ड, ड्राइव, स्कारवोरो ओनटारियो, कनाडा, एम.आई.वी. 3 ए. 3
- डॉ. अजीत सिंह राही, पो. बॉ. 119, हानउड 2680, एन.एस.डब्ल्यु., आस्ट्रेलिया
- डॉ. तिलकराज चोपड़ा, हाज़ल वेग 15, 53340 मेकन्हाईम, जर्मनी
- डॉ. दिव्या माथुर, नेहरू सेन्टर, 8 साउथ आउडली स्ट्रीट, लंदन-डब्ल्यु 1 के 1 एच. एफ.
- श्री धनंजय कुमार, 7806 वेन्डीराइड लेन आनन्दले वर्जीनिया, यू.एस.ए. 22003

विशेष परामर्शदात्री समिति

- डॉ. रामेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी, रीडर एवं विभागाध्यक्ष, संस्कृत विभाग, रामस्वरूप ग्रामोद्योग (पी.जी.) महा., पुखरायां का. दे (उ.प्र.)
- डॉ. ज्योति सिन्हा, प्रवक्ता, संगीत विभाग, महिला पी. जी. कॉलेज, जौनपुर (उ.प्र.)
- श्री बी. आर. बुद्धप्रिय, संजय नगर आशापुरम, बरेली (उ.प्र.)
- डॉ. देवदास टेम्भरे, सदस्य, अभिषद् (सिंडीकेट), सदस्य, अनुकम्पा समिति एवं वि.वि. प्रतिनिधि वीर कुंअर सिंह वि.वि. आरा (बिहार)

संपादकीय परामर्शदात्री समिति

- डॉ. जार्जकुट्टी बट्टोत, रीडर (पी.जी.) एण्ड रिसर्च विभाग हिन्दी सेंट थामस कालेज पाला जिला-कोट्टयम (केरल)
- डॉ. अंजु दुआ जैमिनी, 839, सेक्टर-21 सी. पार्ट-2, फरीदाबाद (हरियाणा)
- डॉ. हरिनिवास पाण्डेय, प्रवक्ता हिन्दी, रंगफ्राह शासकीय महाविद्यालय, चांगलांग (अरूणाचल प्रदेश)
- डॉ. शुभा जौहरी, रीडर इतिहास, विभाग-राष्ट्र संत तुकादोजी महाराज नागपुर विश्वविद्यालय, नागपुर (महाराष्ट्र)
- डॉ. गोवर्धन सिंह, अध्यक्ष, भोजपुरी विभाग, वीर कुंअर सिंह विश्वविद्यालय, आरा (बिहार)
- डॉ. हितेन्द्र जे मौर्या, प्रवक्ता, इतिहास विभाग, महाराजा सयाजी राव विश्वविद्यालय, बड़ोदरा (गुजरात)
- डॉ. प्रतिभा पटेल, गौरक्षणी, सासाराम (बिहार)
- डॉ. सतीश यादव, अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, शिवाजी महाविद्यालय, रेणापुर (महाराष्ट्र)

- श्री राघवेन्द्र सिंह राजू, 7 जाफ़लिन रोड, लखनऊ (उ.प्र.)
- डॉ. ब्रजपाल सिंह, प्राचार्य, डी.एस.एम. कॉलेज, कांठ मुरादाबाद (उ.प्र.)
- डॉ. आलोक रंजन, प्रवक्ता, हिन्दी विभाग, मारवाड़ी कॉलेज, भागलपुर (बिहार)
- डॉ. प्रतिमा सिंह यादव, प्राध्यापक हिन्दी विभाग, शासकीय महारानी लक्ष्मीबाई महाविद्यालय, भोपाल (म.प्र.)
- डॉ. मधुरबाला यादव, प्रवक्ता हिन्दी विभाग, पी.पी.एन. कॉलेज, कानपुर (उ.प्र.)
- डॉ. सुशील कुमार शर्मा, अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, शिलांग (मेघालय)
- डॉ. सुनीता शर्मा, प्रवक्ता, हिन्दी विभाग, गुरूनानक देव विश्वविद्यालय, अमृतसर (पंजाब)
- डॉ. एल. के. कुन्दन, रीडर, राजनीति विज्ञान विभाग, रॉंची कालेज, रॉंची

मुख्य सम्पादक मण्डल

- डॉ. चन्द्रमा सिंह, नयकागाँव जी.टी. रोड, सासाराम (बिहार)
- डॉ. किशन यादव, रीडर, राजनीति विज्ञान विभाग, बुन्देलखण्ड महाविद्यालय, झाँसी (उ.प्र.)
- डॉ. सुरेश एफ कानडे, 8 साईंधाम, अपार्टमेंट दादा जी कोंडदेव नगर, गंगापुर रोड, नासिक 422013 (महाराष्ट्र)
- डॉ. नीना शर्मा 'हरेश', व्याख्याता हिन्दी, आनन्द आर्ट्स कालेज, गुजरात (गुजरात)
- डॉ. कश्मीरी देवी, म. नं. 1651/21 हैफेड चौक, रोहतक (हरियाणा) 821115
- डॉ. रोशन लाल जिन्टा, वरिष्ठ प्रवक्ता, मनोविज्ञान विभाग, हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, शिमला (हिमाचल प्रदेश)
- डॉ. शंकरलाल, गोरखपुर हाउस के सामने, कैलाशपुरी, रीवा (म.प्र.)

विशेष सम्पादन सहयोग

- डॉ. अजय कुमार सिंह, रीडर, राजनीति विज्ञान विभाग, हंडिया पी० जी० कालेज, हंडिया
  Mob.:09415638535 ✦ Email : drajaysingh@gmail.com
- श्री रणविजय सिंह, शोध छात्र, राजनीति शास्त्र, बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी (उ.प्र.)
  Mob.:09919123763 ✦ Email : rajuranvijay@gmail.com

सम्पादक

- **डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव**

  1760, नया रामनगर, उरई जिला-जालौन 285001 (उ.प्र.) भारत
  सम्पर्क : 05162-252888, 09415924888, 09670732121
  Email : kritika_orai@rediffmail.com
  Email : virendra_kritika@rediffmail.com
  Email : dr.virendrayadav@gmail.com
  http://kritika-shodh.blogspot.com